शिक्षक-प्रशिक्षण के सिद्धान्त एवं समस्याएँ
(Principles and Problems of Teacher Education)
(द्वितीय-खण्ड)

लेखक
चतरसिंह मेहता
दिनेशचन्द्र जोशी

राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी
जयपुर

प्रस्तावना

भारत की स्वतन्त्रता के बाद इसकी राष्ट्र-भाषा को विश्वविद्यालय शिक्षा के माध्यम के रूप में प्रतिष्ठित करने का प्रश्न राष्ट्र के सम्मुख था। किन्तु हिन्दी में इस प्रयोजन के लिए अपेक्षित उपयुक्त पाठ्य-पुस्तकें उपलब्ध नहीं होने से यह माध्यम-परिवर्तन नहीं किया जा सकता था। परिणामत: भारत सरकार ने इस न्यूनता के निवारण के लिए "वैज्ञानिक तथा पारिभाषिक शब्दावली आयोग" की स्थापना की थी। इसी योजना के अन्तर्गत १९६९ में पाँच हिन्दी-भाषी प्रदेशों में ग्रन्थ अकादमियों की स्थापना की गई।

राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी हिन्दी में विश्वविद्यालय स्तर के उत्कृष्ट ग्रन्थ-निर्माण में राजस्थान के प्रतिष्ठित विद्वानों तथा अध्यापकों का सहयोग प्राप्त कर रही है और मानविकी तथा विज्ञान के प्रायः सभी क्षेत्रों में उत्कृष्ट पाठ्य-ग्रन्थों का निर्माण करवा रही है। अकादमी चतुर्थ पंचवर्षीय योजना के अन्त तक तीन सौ से अधिक ग्रन्थ प्रकाशित कर सकेगी, ऐसी हम आशा करते हैं।

प्रस्तुत पुस्तक इसी क्रम में तैयार करवायी गयी है। हमें आशा है कि यह अपने विषय में उत्कृष्ट योगदान करेगी। इस पुस्तक की समीक्षा के लिए अकादमी **डॉ० जी० चौरसिया**, संयुक्त निदेशक, लोक-शिक्षण संचालनालय, भोपाल के प्रति आभारी है।

खेतसिंह
अध्यक्ष

गौरीशंकर सत्येन्द्र
निदेशक

प्राक्कथन

देश की आधुनिकीकरण की प्रक्रिया में शिक्षक-प्रशिक्षण के महत्त्व को स्वीकार किया जाकर शिक्षण को अब व्यवसाय माना जाने लगा है। यह निर्विवाद है कि शिक्षा का स्तर बहुत कुछ शिक्षक की योग्यता, कार्य-क्षमता व कुशलता पर निर्भर होता है। शिक्षक की कार्यकुशलता काफी सीमा तक उसके अच्छे प्रशिक्षण पर निर्भर है, चाहे यह प्रशिक्षण सेवा के पूर्व हो या सेवाकालीन। अतः शिक्षा में गुणात्मक सुधार के लिए यह आवश्यक है कि शिक्षकों का समुचित रूप से प्रशिक्षण हो। शिक्षा आयोग ने कहा है कि अध्यापकों के प्रशिक्षण पर किए गए व्यय का प्रतिफल सचमुच काफी मूल्यवान होगा, क्योंकि उसके परिणामस्वरूप लाखों छात्रों की शिक्षा में जितना सुधार होगा, उसकी तुलना में आर्थिक व्यय की मात्रा बहुत कम होगी।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद शिक्षा का बहुत विस्तार हुआ है। गाँव-गाँव में विद्यालय खुले है। पाँचवीं पंचवर्षीय योजना में तो देश में प्राथमिक शिक्षा के क्षेत्र में लगभग शत-प्रतिशत लक्ष्य रखा जा रहा है। प्राथमिक शिक्षा के साथ माध्यमिक शिक्षा का भी विस्तार होगा। इन लक्ष्यों की पूर्ति के लिए और अधिक प्रशिक्षित अध्यापकों की आवश्यकता होगी। शिक्षक-प्रशिक्षण की स्थिति में सुधार लाने और उसे आज की आवश्यकतानुसार ढालने के लिए अन्य देशों की तरह भारत में भी निरन्तर विचार हो रहा है। इसी दृष्टि से शिक्षक-प्रशिक्षण पर हिन्दी में एक पुस्तक की आवश्यकता अनुभव की गई।

पुस्तक की सामग्री इतनी हो गई कि उसे दो खंडों में विभाजित करना पड़ा। प्रथम खंड में शिक्षक-प्रशिक्षण का विकास, उद्देश्य, पाठ्यक्रम, पाठन विधियाँ, छात्र-अध्यापन व शिक्षा-अनुसंधान और द्वितीय खंड में शिक्षक-प्रशिक्षण, संगठन, वित्त, अन्तः सेवा प्रशिक्षण व शिक्षक-प्रशिक्षण की समस्याओं का विवेचन किया गया। सभी स्थानों पर शिक्षक प्रशिक्षण का ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में उनके सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिक दृष्टि से विवेचन करने का प्रयत्न किया गया है। यह भी प्रयत्न किया गया है कि शिक्षक-

प्रशिक्षण की वस्तुस्थिति का अध्ययन करके और देश में सम्भावित परिवर्तनों को आधार मान कर भावी शिक्षक-प्रशिक्षण की योजना भी प्रस्तुत की जाए। इस हेतु आँकड़ों का विभिन्न स्रोतों से संकलन किया गया और देश-विदेश में होने वाले परिवर्तनों और नव विचारों का विश्लेषण किया गया। निश्चय ही यह कार्य अन्य पुस्तकों व पत्र-पत्रिकाओं की सहायता के बिना सम्भव नहीं था। ऐसी सभी सामग्री का उल्लेख पुस्तक के अन्त में अध्याय अनुसार दी गई सूची में किया गया है।

प्रथम खंड के अध्याय संख्या ३ से ६ दिनेशचन्द्र जोशी ने और शेष अध्याय चतरसिंह मेहता ने लिखे हैं। द्वितीय खंड में अध्याय संख्या १३ से १५ चतरसिंह मेहता ने और शेष अध्याय दिनेशचन्द्र जोशी ने लिखे हैं। लेखक अनेक मित्रों के आभारी हैं, जिन्होंने समय-समय पर उपयोगी सुझाव देकर सहायता की। हम अपने पाठकों के अत्यन्त आभारी होंगे, यदि वे पुस्तक के सुधार हेतु सुझाव देंगे।

चतरसिंह मेहता
दिनेशचन्द्र जोशी

१० सितम्बर, १९७३

विषय-सूची

१३. माध्यमिक शिक्षक-प्रशिक्षक १
योग्यता, (१) चुनाव, (६) वेतनमान व प्रतिष्ठा, (१०) अध्यापन-अनुभव, (१२) छात्र-अध्यापक अनुपात, (१४) कार्यभार, (१४) अध्यापन कार्य, (१५) अध्यापनाभ्यास का परिवीक्षण कार्य, (१६) अनुसंधान निर्देशन, (१७) अनुसंधान कार्य, (१८)

१४. प्राथमिक शिक्षक-प्रशिक्षक २२
योग्यता, (२३) चुनाव, (२४) वेतनमान (२५) छात्र-अध्यापक अनुपात, (२८) अध्यापन-अनुभव, (२८) कार्यभार, (२९) प्रधानाचार्य का कार्यभार, (३०) प्रशिक्षकों का कार्यभार, (३१) सैद्धान्तिक शिक्षण, (३३) अन्य तीन प्रशिक्षकों का कार्यभार, (३४)

१५. शिक्षक प्रशिक्षकों का सेवारत प्रशिक्षण ३६
शिक्षक प्रशिक्षकों के सेवारत प्रशिक्षण के उद्देश्य, (३७) प्राथमिक शिक्षक प्रशिक्षकों का सेवारत प्रशिक्षण, (३८) सैद्धान्तिक, (३९) क्रियात्मक, (४०) माध्यमिक शिक्षक प्रशिक्षकों का सेवारत प्रशिक्षण, (४३) कुछ समस्याएं, (४५) प्रशिक्षण कार्यक्रम के प्रकार, (५०) विभिन्न अभिकरणों के कार्य, (५६)

१६. माध्यमिक शिक्षक-प्रशिक्षण संस्थाओं का संगठन ६१
प्रस्तावना, (६१) वर्तमान स्थिति, (६२) प्रदेशों में शिक्षक-प्रशिक्षण महाविद्यालयों का विकास, (६२) शिक्षक महाविद्यालयों का प्रबन्ध, (६३) प्रदेश सरकार, (६३) गैर सरकारी प्रबन्ध समितियाँ, (६५) केन्द्रीय सरकार, (६६) भवन और सामग्री, (६८) शिक्षक-प्रशिक्षक की अवस्था, (६९) शिक्षक महाविद्यालयों की न्यूनतम अपेक्षाएं, (७२) राज्य और राष्ट्रीय स्तर पर संगठनात्मक सुझाव, (७५) नियन्त्रण, (७९)

१७. प्राथमिक शिक्षक-प्रशिक्षण संस्थाओं का संगठन ८४
वर्तमान स्थिति, (८४) राज्य सरकार से सम्बन्ध, (८४) प्रशिक्षार्थियों की योग्यता एवं चयन विधि, (९१) नवीन संगठन के लिए

कुछ सुझाव, (९३) आकार एवं स्थान निर्धारण, (९३) विकास कार्यक्रम, (९४) गुणात्मक विकास, (९५)

१८. वित्त ९९

शिक्षा पर व्यय, (९९) शिक्षक-प्रशिक्षण पर व्यय, (१०२) प्रशिक्षण शालाएँ, (१०३) विभिन्न मदों पर व्यय, (१०५) माध्यमिक शिक्षक महाविद्यालयों की वित्तीय अवस्था, (१०६) प्रति विद्यार्थी व्यय, (१०९) प्रशिक्षण शालाएँ, (११०) माध्यमिक प्रशिक्षण महाविद्यालय, (११०)

१९. शिक्षक-प्रशिक्षण संस्थाओं में अन्त: सेवा प्रशिक्षण कार्यक्रम ११६

अन्त:सेवा प्रशिक्षण की आवश्यकता, (११६) अन्तः सेवाकालीन प्रशिक्षण के आशय, (११८) अन्तः सेवाकालीन प्रशिक्षण का विकास, (१२१) अन्य संस्थाओं का सहयोग, (१३०)

२०. पञ्चवर्षीय योजनाओं में शिक्षक-प्रशिक्षण १३७

शिक्षक-प्रशिक्षण की चुनौतियाँ, (१३८) प्रथम योजना में शिक्षक-प्रशिक्षण, (१४०) द्वितीय पंचवर्षीय योजना, (१४२) तृतीय योजना, (१४४) चतुर्थ योजना, (१४५) चौथी योजना में शालाओं का विस्तार, (१४७) योजना में अतिरिक्त शिक्षकों की आवश्यकता, (१४७) प्रशिक्षण की सुविधाएँ, (१४९) अध्यापकों की वर्तमान स्थिति, (१४९) शिक्षक-प्रशिक्षण की अयोजना, (१५०) अन्तः सेवाकालीन प्रशिक्षण, (१५३) शिक्षक प्रशिक्षण संस्थाओं का विकास, (१५३) पाँचवीं योजना, (१५७) प्राथमिक शिक्षा, (१५७) माध्यमिक शिक्षा, (१५८) शिक्षक-प्रशिक्षण, (१५९)

२१. प्रशिक्षणार्थियों के कार्य का मूल्यांकन १६१

सैद्धान्तिक विषयों में मूल्यांकन (१६२) एम. एड. स्तर पर मूल्यांकन (१६३), बी. एड. अध्यापन अभ्यास मूल्यांकन (१६५), अध्यापन अभ्यास मूल्यांकन के प्रमुख सिद्धान्त (१६६), प्राथमिक अध्यापन प्रशिक्षण में मूल्यांकन (१७२)

संदर्भ ग्रन्थ सूची १७९

१३

माध्यमिक शिक्षक-प्रशिक्षक

शिक्षा के किसी भी स्तर की गुणात्मकता शिक्षकों पर अत्यधिक आश्रित होती है। इसीलिए शिक्षा आयोग (१९६६) तथा भारतीय शिक्षा-नीति प्रस्ताव (१९६८) में स्वीकार किया गया है कि "शिक्षा की गुणात्मकता एवं राष्ट्रीय विकास में उसके योगदान को प्रभावित करने वाले उसके विभिन्न अंगों में शिक्षक की योग्यता, गुण तथा चरित्र निस्संदेह ही सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है। अध्यापन व्यवसाय में पर्याप्त संख्या में योग्य अध्यापकों की नियुक्ति, उनके लिए सर्वोत्तम व्यावसायिक साधनों की उपलब्धि और पूर्ण प्रभावी ढंग से काम कर सकने के लिए संतोषप्रद स्थितियाँ पैदा करने से अधिक महत्त्वपूर्ण बात दूसरी नहीं है।" यह बात शिक्षकों के बारे में जितनी सही है उससे कहीं अधिक शिक्षक-प्रशिक्षकों के बारे में है क्योंकि शिक्षकों को व्यावसायिक प्रशिक्षण देने वाले शिक्षक-प्रशिक्षक ही होते हैं। शिक्षकों के दृष्टिकोण में भी सुधार तभी संभव है जब उन्हें व्यवसाय का शिक्षण सफल रीति से दिया जाए। आवश्यक क्रान्ति लाने की प्रवृत्ति और व्यवसाय के प्रति भावी विकास की भावना भी तभी आ सकती है। इस प्रकार शिक्षा के गुणात्मक विकास में शिक्षक-प्रशिक्षक की महत्त्वपूर्ण भूमिका है। शिक्षक-प्रशिक्षण में सुधार की कोई भी बात तब तक सफल नहीं हो सकती जब तक कि शिक्षक-प्रशिक्षक उच्च स्तर के न हों।

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान व प्रशिक्षण परिषद्, नई दिल्ली ने शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालयों का सन् १९६५ में सर्वेक्षण किया था। इस सर्वेक्षण से शिक्षक-प्रशिक्षकों के बारे में कई महत्त्वपूर्ण तथ्य ज्ञात हुए। इस अध्याय में मुख्यतया उसी सर्वेक्षण के आधार पर तथ्यों का विश्लेषण किया गया है।

योग्यता

शिक्षक-प्रशिक्षण महाविद्यालयों के द्वितीय राष्ट्रीय सर्वेक्षण (१९६४-६५)

में जिन प्राध्यापकों ने अपना विवरण भेजा, उसके अनुसार योग्यता का विवरण इस प्रकार है—

तालिका संख्या ४०

शिक्षक-प्रशिक्षण महाविद्यालयों में प्रशिक्षकों की योग्यता

परीक्षा	प्रशिक्षकों का प्रतिशत
पीएच. डी.	५.१०
एम. ए., एम. एड.	३१.७६
बी. ए., एम. एड.	१०.६८
एम. ए., बी. एड.	४१.०९
बी. ए., बी. एड.	७.६१
शारीरिक शिक्षा डिप्लोमा	
अन्य	३.७६
	१००.००

माध्यमिक शिक्षा आयोग (१९५३) ने शिक्षक-प्रशिक्षण महाविद्यालयों के स्टॉफ के बारे में विस्तार से विचार किया और कहा कि इनके चुनाव पर विशेष रूप से ध्यान दिया जाना चाहिए। आयोग का मत था कि महाविद्यालयों की वर्तमान स्थिति में सुधार शिक्षक-प्रशिक्षक की योग्यता पर बहुत कुछ निर्भर है अतः इस व्यवसाय में योग्यतम व्यक्तियों को ही लिया जाना चाहिए। आयोग ने सुझाव दिया कि शिक्षक-प्रशिक्षक की योग्यता इस प्रकार होनी चाहिए—(१) किसी विषय में अधिस्नातक या प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण स्नातक और (२) एम. एड. डिग्री व इसके साथ ही तीन वर्ष का अध्यापन-अनुभव या बी. एड. डिग्री व साथ में पाँच वर्ष का निरीक्षक या प्रधानाध्यापक के पद का अनुभव। शिक्षक-प्रशिक्षकों की कमी को देखते हुए आयोग ने अधिस्नातक या शिक्षा में स्नातक स्तर पर श्रेणियों के बारे में कोई सिफारिश नहीं की। वास्तव में तृतीय श्रेणी में उत्तीर्ण अधिस्नातक अथवा तृतीय श्रेणी का शिक्षा स्नातक प्रशिक्षक के रूप में प्रशिक्षण के साथ न्याय नही कर सकता। तालिका संख्या ४० से ज्ञात होता है कि माध्यमिक शिक्षा आयोग के प्रतिवेदन के दस

वर्ष बाद तक भी लगभग ४० प्रतिशत प्राध्यापक भी किसी अध्यापन विषय में अधिस्नातक के साथ शिक्षा में अधिस्नातक नहीं हो पाए थे। यह स्थिति वास्तव में चिन्ताजनक है। शिक्षा आयोग (१९६६) के अनुसार प्रशिक्षण संस्थाओं के अध्यापक अपने कार्य के लिए बहुत ही कम उपयुक्त होते हैं।

एक सर्वेक्षण से पता चला है कि ऐसी संस्थाओं के ४० प्रतिशत अध्यापक केवल बी.ए. होते हैं और बी.एड. कर चुके होते हैं, ५८ प्रतिशत ऐसे होते हैं जिनके पास किसी विषय की एम.ए. उपाधि या एम.एड. उपाधि होती है और केवल दो प्रतिशत ऐसे होते हैं जिनके पास शोध उपाधि (डॉक्टर) हो। हमारा मत है कि इन संस्थाओं के अध्यापकों के पास दो स्नातकोत्तर उपाधियाँ होनी चाहिए—एक किसी अध्यापन विषय की और दूसरी शिक्षा विषय की और डॉक्टर उपाधिधारियों का भी यथेष्ट अनुपात (कोई १० प्रतिशत) होना चाहिए। एम.एड. स्तर पर विशेष विषय के रूप में या विशेष शिक्षा पाठ्यक्रम के रूप में अध्यापक-शिक्षण का विषय भी उनके द्वारा पढ़ा हुआ होना चाहिए। उनके वेतनमान वे ही होने चाहिए जो कला या विज्ञान के कॉलेजों के लेक्चरर, रीडर, प्रोफेसर आदि के होते हैं।

बहुत से विश्वविद्यालयों ने बी. एड. में विषयवस्तु-अध्यापन भी अनिवार्य कर दिया है और प्रवेश योग्यता में भी वृद्धि कर दी है। इस तरह अब द्वितीय श्रेणी के स्नातक और अधिस्नातक अधिक संख्या में प्रवेश लेने लगे हैं। विद्यालयों में अध्यापन की स्थिति में सुधार लाना है तो यह आवश्यक है कि अध्यापकों की योग्यता में वृद्धि हो। शिक्षा आयोग ने भी यह सिफारिश की कि अध्यापन व्यवसाय में प्रथम और उच्च द्वितीय श्रेणी प्राप्त व्यक्तियों को आकृष्ट करने का यत्न किया जाना चाहिए। इस दृष्टि से शिक्षक-प्रशिक्षण महाविद्यालयों के अध्यापकों का उच्चतम योग्यता प्राप्त होना बहुत ही आवश्यक है। आज की परिस्थितियों में तृतीय श्रेणी का अधिस्नातक या जिसने स्वयं ने बी. एड. तृतीय श्रेणी में उत्तीर्ण की हो अपने विषय के साथ कदापि न्याय नहीं कर सकता। अध्यापकों की योग्यता की दृष्टि से महाविद्यालय जितने सक्षम होंगे उतना ही अच्छा प्रभाव वे छात्रों पर डाल सकेंगे और शिक्षक-प्रशिक्षण का स्तर उन्नत कर सकेंगे। शिक्षा आयोग ने अधिस्नातक स्तर पर श्रेणियों का उल्लेख तो नहीं किया पर इतना अवश्य कहा है कि उनके वेतनमान कॉलेजों के लेक्चरर, रीडर व प्रोफेसर के समकक्ष होने चाहिए। चूँकि सामान्य महाविद्यालयों में द्वितीय श्रेणी से कम नियुक्ति ही

नहीं होती, अतः यह स्पष्ट है कि प्रशिक्षण महाविद्यालयों में भी श्रेणी संबंधी यही न्यूनतम योग्यता होनी चाहिए।

बहुत से विश्वविद्यालयों ने एम.ए., बी.एड. योग्यता ही महाविद्यालयों के अध्यापकों के लिए पर्याप्त मानी है। यदि इस दृष्टि से विचार किया जाए तो लगभग ८० प्रतिशत अध्यापक न्यूनतम योग्यता प्राप्त हैं। परन्तु अब अधिक लोग यह स्वीकार करने लगे हैं कि बी.एड. महाविद्यालय का अध्यापक छात्रों को अच्छा नेतृत्व देने की दृष्टि से एम.एड. तो अवश्य होना चाहिए। यही कारण है कि शिक्षा आयोग ने भी ऐसी सिफारिश की है। कुछ समय पूर्व राजस्थान शिक्षक प्रशिक्षण मण्डल ने भी यही सिफारिश की कि भविष्य में प्रशिक्षण महाविद्यालयों में जिन अध्यापकों की नियुक्ति की जाए वे अध्यापन विषय में अधिस्नातक के साथ शिक्षा में अधिस्नातक अवश्य हों। परन्तु समस्या का समाधान तब तक नहीं होगा जब तक कि विश्वविद्यालय न्यूनतम योग्यता एम.ए., बी.एड. से बढ़ाकर एम. ए. एम. एड. न कर दें। शिक्षा संकायों से ऐसा प्रस्ताव पारित न होने का एक कारण यह भी है कि अभी बहुत से अध्यापक एम.ए., बी.एड. ही हैं और सदस्य होने के नाते वे इसका विरोध करते हैं। इसका भी उपाय हो सकता है। जो अध्यापक पहले से ही हैं उन्हें इस उपाधि से छूट दी जाए या यह आग्रह किया जाए कि वे कुछ अवधि में यह उपाधि प्राप्त करें। नये अध्यापक नियुक्त हों, वे एम ए. एम. एड. अवश्य हों और दोनों में द्वितीय श्रेणी से उत्तीर्ण भी हों।

आज जो स्थिति है उसमें सबसे योग्य अध्यापक विश्वविद्यालयों के शिक्षा विभागों में हैं। कुल ५.१० प्रतिशत पीएच. डी. में से २.४१ प्रतिशत इन विभागों में हैं कुल ३१.७० एम.ए. एम.एड. उपाधिधारियों में से १६.६८ प्रतिशत अराजकीय महाविद्यालयों में और ६.८ प्रतिशत राजकीय महाविद्यालयों में हैं। ४१.०६ प्रतिशत एम ए. बी एड. में से २१.४६ प्रतिशत अराजकीय महाविद्यालयों में और १८.११ प्रतिशत राजकीय महाविद्यालयों में हैं। यदि उपरोक्त स्थिति पर विचार किया जाए तो ऐसा लगेगा कि अराजकीय महाविद्यालयों में राजकीय महाविद्यालयों से अच्छा स्टॉफ है पर किसी निष्कर्ष पर पहुँचने के लिए इन महाविद्यालयों की संख्या व प्रतिशत पर भी दृष्टिपात करना आवश्यक है। राजकीय महाविद्यालयों की कुल संख्या ६२ (३४ प्रतिशत), अराजकीय महाविद्यालय १४६ (५४.५ प्रतिशत) और विश्व-

विद्यालयों के शिक्षा विभाग ३२ (११.५ प्रतिशत) हैं। १६६४–६५ के सर्वेक्षण के आधार पर योग्यता का विवरण इस प्रकार है—

तालिका संख्या ४१

महाविद्यालयों के अनुसार अध्यापकों की संख्या

	विश्वविद्यालय	राजकीय	अराजकीय
पीएच. डी.	४१	११	३४
एम.ए , एम.एड.	८८	१६६	२८१
एम.ए., बी.एड.	३३	३०४	३४५
कुल	१६२	४८१	६६०

स्टॉफ की दृष्टि से विश्वविद्यालयों के शिक्षा विभागों की स्थिति सबसे अच्छी है। यहाँ के अध्यापकों के अच्छे वेतनमान हैं और उच्च अध्ययन की सुविधाएँ भी उपलब्ध होती हैं। अराजकीय महाविद्यालयों में राजकीय महाविद्यालयों की तुलना में अधिक पीएच. डी. हैं परन्तु एम ए. एम.एड. व एम.ए. बी.एड. अध्यापकों का महाविद्यालय अनुसार अनुपात अराजकीय महाविद्यालयों में राजकीय महाविद्यालयों से कम है। हो सकता है कि वेतन-मान और सेवा सम्बन्धी शर्तों के कारण ऐसा हो, इसके लिए अनुसंधान की आवश्यकता है।

डॉक्टर जी. चौरसिया का विचार है कि प्रायः अराजकीय शिक्षक-प्रशिक्षण महाविद्यालयों में अध्यापकों की योग्यता पर ध्यान नहीं दिया जाता। विश्वविद्यालय भी कई बार दबाव के कारण निम्न स्तर वाले महाविद्यालयों को मान्यता प्रदान कर देते हैं। राज्य सरकार भी शिक्षक-प्रशिक्षण पर पर्याप्त ध्यान नहीं देती और केवल वरिष्ठता के आधार पर अनिच्छा वालों को भी इन महाविद्यालयों के अध्यापक नियुक्त कर देती है। इस सम्बन्ध में भारतीय शिक्षक प्रशिक्षक संघ ने केन्द्रीय और राज्य सरकारों को निवेदन किया कि शिक्षक प्रशिक्षकों की योग्यता में वृद्धि की जाए। राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसधान व प्रशिक्षण परिषद् भी समय-समय पर सेवारत प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित करती है पर डॉ० चौरसिया का विचार है कि हर स्तर के शिक्षक-प्रशिक्षक की योग्यता वृद्धि के लिए तो अवकाशकालीन व संध्याकालीन पाठ्यक्रम,

पत्राचार पाठ्यक्रम, ग्रीष्मकालीन शिविर आदि की एक शृंखला ही आरम्भ करनी पड़ेगी। शिक्षा में पीएच.डी. बहुत कम हैं। सन १९३० और १९६२ के बीच शिक्षा में केवल ८० पीएच.डी. उपाधियाँ दी गई। आवश्यकता को देखते हुए यह संख्या बहुत ही अपर्याप्त है। डॉ० चौरसिया ने इस बात पर बल दिया कि विश्वविद्यालयों को शिक्षा में पीएच. डी. करने वालों के लिए सुविधाएँ देनी चाहिए और योजनाबद्ध तरीके से संख्या बढ़ाने का प्रयत्न किया जाना चाहिए।

चुनाव

माध्यमिक शिक्षा आयोग के अनुसार अध्यापकों के चयन में प्रायः सावधानी नहीं बरती जाती। यही आलोचना शिक्षक-प्रशिक्षकों के चुनाव के सम्बन्ध में है क्योंकि इन अध्यापकों में से ही शिक्षक-प्रशिक्षक चुने जाते हैं। १९५० और १९७० के बीच शिक्षक-प्रशिक्षण महाविद्यालयों की संख्या में पाँच गुनी वृद्धि हुई है। विस्तार के साथ योग्यतम व्यक्तियों की उपलब्धि की समस्या प्रायः होती है। माध्यमिक शिक्षा आयोग ने यह सुझाव दिया था कि शिक्षक-प्रशिक्षण महाविद्यालयों के प्राध्यापकों और निरीक्षकों व प्रधानाध्यापकों में परिवर्तन होता रहना चाहिए ताकि प्राध्यापकों को क्षेत्र की वास्तविक परिस्थितियों से परिचय होता रहे और निरीक्षक व प्रधानाध्यापक भी सिद्धान्तों से परिचित रहें और उनके अनुसार क्षेत्र में व्यवहार पर बल दें। यह बहुत अच्छा सुझाव था परन्तु इसकी क्रियान्विति में काफी कठिनाइयाँ हैं। राजकीय महाविद्यालयों में तो यह संभव है पर अराजकीय महाविद्यालयों के प्राध्यापक आवधिक रूप से पदों में परिवर्तन नहीं कर सकते। राजकीय महाविद्यालयों की संख्या भी अराजकीय महाविद्यालयों की तुलना में बहुत कम है। राजकीय महाविद्यालयों में भी जहाँ इस प्रकार पदों में परिवर्तन संभव है, बहुत कम ध्यान दिया गया और जहाँ पद बदले गए वहाँ योग्यता को दृष्टि में नहीं रखा गया। शिक्षक-प्रशिक्षक का कार्य अन्य प्रशासनिक कार्यों से बहुत भिन्न है। विद्यालयों के शिक्षण से भी यह कार्य भिन्न है क्योंकि यहाँ प्रौढ़ छात्र होते हैं। फिर आज शिक्षक-प्रशिक्षण की प्रभावशीलता के बारे में जो नाना प्रकार की धारणाएँ व्याप्त हैं उन्हें बदलने और अच्छे शिक्षण के लिए अध्यापकों में आस्था पैदा करने के लिए बहुत ही विचारवान, कर्मठ व लगन-शील शिक्षक-प्रशिक्षकों की आवश्यकता है। मात्र पद की समकक्षता से जब व्यक्तियों की अदलाबदली हो जाती है तो स्तर को रख पाना बड़ा कठिन

होता है। इसी कारण शिक्षा आयोग (१९६६) ने कहा, "राजकीय संस्थाओं में अध्यापक और निरीक्षक आपस में बदले जा सकते हैं और फल यह होता है कि अयोग्य और अवांछनीय लोग प्रायः प्रशिक्षण शालाओं में नियुक्त कर दिए जाते हैं। अतः यह परम आवश्यक है कि प्रशिक्षण शालाओं के लिए केवल योग्यतम और सर्वोत्तम पात्र ही चुने जाएँ।"

शिक्षक-प्रशिक्षकों के चुनाव के लिए यह आवश्यक माना जाता है कि उन्हें विद्यालयों में अध्यापन का अनुभव हो। इसका अर्थ यह हुआ कि विद्यालय का अध्यापक ही आगे जाकर शिक्षक-प्रशिक्षक बन सकता है। लाभ तो यह है कि विद्यालयी अनुभव के कारण विद्यालयों की वास्तविक परिस्थितियाँ और समस्याओं की जानकारी हो जाती है और फिर उसके आधार पर दिया जाने वाला प्रशिक्षण वास्तविकता से काफी समीप होता है। यह भी सच है कि अध्यापकों के वेतन-मान अच्छे नहीं होने के कारण योग्यतम व्यक्ति इस ओर आकृष्ट नहीं होते। शिक्षक-प्रशिक्षकों का चुनाव भी अध्यापकों से ही होता है अतः योग्यतम व्यक्ति फिर कम ही उपलब्ध हो पाते हैं।

एक कठिनाई और है। प्रशिक्षकों के लिए व्यावसायिक योग्यता पर भी बल दिया जाता है। यह उचित ही है कि प्रशिक्षक स्वयं प्रशिक्षित तो होना ही चाहिए। यदि बी. एड. को अध्यापन करने वाला स्वयं उससे उच्च योग्यता प्राप्त अर्थात् एम. एड. नहीं है तो वह अपने विषय का अध्यापन भली प्रकार नहीं कर सकता। एम. एड. में प्रवेश के लिए बी. एड. आवश्यक योग्यता मानी जाती है और अधिकतर प्रथम और द्वितीय श्रेणी स्नातक या अधिस्नातक बी. एड. में जाते ही नहीं क्योंकि अध्यापन के व्यवसाय में उन्हें तरक्की के बहुत कम अवसर दीखते हैं। शिक्षक-प्रशिक्षण महाविद्यालयों में शैक्षिक मनोविज्ञान, शैक्षिक दर्शन और शैक्षिक समाजशास्त्र वे ही अध्यापक पढ़ाते हैं जिन्होंने कि इन विषयों का अध्ययन बी. एड. अथवा एम. एड. स्तर पर किया हो। निश्चय ही, कुछ अनुभवी व्यक्तियों को छोड़कर अन्यों में इन विषयों को पढ़ाने की योग्यता नहीं होती। शिक्षा आयोग (१९६६) भी इस बात से सहमत है—शिक्षा में वृत्तिक योग्यता की आवश्यकता पर जोर दिया जाने के कारण ऐसे अध्यापक प्रशिक्षण शालाओं में नियुक्ति नहीं पा सकते जो अन्य विषयों में विशेष योग्यता प्राप्त हों और निस्संदेह स्तर ऊँचा उठाने में सहायक हो सकते हों। शैक्षिक मनोविज्ञान,

समाज विज्ञान, विज्ञान और गणित जैसे विषयों के लिए इन विषयों के विशेषज्ञ नियुक्त करना ही उचित होगा चाहे उनके पास वृत्तिक प्रशिक्षण की योग्यता न हो।

इस बात से तो सभी सहमत हैं कि शिक्षक-प्रशिक्षक को उच्च योग्यता प्राप्त होना चाहिए। समस्या इतनी सी है कि उच्चतम योग्यता प्राप्त व्यक्ति को इस व्यवसाय की ओर किस प्रकार आकृष्ट करें। उच्च वेतनमान तो इसमें सहायक होंगे हो पर डॉ० जी० चौरसिया ने एक नया सुझाव दिया है। उनका मत है कि प्रथम या उच्च द्वितीय श्रेणी के अधिस्नातक का शिक्षक प्रशिक्षक के रूप में चुनाव किया जाए और फिर उसे दो वर्ष का एम० एड० प्रशिक्षण दिया जाए। इस दो वर्ष के प्रशिक्षण में उसे समुचित स्टाइपेण्ड दिया जाए और बाद में शिक्षक-प्रशिक्षक के रूप में उसकी नियुक्ति महा- विद्यालय में की जाए। इसका स्पष्ट अर्थ है कि एम० एड० पाठ्यक्रम दो वर्ष का हो और योग्यतम व्यक्तियों को बी०एड० किए बिना ही सीधा इसमें प्रवेश दिया जाए।

डॉ० एन० पी० पिल्लई ने भी इस विषय पर विचार किया। उनका सुझाव इस प्रकार है—'किसी व्यक्ति को उच्च योग्यता का तभी माना जा सकता है जबकि उसने अधिस्नातक परीक्षा प्रथम या उच्च द्वितीय श्रेणी में उत्तीर्ण की हो। इस श्रेणी का कोई भी व्यक्ति बी० एड० में साधारणतया प्रवेश लेना नहीं चाहता। होना यह चाहिए कि अच्छे और विद्वान व्यक्तियों को चुना जाए व फिर उन्हें शिक्षक-प्रशिक्षक का प्रशिक्षण दिया जाए। यदि उन्हें इस बात का विश्वास हो जाए कि उन्हें शिक्षक-प्रशिक्षक के रूप में नियुक्ति मिलेगी तो वे निश्चय ही प्रशिक्षण काल में विशेष परिश्रम करेंगे व वहाँ भी उच्च श्रेणी प्राप्त करेंगे। अध्यापन-अभ्यास, आलोचना-पाठ आदि में उन्हें नई विधियों के प्रयोग का अवसर दिया जाए। इस प्रकार जो उच्च योग्यता प्रदर्शित करें उन्हें एम. एड. में सीधा प्रवेश दिया जाए। एम. एड. में समुचित छात्रवृत्ति का प्रबन्ध किया जाए। एम. एड. में भी उच्च योग्यता प्राप्त करने वालों को एक वर्ष इन्टरनी की तरह महाविद्यालयों में रखा जाए और किसी अच्छे प्राध्यापक से संलग्न किया जाए। वह अभ्यास-पाठ को जाँचने, पाठों का परिवीक्षण करने आदि में उसकी सहायता करे और पढ़ाने के साथ कक्षा में उपस्थित रहकर उसे देखे। विद्यालयों में भी वह कुछ समय तक अध्यापन करे और छात्रों के अभ्यास-पाठों का परिवीक्षण कर हर पद पर उनसे

चर्चा करे। यह अवधि शिक्षार्थी की तरह बीते और बाद में वह महाविद्यालय में विधिवत अध्यापक बने।'

ये सभी बातें विचार योग्य हैं। निश्चित ही है कि उच्च श्रेणी के अधि-स्नातक जब तक इस व्यवसाय को नहीं चुनेंगे तब तक स्तर-सुधार वाली बात, केवल बात तक ही सीमित रहेगी। यदि इस समस्या का हल ढूँढ़ना है तो हमें निम्नलिखित कार्यवाही करनी पड़ेगी—

१. एम. एड. का पाठ्यक्रम दो वर्ष का बनाएँ।
२. योग्य और उच्च योग्यता प्राप्त अधिस्नातकों को बिना बी. एड. की शर्त लगाए इसमें प्रवेश दे।
३. इस पाठ्यक्रम में अच्छे छात्रों को आकृष्ट करने के लिए यथेष्ट छात्र-वृत्तियों का प्रावधान करें और
४. जो एम. एड. में उच्च योग्यता प्राप्त करें उन्हें शिक्षक-प्रशिक्षक के रूप में नियुक्त करें।

जहाँ तक विद्यालयों के अध्यापन-अनुभव का प्रश्न है, इस पर भी भिन्न-भिन्न मत हैं। कुछ लोग यह मानते हैं कि विद्यालय परिस्थितियों का बिना अनुभव हुए, ज्ञान केवल सिद्धान्तों तक ही सीमित रहेगा और छात्रा-ध्यापकों को ऐसे अध्यापकों से अच्छा प्रशिक्षण नहीं मिल सकेगा। कुछ लोग यह मानते हैं कि इस प्रकार का अनुभव न होने का अर्थ यह नहीं है कि ऐसे अध्यापकों द्वारा प्रभावी अध्यापन नहीं सकेगा। यह आवश्यक नहीं है कि विद्यालय का अच्छा अध्यापक, अच्छा शिक्षक-प्रशिक्षक बन जाए या अच्छा शिक्षक-प्रशिक्षक विद्यालयों में अच्छा अध्यापन कर ही सके। फ्रांसेस चेज ने कहा 'इस विषय पर कोई प्रमाण उपलब्ध नहीं है कि विद्यालयों में अध्यापक रहने के बाद वह भावी अध्यापकों को भी प्रभावी मार्गदर्शन दे सके। प्रशि-क्षणार्थियों को केवल अध्यापन का एक नमूना नहीं चाहिए परन्तु कई नमूने चाहिए। जो अध्यापक एक ही प्रकार के नमूने से बंध जाता है वह अपने विद्यार्थियों को अध्यापन के कई नमूने और प्रभावी अध्यापन में मदद नहीं कर सकता।'

परन्तु यह उचित ही लगता है कि शिक्षक-प्रशिक्षक को विद्यालय में पढ़ाने का कुछ अनुभव अवश्य हो ताकि जिन छात्रों के लिए उसे अध्यापक तैयार करने हैं उनकी समस्याओं का उसे पूरा ज्ञान हो। वैसे इस विषय पर निश्चित मत बनाने के लिए अनुसंधान की आवश्यकता है पर जो प्रस्ताव ऊपर दिए

गए हैं उनसे इस आवश्यकता की पूर्ति भी कुछ सीमा तक हो सकती है। विद्यालय में नियुक्ति लिए बिना वह बी. एड. में विशेष अध्यापन कार्य करे और शिक्षक-प्रशिक्षण महाविद्यालय में अध्यापक की नियुक्ति होने के बाद भी डॉ० पिल्लई के सुझाव के अनुसार प्रारम्भिक वर्षों मे वह विद्यालय में अध्यापन करे तो सीधा शिक्षक-प्रशिक्षक नियुक्त होने पर भी उसे विद्यालयी अवस्थाओं का अच्छा ज्ञान हो सकता है। अधिक महत्त्वपूर्ण बात तो केवल यह है कि योग्यतम व्यक्तियों को इस व्यवसाय में आने के अवसर उपलब्ध कराए जाएँ।

वेतनमान व प्रतिष्ठा

शिक्षक-प्रशिक्षण महाविद्यालयों में अच्छे अध्यापक न होने का एक प्रमुख कारण यह है कि इनके वेतनमान आकर्षक नही हैं। राज्यों में शिक्षक प्रशिक्षकों की भिन्न-भिन्न वेतन-शृखलाएँ हैं। विश्वविद्यालयों के शिक्षा विभागों में कार्य करने वाले अध्यापकों के वेतनमान तो सभी जगह समान हैं और अन्य विषयों के अध्यापकों के समकक्ष है। लेक्चरर का ४००-९५०, रीडर ७००-१२५० और प्रोफेसर ११००-१६०० है। अच्छे वेतनमानों और विश्व-विद्यालयों के अन्य अध्यापकों के बराबर ही प्रतिष्ठा होने के कारण इन शिक्षा विभागों के लिए अच्छी योग्यता वाले अध्यापक उपलब्ध हो जाते है। राज्य द्वारा संचालित महाविद्यालयों में वेतनमान कम हैं और अराजकीय महा-विद्यालयों की स्थिति तो इससे भी बुरी है। कई राज्यों में अराजकीय और राजकीय महाविद्यालयों के अध्यापकों के भिन्न-भिन्न वेतनमान है। अराजकीय महाविद्यालयों में लेक्चरर का वेतनमान भिन्न-भिन्न राज्यों में १२५-४००, २००-५००, २२५-३५०, १५०-५००, २००-६२५ और ३००-११०० है। केन्द्र-शासित प्रदेशों की स्थिति अन्य राज्यों से अच्छी है। राजस्थान के अराज-कीय महाविद्यालयों में लेक्चरर को ३७५-८५० या २८५-८०० की वेतन शृंखला दी जाती है। राजकीय महाविद्यालयों में लेक्चरर का वेतनमान अराज-कीय महाविद्यालयों की तुलना मे अच्छा है। यह भी अलग-अलग राज्यों में अलग-अलग है। २५५-३५०, २५०-५००, २००-६००, २५०-६००, ३५०-९२५, ३७५-८५०, ४००-८००, २५०-१००० आदि कई वेतनमान हैं। राजस्थान के राजकीय महाविद्यालय में लेक्चरर को ३७५-८५० की वेतन शृंखला में नियुक्ति दी जाती है। वरिष्ठ लेक्चरर का वेतनमान ६००-११००, प्रोफेसर का ७००-१२००, बी. एड. स्तर के महाविद्यालय के प्रधानाचार्य का ८००-

१३०० और एम. एड. स्तर के प्रधानाचार्य का ११००-१५०० है। अन्य राज्यों की तुलना में राजस्थान की स्थिति अच्छी है पर समग्र दृष्टि से विचार किया जाए तो वेतनमानों को बहुत अधिक आकर्षक बनाने की आवश्यकता है।

शिक्षक-प्रशिक्षण महाविद्यालय के अध्यापकों को किसी विषय में अधिस्नातक होना आवश्यक है जैसा कि एक सामान्य महाविद्यालय का अध्यापक होता है। इसके अतिरिक्त यह अपेक्षा और की जाती है कि उसे दो-चार वर्ष का अध्यापन-अनुभव हों। वह एम. एड. भी हो अर्थात् एम. ए. के बाद दो वर्ष और अध्ययन करे। इस प्रकार अधिस्नातक होने के ५ वर्ष बाद ही वह शिक्षक-प्रशिक्षण महाविद्यालय का अध्यापक बनने के योग्य होता है। इसी दृष्टि से शिक्षक-प्रशिक्षक का वेतनमान निश्चय ही सामान्य महाविद्यालय के अध्यापक से अधिक होना चाहिए। श्री इ. ए. पिरेस का सुझाव है कि शिक्षक-प्रशिक्षक को वेतनमान में महाविद्यालय के सामान्य अध्यापक से पाँच अग्रिम वेतन-वृद्धियाँ दी जानी चाहिए। शिक्षा आयोग ने भी यह सिफारिश की कि विशेष वृत्तिक प्रशिक्षण की योग्यता को ध्यान में रखकर दो अग्रिम तरक्कियाँ दी जानी चाहिए। जब तक वेतनमान की असमानता दूर नहीं की जाती और अग्रिम वेतन-वृद्धियाँ नहीं दी जाती, निश्चय ही अच्छे और योग्य व्यक्ति इस व्यवसाय में नही आएँगे।

जैसे-जैसे प्रशिक्षित अध्यापकों की माँग बढ़ी, अराजकीय क्षेत्र में बहुत से महाविद्यालय खुल गए। राजकीय क्षेत्र ने इस तरफ बहुत कम ध्यान दिया। निजी क्षेत्र में बहुत से ऐसे महाविद्यालय हैं जिन्हें राजकीय अनुदान भी नहीं मिलता और वे केवल छात्रों के शुल्क पर चलते हैं। ऐसी स्थिति में शिक्षक प्रशिक्षकों के अच्छे वेतनमानों की कल्पना आसानी से नहीं की जा सकती। जब तक विश्वविद्यालय मान्य वेतनमानों पर विशेष बल न दे और राज्य अपनी ओर से महाविद्यालय खोलने की पहल न करे, समस्या का समाधान कठिन ही लगता है। पर केवल कठिन मान लेने मात्र से ही काम नहीं चलेगा। इस सम्बन्ध में निम्नलिखित कदम शीघ्र उठाए जाने चाहिए—

१. सभी महाविद्यालयों के अध्यापकों को विश्वविद्यालय द्वारा निर्धारित वेतनमान दिए जाएँ। विश्वविद्यालय वेतनमान की शर्तों को कड़ाई से पालन कराएँ और जो महाविद्यालय इसके अनुरूप कार्य न करें उनकी मान्यता रद्द कर दें।

२. राजकीय और अराजकीय महाविद्यालयों के अध्यापकों के समान वेतनमान निधारित किए जाएँ।

३. सभी अराजकीय शिक्षक-प्रशिक्षण महाविद्यालयों को राजकीय अनुदान दिया जाए या आवश्यकतानुसार राज्य ही शिक्षक-प्रशिक्षण महाविद्यालयों की स्थापना करे।

४. शिक्षा आयोग की सिफारिश के अनुसार अन्य समकक्ष अध्यापकों से शिक्षक-प्रशिक्षकों को अग्रिम वेतन-वृद्धियाँ दी जाए।

अध्यापन-अनुभव

प्राय: सभी शिक्षक-प्रशिक्षण महाविद्यालयों के अध्यापकों को विद्यालयों में अध्यापन का अनुभव है और उन अध्यापकों का प्रतिशत बहुत कम है जिन्हें यह अनुभव नहीं है। १९६४-६५ के सर्वेक्षण के अनुसार विद्यालय-अनुभव की स्थिति इस प्रकार है—

तालिका संख्या ४२

शिक्षक-प्रशिक्षकों का विद्यालयों में अध्यापन-अनुभव

वर्ष	प्रशिक्षकों की संख्या	प्रतिशत
१० से अधिक	५९०	३४.३
५ से १०	४४१	२६.५
५ से कम	४९०	२९.४
बिल्कुल नहीं	१६२	९.८
कुल	१६८३	१००.००

इस सर्वेक्षण में कुल १६८३ प्रशिक्षकों ने सूचनाएँ भेजी थी। इससे ज्ञात होता है कि ६० प्रतिशत से अधिक को विद्यालयों में अध्यापन का पाँच वर्ष से भी ज्यादा अनुभव है परन्तु लगभग १० प्रतिशत को यह अनुभव बिल्कुल नहीं है। सामान्यतया यही माना जाता है कि शिक्षक-प्रशिक्षक को विद्यालय में काम करने का अनुभव अवश्य होना चाहिए और इसके बिना वर्तमान परिस्थिति में अच्छा प्रशिक्षण नहीं दे सकता।

विद्यालयी अनुभव के अतिरिक्त महाविद्यालय में अध्यापन-अनुभव अगले पृष्ठ पर प्रदत्त तालिका से स्पष्ट होता है—

तालिका संख्या ४३

शिक्षकों-प्रशिक्षकों का महाविद्यालय में अध्यापन-अनुभव

वर्ष	शिक्षक-प्रशिक्षकों की संख्या	प्रतिशत
१० से अधिक	३६०	२१.४
५ से १०	४७८	२८.०
५ से कम	८४५	५०.६
कुल	१६८३	१००.००

लगभग ५० प्रतिशत शिक्षक-प्रशिक्षको को इन महाविद्यालयों में ५ वर्ष से अधिक समय तक कार्य करने का अनुभव है। सन् १९६० में महाविद्यालयों की संख्या २०७ थी जबकि सन् १९६५ में यह संख्या २७३ हो गई थी। वैसे तो इन महाविद्यालयों से भी प्रशिक्षक अन्य सेवाओं में चले जाते हैं पर इन वर्षों मे विस्तार को दृष्टि में रखकर यह तो कहा ही जा सकता है कि स्टॉफ सामान्यतया स्थिर है।

महाविद्यालयों मे कई स्थानों पर उपयुक्त अध्यापकों की उपलब्धि में भी कठिनाई होती है। २१.६५ प्रतिशत महाविद्यालयों ने यह कठिनाई बताई। विज्ञान, अंग्रेजी, गणित और मनोविज्ञान के अध्यापक कम मिलते हैं। पंजाब के ३० प्रतिशत और उत्तरप्रदेश के ३७.३ प्रतिशत महाविद्यालयों में विज्ञान के अध्यापक उपलब्ध नहीं थे। पंजाब में २६ और उत्तरप्रदेश के १८.७ प्रतिशत महाविद्यालयों में अंग्रेजी के निश्चित योग्यता वाले अध्यापक नहीं थे। यही समस्या गणित अध्यापकों के संबंध मे थी। सामान्यतया इन विषयों के अध्यापकों की महाविद्यालयों में कमी ही रहती है और इन विषयों का अध्यापन अन्य अध्यापकों से कराया जाता है जिनका अधिस्नातक स्तर पर वह विषय न रहा हो। यह स्थिति वास्तव में चिन्ताजनक है। ९.५ प्रतिशत महाविद्यालयों में अध्यापकों को निरन्तर सेवा में बनाए रखने की भी समस्या है क्योंकि वे अन्यत्र सेवा के लिए चले जाते है। पंजाब में विज्ञान विषय के अध्यापकों के सम्बन्ध में यह समस्या विशेष रूप से है।

अध्यापकों को निरन्तर सेवा में बनाए रखने की समस्या भारत में ही हो, ऐसी बात नहीं है । विकसित देशों में भी शिक्षक-प्रशिक्षण महाविद्यालयों में अध्यापक स्थिर नहीं रहते । कारण कई हो सकते हैं—अच्छे वेतनमान नहीं होना, पदोन्नति के कम अवसर होना, प्रतिष्ठा की कमी आदि । सन् १९६४ में नफील्ड फाउन्डेशन की सहायता से इंगलैण्ड में एक सर्वेक्षण किया गया । इससे ज्ञात हुआ कि अधिकतर युवा अध्यापक प्रशिक्षण महाविद्यालयों में रहना नहीं चाहते थे । १९३० के बाद के जन्म वालों में से केवल ५० प्रतिशत ने बताया कि वे इस व्यवसाय में रहना चाहते हैं जबकि ५० से ५५ आयु-वर्ग के ८० प्रतिशत इस व्यवसाय में रहने के इच्छुक थे । कारण स्पष्ट है कि अधिक वर्षों तक कार्य करने के बाद व्यक्ति अपना पद छोड़कर अन्यत्र जाना नही चाहता क्योंकि तब तक वह काफी वेतन वृद्धियाँ प्राप्त कर चुका होता है और अन्यत्र अधिक वेतन की सम्भावना कम रहती है पर युवा अध्यापक पदोन्नति के कम अवसर होने और अच्छे वेतनमान न होने से अन्यत्र चले जाते हैं । आवश्यकता इस बात की है कि इन महाविद्यालयों में अध्यापकों के वेतनमान अच्छे किए जाएँ और पदोन्नति के अवसर बढ़ाए जाएँ ताकि अध्यापक अधिक समय तक सेवा में रह सकें और उनके परिपक्व अनुभव का लाभ छात्रों को मिल सके ।

छात्र-अध्यापक अनुपात

शिक्षण की दृष्टि से छात्र-अध्यापक अनुपात का बड़ा महत्त्व है । इस पर ही काफी मात्रा में छात्र-अध्यापक सम्बन्ध और शिक्षण स्तर निर्भर करता है । सन् १९६४–६५ में २३१ शिक्षक-प्रशिक्षण महाविद्यालयों में बी. एड. के २४७७७ छात्राध्यापक अध्ययन कर रहे थे । उस समय प्राध्यापकों की संख्या २५४३ थी अतः राष्ट्रीय स्तर पर छात्र-अध्यापक अनुपात लगभग १:१० था । सबसे अधिक अनुपात १ : १९ बिहार में व सबसे कम १ : ४ केन्द्र-शासित प्रदेशों में था । आन्ध्र प्रदेश व केरल में १ : १२, जम्मू कश्मीर, पंजाब और बंगाल में १ : ११, मध्यप्रदेश में १ : १० और अन्य राज्यों में १ : १० से कम था । राजस्थान में १ : ८ और उत्तरप्रदेश में १ : ९ था ।

कार्यभार

शिक्षक-प्रशिक्षण महाविद्यालयों के अध्यापकों का कार्यभार चार प्रकार का होता है—(१) अध्यापन, (२) परिवीक्षण, (३) अनुसंधान निर्देशन और (४) किसी अनुसंधान प्रायोजना पर कार्य । विभिन्न राज्यों में

यह कार्यभार भिन्न है। इस सम्बन्ध में १९६५ के सर्वेक्षण के आधार पर निम्नलिखित तथ्य ज्ञात होते हैं—

(अ) अध्यापन कार्य

(१) प्रधानाचार्य

विश्वविद्यालयों के शिक्षा विभागों के प्रधानाचार्यों के अध्यापन कार्य के बारे में विशेष तथ्य प्राप्त नहीं हुए। केवल उस्मानिया महाविद्यालय (आन्ध्रप्रदेश) के प्रधानाचार्य से सूचना प्राप्त हुई। उनका अध्यापन कार्य प्रति सप्ताह नौ घण्टे है। राजकीय और अराजकीय महाविद्यालय के प्रधानाचार्यों का प्रति सप्ताह कार्य क्रमशः २–८ और ६–१० घंटे है।

(२) प्रोफेसर

विश्वविद्यालय और राजकीय व अराजकीय शिक्षक-प्रशिक्षण महाविद्यालयों में प्रोफेसर के अध्यापन कार्य प्रति सप्ताह क्रमशः ४-१५, ३-१६, और २-१२ घण्टों के बीच रहते हैं। विश्वविद्यालयों में प्रोफेसर का कार्यभार सबसे अधिक तमिलनाडु (१५), पंजाब (१०) और महाराष्ट्र (१०) में है जबकि सबसे कम महाराष्ट्र (२), बिहार (३) और गुजरात (३) हैं। महाराष्ट्र के कार्यभार २ से १० घण्टों के मध्य रहता है। राजकीय महाविद्यालयों में प्रोफेसर का अध्यापन कार्यभार पंजाब (१६) और मध्यप्रदेश (११) में सबसे अधिक है परन्तु महाराष्ट्र (३) और जम्मू व कश्मीर में सबसे कम है। अराजकीय महाविद्यालयों में उत्तरप्रदेश में २–१२ घण्टे प्रति सप्ताह और गुजरात व राजस्थान में २–४ घण्टे प्रति सप्ताह है।

(३) रीडर

रीडर का प्रति सप्ताह अध्यापन कार्य विश्वविद्यालय, राजकीय और अराजकीय महाविद्यालयों में क्रमशः ५–२०, ५–१६ और ३–१२ घण्टा है। यह कार्यभार विश्वविद्यालयों में कार्य कर रहे रीडर का उत्तरप्रदेश (२० घंटा) और तमिलनाडु (१५ घंटा) में सबसे अधिक है परन्तु बिहार (६ घंटा) और केन्द्र शासित प्रदेशों (५ घंटा) में सबसे कम है। राजकीय महाविद्यालयों में पंजाब में १६ घण्टा परन्तु मध्यप्रदेश में ५ घण्टा प्रति सप्ताह ही है।

(४) लेक्चरर

विश्वविद्यालयों में इनका प्रति सप्ताह अध्यापन कार्य ३–१८ घंटों के बीच, राजकीय महाविद्यालयों में २-२४ के बीच और अराजकीय महाविद्यालयों में ३–१८ के बीच रहता है। विश्वविद्यालय में कार्यरत लेक्चररों में

सबसे अधिक भार केन्द्र-शासित प्रदेशों में १८ प्रति सप्ताह है जबकि गुजरात में ३ घंटा ही है। राजकीय शिक्षक-प्रशिक्षण महाविद्यालयों में पंजाब में २४ घंटा परन्तु उत्तरप्रदेश में २ घंटा प्रति सप्ताह ही है। अराजकीय महाविद्यालयों में लेक्चरर को उत्तरप्रदेश में १८ घंटा जबकि राजस्थान, महाराष्ट्र और गुजरात में प्रति सप्ताह ३ घंटा ही अध्यापन कार्य करना पड़ता है।

(आ) अध्यापनाभ्यास का परिवीक्षण कार्य

सामान्यतया अध्यापनाभ्यास का परिवीक्षण वर्ष भर नहीं रहता है। अधिक से अधिक यह कार्य छः माह तक होता है। वर्ष में कुछ समय ऐसा भी होता है जबकि अध्यापनाभ्यास के अतिरिक्त और कोई कार्य नहीं होता और केवल अध्यापन-योजना देखना व अध्यापनाभ्यास का परिवीक्षण ही होता है।

(१) प्रधानाचार्य—

प्रधानाचार्यों के परिवीक्षण कार्य के बारे में समुचित तथ्य उपलब्ध नहीं हैं परन्तु जो भी उपलब्ध हैं उससे ज्ञात होता है कि राजकीय महाविद्यालयों में उन्हें प्रति सप्ताह १८ घंटा परिवीक्षण कार्य करना पड़ता है।

(२) प्रोफेसर—

विश्वविद्यालय, राजकीय एवं अराजकीय महाविद्यालयों के प्रोफेसर का परिवीक्षण कार्य क्रमशः २–१०,४–१२ और ३–१२ घंटा प्रति सप्ताह है। विश्वविद्यालय के प्रोफेसर का सबसे अधिक परिवीक्षण कार्य केरल में १० घंटा प्रति सप्ताह है परन्तु गुजरात, तामिलनाडु, पंजाब और बंगाल में सबसे कम २ घंटा है। राजकीय महाविद्यालयों में प्रोफेसर का सबसे अधिक परिवीक्षण कार्य मध्यप्रदेश और पंजाब में १२ घंटा प्रति सप्ताह है। अराजकीय महाविद्यालयों में प्रोफेसर का परिवीक्षण कार्य गुजरात (१२ घंटा) और महाराष्ट्र (१० घंटा) में सबसे अधिक है परन्तु महाराष्ट्र और राजस्थान में सबसे कम ३ घंटा ही है।

(३) रीडर—

विश्वविद्यालय, राजकीय एवं अराजकीय महाविद्यालयों में रीडर का परिवीक्षण कार्य क्रमशः २-१८, २–१२ और ६–१५ घंटा प्रति सप्ताह है। विश्वविद्यालयों में बिहार में रीडर का परिवीक्षण कार्य १८ घंटा है जबकि तमिलनाडु और बंगाल में यह २ घंटा ही है। राजकीय महाविद्यालयों में

सबसे कम २ और सबसे अधिक १२ घंटा का कार्य मध्यप्रदेश में है। इसी प्रकार अराजकीय महाविद्यालयों में महाराष्ट्र में यह कार्यभार सबसे कम ६ घंटा और सबसे अधिक १५ घंटा है।

(४) लेक्चरर—

विश्वविद्यालय, राजकीय एवं अराजकीय महाविद्यालयों में लेक्चरर का परिवीक्षण कार्य क्रमशः २–१८, २–१८ और ३–१५ घंटा प्रति सप्ताह रहता है। विश्वविद्यालय के लेक्चरर का सबसे अधिक परिवीक्षण कार्य बिहार में १८ घंटा है और सबसे कम पंजाब में २ घंटा है। राजकीय महाविद्यालयों में सबसे अधिक कार्यभार १८ घंटा प्रति सप्ताह बिहार और मध्यप्रदेश में रहता है और सबसे कम २ घंटा प्रति सप्ताह तामिलनाडु में है। अराजकीय महाविद्यालयों में सबसे अधिक १५ घंटों का कार्यभार उत्तरप्रदेश में है परन्तु सबसे कम भी उत्तरप्रदेश और केरल में प्रति सप्ताह ३ घंटा है।

(इ) अनुसंधान निर्देशन

अध्यापन और अध्यापनाभ्यास के परिवीक्षण के अतिरिक्त शिक्षक-प्रशिक्षण महाविद्यालय के अध्यापक एम. एड. के विद्यार्थियों का अनुसंधान निर्देशन अथवा स्वयं अनुसंधान कार्य करते हैं। एम. एड. छात्रों के अनुसंधान निर्देशन के तथ्य इस प्रकार हैं—

(१) प्रोफेसर—

विश्वविद्यालय में एक प्रोफेसर के अधीन अनुसंधान कार्य निर्देशन के लिए २ से १० तक छात्र होते हैं। १० की सबसे अधिक संख्या उत्तरप्रदेश में है और २ गुजरात में है। राजकीय महाविद्यालयों में प्रति प्रोफेसर एम. एड, छात्र की संख्या १ से ६ रहती है। सबसे कम और सबसे अधिक संख्या मध्यप्रदेश में ही है। अराजकीय महाविद्यालयों में एक प्रोफेसर ३ से १५ एम. एड. छात्रों का अनुसंधान निर्देशन करता है। सबसे कम संख्या गुजरात और सबसे अधिक संख्या महाराष्ट्र की है।

(२) रीडर—

विश्वविद्यालयों में प्रत्येक रीडर १ से ६ छात्रों को निर्देशन देता है। सबसे कम एक की संख्या आन्ध्र प्रदेश और सबसे अधिक ६ उत्तरप्रदेश में है। राजकीय महाविद्यालयों में रीडर १ से ३ के बीच छात्रों का निर्देशन करते हैं—सबसे कम संख्या मध्यप्रदेश और सबसे अधिक संख्या राजस्थान में

है। अराजकीय महाविद्यालयों में रीडर ६ से ८ छात्रों का निर्देशन करता है। सबसे कम ६ छात्र महाराष्ट्र में और सबसे अधिक ८ छात्र राजस्थान में हैं।

(३) लेक्चरर—

विश्वविद्यालय में लेक्चरर १ से ६ छात्रों को अनुसंधान निर्देशन देता है। सबसे कम १ की संख्या गुजरात और आंध्रप्रदेश में है परन्तु सबसे अधिक ६ छात्र पंजाब में है। यही स्थिति राजकीय महाविद्यालयों में लेक्चरर की है—एक विद्यार्थी मध्यप्रदेश और उत्तरप्रदेश में व ६ विद्यार्थी आन्ध्र प्रदेश में है। अराजकीय महाविद्यालयों में एक लेक्चरर १ से ५ छात्रों को निर्देशन देता है। यह संख्या सबसे कम गुजरात व राजस्थान में और सबसे अधिक भी राजस्थान में है।

(ई) अनुसधान कार्य

एम. एड. छात्रों का अनुसंधान निर्देशन करने के अतिरिक्त कई अध्यापक स्वयं भी अनुसंधान कार्य करते हैं। अनुसंधान कार्य करने के लिए राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान व प्रशिक्षण परिषद्, विश्वविद्यालय अनुदान आयोग, भारतीय सामाजिक विज्ञान अनुसंधान परिषद् आदि कई संस्थाएँ अनुदान देती हैं। चूंकि यह कार्य शिक्षक-प्रशिक्षण महाविद्यालय के अध्यापक के लिए ऐच्छिक कार्य है इसलिए उपलब्ध तथ्यों के आधार पर प्रति अध्यापक इस सम्बन्ध के कार्यभार के लिए कोई सामान्य निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता।

उपरोक्त तथ्यों को संक्षेप में निम्नलिखित तालिका में दिखाया जा रहा है—

तालिका सख्या ४४

शिक्षक-प्रशिक्षण महाविद्यालयों के अध्यापकों का कार्यभार घंटों में (कालांशों में नहीं)

पद	अध्यापक कार्य			परिवीक्षण कार्य		
	विश्वविद्यालय	राजकीय	अराजकीय	विश्वविद्यालय	राजकीय	अराजकीय
प्रधानाचार्य	६	२–८	६–१०	–	१८	–
प्रोफेसर	३–१५	३–१६	२–१२	२–१०	४–१२	३–१२
रीडर	५–२०	५–१६	३–१२	२–१८	२–१२	६–१५
लेक्चरर	३–१८	२–२४	३–१८	२–१८	२–१८	३–१५

तालिका संख्या ४४ से ज्ञात होता है कि किसी भी स्तर के अध्यापक का कार्यभार सब महाविद्यालयों में समान नहीं है। न्यूनतम और अधिकतम कार्य के घंटों में भी बहुत अधिक अन्तर है। विश्वविद्यालयों में और राजकीय महाविद्यालयों में अध्यापन के लिए लेक्चरर का न्यूनतम भार रीडर के न्यूनतम भार से भी कम है। विश्वविद्यालय मे तो रीडर को ५ से २० घंटा प्रति सप्ताह अध्यापन करना पड़ता है जबकि लेक्चरर को ३ से १८ घंटा ही। यही स्थिति परिवीक्षण कार्य की भी है। अराजकीय महाविद्यालयों में रीडर द्वारा ६ से १५ घंटा प्रति सप्ताह परिवीक्षण कार्य होता है जबकि लेक्चरर द्वारा ३ से १५ घंटा। किसी भी स्तर पर कोई मानक नहीं है। किन्हीं महाविद्यालयों में कार्यभार बहुत अधिक है और किन्हीं में कम। सामान्य महाविद्यालयों में प्रोफेसर को सप्ताह में १२ कालांश अर्थात् ९ घंटा, रीडर को १८ कालांश अर्थात् १३½ घंटा और लेक्चरर को २४ कालांश अर्थात् १८ घंटा अध्यापन करना होता है। सामान्य महाविद्यालय के अध्यापकों को शिक्षण-प्रशिक्षण महाविद्यालयों के अध्यापकों तरह अध्यापनाभ्यास का परिवीक्षण भी नहीं करना पड़ता है। इस दृष्टि से विचार किया जाए तो शिक्षक-प्रशिक्षण महाविद्यालयों में अध्यापकों का कार्य भार बहुत ज्यादा है। जहां कार्यभार अधिक होता है वहां अध्यापकों को स्वाध्याय, चिन्तन, अनुसंधान आदि के लिए कोई समय नहीं मिलता। फल यह होता है कि उनका अध्यापन कार्य भी एक रट मे पड़ जाता है। जब वे चिन्तन-मनन को आधार बनाकर अध्यापन में नवीनता नहीं ला सकते तो वह अरुचिकर हो जाता है। शिक्षक-प्रशिक्षक से लोग आशाएँ तो बहुत लगाते है पर सुविधाओं के अभाव में वह पूरी नही हो पाती।

अखिल भारतीय स्तर पर अध्यापक-छात्र अनुपात १ - १० है। फिर प्रश्न यह उपस्थित होता है कि अध्यापन व परिवीक्षण कार्यभार में हर स्तर पर इतना अन्तर क्यों है? अन्तर का कारण भिन्न-भिन्न स्थानों पर भिन्न-भिन्न प्रकार का समय-विभाग चक्र ही हो सकता है। कहीं पर महाविद्यालय का समय प्रातः ८ बजे से १२ बजे तक चार घंटा ही होता है और कहीं पर १० या १०.३० बजे प्रातः से ४.३० या ५ बजे साय तक ६½ घंटा होता है। इसी प्रकार कहीं पर सत्र पर्यन्त अध्यापनाभ्यास चलता है अर्थात् आधे समय तक अध्यापनाभ्यास व आधे समय सैद्धान्तिक कक्षाएँ और कही पर एक साथ महीने डेढ़ महीने केवल अध्यापनाभ्यास

कराया जाता है व उस समय सैद्धांतिक कक्षाएँ नही लगाई जाती है और फिर शेष समय में केवल सैद्धान्तिक कक्षाएँ ही लगाई जाती हैं। किन्हीं महाविद्यालयों में सभी छात्रों का हर अध्यापन कालांश का परिवीक्षण करना अनिवार्य होता है और कहीं पर सभी कालांशों में प्रत्येक अध्यापक का अध्यापना-भ्यास का परिवीक्षण नहीं किया जाता। कुछ महाविद्यालयों में एक विषय में एक कालाश मे दो या तीन छात्रों से अधिक को पाठ देने की अनुमति नहीं होती तो कही पर एक ही अध्यापक के मार्ग-निर्देशन में एक कालांश में इससे कई गुना अधिक छात्र पाठ देते हैं। इस प्रकार समय विभाग में साम्य और कोई मानक व्यवस्था न होने से कार्यभार के घंटे कम या अधिक निर्धारित हो जाते है। इस स्थिति के निराकरण के किए निम्नाकित उपाय किए जाने चाहिए—

१. हर स्तर के अध्यापक के सामान्य महाविद्यालय के अध्यापक की तरह ही कार्य के घंटे निश्चित किए जाएँ और उससे अधिक घंटों का अध्यापन व परिवीक्षण कार्य न दिया जाए।

२. जिन महाविद्यालयों में कार्यभार बहुत कम रहता है, उसके कारणों का पता लगाया जाए और समय-विभाग चक्र को इस प्रकार व्यवस्थित किया जाए कि एक उचित सीमा तक सभी को काम मिल जाए।

३. शिक्षक-प्रशिक्षण महाविद्यालयों में कार्य की मानक स्थिति तय की जानी चाहिए। जैसे एक कालांश में अध्यापक कितने छात्रों के अध्यापनाभ्यास का परिवीक्षण करे ? क्या प्रत्येक छात्र का प्रत्येक पाठ परिवीक्षित हो या नहीं। यदि नही तो कुल में से कितने परिवीक्षित अवश्य होने चाहिए ? प्रत्येक सैद्धान्तिक विषय को कितने कालांश दिए जाएँ ? आदि कई ऐसे प्रश्न हैं जिन पर विचार होना चाहिए। स्थिति में स्थान विशेष पर थोड़ा परिवर्तन तो किया जा सकता है पर ऐसी स्थिति न हो कि कहीं तो सप्ताह में २ घंटा ही अध्यापन करना पड़े और कहीं २४ घंटा।

एम. एड. के छात्रों के अनुसंधान निर्देशन के बारे में भी कोई समानता नहीं है। प्रत्येक अध्यापक को जितने छात्रों का निर्देशन करना पड़ता है यह अगले पृष्ठ की तालिका से स्पष्ट है—

तालिका संख्या ४५

शिक्षक-प्रशिक्षण महाविद्यालयों मे एम. एड. छात्रों का अनुसधान निर्देशन

	विश्वविद्यालय	राजकीय	अराजकीय
प्रधानाचार्य	—	—	—
प्रोफेसर	२-१०	१-६	३-१५
रीडर	१-६	१-३	६-८
लेक्चरर	१-६	१-६	१-५

अराजकीय शिक्षक-प्रशिक्षण महाविद्यालयों मे प्रोफेसर को अधिकतम १५, रीडर को ८ और लेक्चरर को ५ छात्रो का निर्देशन करना पड़ता है। विश्वविद्यालयों और राजकीय महाविद्यालयों मे स्थिति लगभग समान है, वहाँ १ से ६ छात्रों को निर्देशन करना पडता है। यह कार्य अध्यापन व परिवीक्षण कार्य के अतिरिक्त होता है। चूँकि एम. एड. के पाठ्क्रम में शोध विषय पर काफी बल होता है अतः इतने अधिक संख्या में छात्रों के निर्देशन का कार्य काफी कठिन होता है। या तो अध्यापकों को बहुत अधिक कार्य करना पड़ता है या फिर वे इतने अधिक छात्रों को समुचित रूप से निर्देशन नही दे सकते। ऐसी स्थिति मे कोई अच्छे स्तर की कल्पना नही की जा सकती। विश्वविद्यालयों को सीमा निर्धारित करनी चाहिए कि कोई भी अध्यापक ४ या ५ छात्रों से अधिक का निर्देशन नही कर सकता। इस तरह जहाँ एक ओर अध्यापकों का कार्यभार कम होगा वहाँ दूसरी ओर शोधकार्य का स्तर भी बढ़ सकेगा।

उपरोक्त सभी असमानताओं और न्यूनताओं का शीघ्र समाधान होना चाहिए। यह स्पष्ट है कि शिक्षक-प्रशिक्षको के स्तर व सेवा स्थितियों में सुधार की अत्यन्त आवश्यकता है। जितना शीघ्र यह कार्य होगा उतनी ही शीघ्रता से गुणात्मक सुधार की आशा की जा सकेगी।

१४

प्राथमिक शिक्षक-प्रशिक्षक

पिछले अध्याय में शिक्षक-प्रशिक्षण महाविद्यालयों के शिक्षक-प्रशिक्षकों की योग्यता, चुनाव, अध्यापन-अनुभव, कार्यभार आदि के सम्बन्ध में चर्चा की गई थी। शिक्षक-प्रशिक्षण विद्यालयों के बारे में राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान व प्रशिक्षण परिषद् ने सन् १९६६ में सर्वेक्षण किया था। इस अध्याय में इन विद्यालयों के शिक्षक-प्रशिक्षकों की योग्यता, चुनाव, अध्यापन-अनुभव, कार्यभार आदि के सम्बन्ध में चर्चा की जा रही है। आँकड़े उसी सर्वेक्षण पर आधारित हैं।

सन् १९६६ के सर्वेक्षण के लिए १५४८ प्राथमिक शिक्षक-प्रशिक्षण विद्यालयों को प्रश्नावली भेजी गई थी, जिनमें से १०९५ (७०.६ प्रतिशत) प्रश्नावलियाँ पुनः प्राप्त हुईं। ४५३ (२९.४ प्रतिशत) विद्यालयों ने उत्तर नहीं दिया। सर्वेक्षण से ज्ञात हुआ कि ४९.३ प्रतिशत विद्यालय शहरी क्षेत्रों में और ५०.७ प्रतिशत विद्यालय ग्रामीण क्षेत्रों में स्थित हैं। ६७ प्रतिशत विद्यालय राज्य द्वारा संचालित हैं, ३२ प्रतिशत अराजकीय परन्तु राज्य द्वारा सहायता प्राप्त है और १ प्रतिशत विद्यालय अराजकीय क्षेत्र में हैं परन्तु उन्हें राज्य द्वारा सहायता नहीं मिलती। केरल, तमिलनाडु और महाराष्ट्र में राजकीय विद्यालयों की तुलना में अराजकीय विद्यालय अधिक हैं। समस्त विद्यालयों में ५८.० प्रतिशत पुरुषों के, २६.० प्रतिशत महिलाओं के और १६ प्रतिशत सह-शिक्षा वाले विद्यालय हैं।

इन विद्यालयों में अध्यापकों की संख्या, उनकी शैक्षिक योग्यता और कार्यभार आदि सभी स्थानों पर समान नहीं है। बहुत से स्थानों पर तो न्यूनतम योग्यता के अध्यापक ही उपलब्ध नहीं हैं। ऐसी स्थिति में उनके द्वारा दिए जाने वाले प्रशिक्षण के स्तर की कल्पना आसानी से की जा सकती है।

योग्यता

सामान्यतया शिक्षक-प्रशिक्षण विद्यालयों के प्रधानाध्यापक और अध्यापक के लिए समान न्यूनतम योग्यता निर्धारित की हुई है—स्नातक के साथ शिक्षा–स्नातक की उपाधि। न्यूनतम योग्यता बी. ए. बी. एड. होने पर भी असम, मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र, उड़ीसा और राजस्थान में बहुत से विद्यालयों में इससे उच्च योग्यता के अध्यापक हैं। असम, केरल, मध्यप्रदेश और महाराष्ट्र के कुछ विद्यालयों में न्यूनतम योग्यता से कम योग्यता वाले अध्यापक भी कार्य कर रहे हैं। मध्यप्रदेश में तो ४८ प्रतिशत प्रधानाध्यापक न्यूनतम योग्यता से भी कम योग्यता के है। ऐसे ही कुछ विद्यालय असम, केरल और महाराष्ट्र में हैं। राजस्थान में ८३.७ प्रतिशत प्रधानाध्यापक न्यूनतम योग्यता से उच्च योग्यता प्राप्त हैं। प्राय: सभी राज्यों में इन विद्यालयों के प्रधानाध्यापक बेसिक शिक्षा में विशेष योग्यता प्राप्त हैं। किसी विद्यालय में प्रधानाध्यापक या उप-प्रधानाचार्य का पद नहीं है। शिक्षक-प्रशिक्षण विद्यालयों में सैद्धान्तिक विषय पढ़ाने वाले अध्यापकों के अतिरिक्त शारीरिक शिक्षा, उद्योग व कला के अध्यापक होते है। इन अध्यापकों की योग्यता सैकण्डरी परीक्षा के साथ अपने विषय का प्रमाण-पत्र या डिप्लोमा होती है। इन अध्यापकों के पास प्राय: शिक्षा का प्रमाण-पत्र या उपाधि नहीं होती। कुछ अहिन्दी प्रदेशों मे हिन्दी अनुदेशक भी नियुक्त किया जाता है। बंगाल में हिन्दी अध्यापक स्नातक अवश्य होता है।

शिक्षक-प्रशिक्षण विद्यालयों में प्रवेश के लिए छात्र की न्यूनतम योग्यता सैकण्डरी परीक्षा है। आजकल शिक्षा के प्रसार के साथ-साथ अधिक संख्या में हायर सैकण्डरी परीक्षा उत्तीर्ण छात्र आने लगे हैं। राजस्थान में तो इन विद्यालयों में प्रवेश की न्यूनतम योग्यता हायर सैकण्डरी कर दी है। अन्य राज्यों में भी हायर सैकण्डरी परीक्षा उत्तीर्ण कर छात्र शिक्षक-प्रशिक्षण विद्यालयों में प्रवेश लेने लगे हैं। हायर सैकण्डरी कक्षाओं को पढ़ाने वाले अध्यापक अपने विषय में अधिस्नातक होते हैं। शिक्षक-प्रशिक्षण विद्यालयों के अध्यापकों की न्यूनतम योग्यता यदि स्नातक ही है तो यह बड़ी विचित्र स्थिति है—हायर सैकण्डरी छात्र को अधिस्नातक योग्यता के अध्यापक पढ़ाएँ और हायर सैकण्डरी उत्तीर्ण कर लेने के बाद आगे का दोवर्षीय प्रशिक्षण स्नातक अध्यापक दें। प्रशिक्षण में अब विधियों के अतिरिक्त विषयवस्तु का पाठ्यक्रम भी सम्मिलित किया गया है, अतः परिवर्तित परिस्थिति में स्नातक

अध्यापक अपने विषय के साथ न्याय नहीं कर सकता। इसीलिए शिक्षा आयोग ने भी अनुच्छेद ४.४६ में यह सिफारिश की कि शिक्षक-प्रशिक्षण विद्यालयों के अध्यापक की शैक्षिक योग्यता एम.ए. कर दी जानी चाहिए। राजस्थान में तो १ अप्रैल, १९६६ से ही इन विद्यालयों के अध्यापकों की न्यूनतम योग्यता किसी विषय में अधिस्नातक के साथ शिक्षा की उपाधि कर दी गई है। अन्य राज्यों की भी शैक्षिक योग्यता में शीघ्र वृद्धि हो जानी चाहिए।

अध्यापकों की शैक्षिक योग्यता के सम्बन्ध में दूसरी समस्या यह है कि वे शिक्षा में स्नातक तो होते हैं, पर वे माध्यमिक विद्यालयों के लिए प्रशिक्षित होते हैं। परिणाम यह होता है कि वे प्राथमिक विद्यालयों के अध्यापकों को प्रशिक्षित करने के लिए स्वयं अर्धप्रशिक्षित होते हैं। कुछ वर्ष पूर्व राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान व प्रशिक्षण परिषद्, नई दिल्ली ने प्राथमिक शिक्षक–प्रशिक्षकों को प्रशिक्षित करने के लिए एक वर्ष का डिप्लोमा पाठ्यक्रम आरम्भ किया था, पर शीघ्र ही उसे बंद कर दिया। या तो इस प्रकार के पाठ्यक्रम चलें और राज्य सरकारें अध्यापकों को प्रशिक्षण के लिए राज्य व्यय पर प्रति-नियुक्त करें या फिर बी.एड. में ही प्राथमिक शिक्षा के क्षेत्र में विशेष योग्यता पाठ्यक्रम पर बल दिया जाए और उन्हीं को इन विद्यालयों में शिक्षक-प्रशिक्षक नियुक्त किया जाए जो यह योग्यता प्राप्त कर लें। जब तक प्राथमिक शिक्षा की विशेष योग्यता पर बल नहीं होगा, ऐसे अध्यापक ही प्राथमिक प्रशिक्षण का कार्य करेंगे जो स्वयं माध्यमिक शिक्षा में प्रशिक्षित हैं। एक अन्य उपाय यह भी हो सकता है कि इन अध्यापकों को निरन्तर प्राथमिक शिक्षा के सेवारत प्रशिक्षण कार्यक्रमों में भाग लेने के लिए भेजा जाए, ताकि कुछ समय में ही उनका प्राथमिक शिक्षा में अनुस्थापन हो जाए। शिक्षा आयोग ने भी इस पर बल दिया है कि इन प्रशिक्षण शालाओं के शिक्षकों को प्राथमिक अध्यापकों के प्रशिक्षण की विधि का यथेष्ट प्रशिक्षण मिलना चाहिए और इस प्रशिक्षण के लिए विशेष अनुस्थापन और आगमन पाठ्यक्रमों का आयोजन किया जाना चाहिए, जिसमें प्राथमिक शाला के कार्य का अनुभव भी शामिल हो।

चुनाव

शिक्षक-प्रशिक्षण विद्यालयों के लिए अध्यापकों का चुनाव प्रायः माध्यमिक विद्यालयों से किया जाता है। इन विद्यालयों में अध्यापकों की वेतन

शृंखला या तो माध्यमिक विद्यालयों के अध्यापकों के समकक्ष या उससे कुछ अधिक होती है, अतः निश्चित ही है कि इन पदों पर पदोन्नतियाँ माध्यमिक शिक्षकों से ही होगी। जैसा कि कहा जा चुका है कि इन अध्यापकों का प्रशिक्षण भी माध्यमिक विद्यालयों के लिए हुआ है व अनुभव भी माध्यमिक विद्यालय में शिक्षण का होता है, अतः प्राथमिक शिक्षा का प्रशिक्षण देने के लिए पूरी तरह सक्षम नहीं होते। यह फिर विवाद का विषय हो सकता है कि यदि प्राथमिक शिक्षकों में से ही चुन कर शिक्षक-प्रशिक्षक बनाए जाएँ तो प्रशिक्षण के स्तर की रक्षा भी हो सकेगी या नहीं ? क्योंकि इसके लिए एम. ए., बी. एड. शिक्षक चाहिए और इस योग्यता के शिक्षक प्राथमिक शालाओं से उपलब्ध नहीं होंगे। यह भी कहा जा सकता है कि प्राथमिक विद्यालयों के शिक्षकों के वेतनमान और न्यूनतम योग्यता सैकण्डरी या हायर सैकण्डरी होने के कारण उच्च योग्यता प्राप्त अध्यापक प्राथमिक शिक्षा के क्षेत्र में प्रवेश नहीं करेगा। समस्या वास्तव में जटिल है। करना यही होगा कि योग्य एम. ए. बी. एड. अध्यापकों का चुनाव करें और फिर उन्हें प्राथमिक शिक्षण व प्राथमिक विद्यालयों के परिवीक्षण का अवसर दें और बाद में उनकी नियुक्ति शिक्षक-प्रशिक्षण विद्यालयों में अध्यापक के रूप मे करें।

वेतनमान

वेतनमानों के बारे में समानता नहीं है। भिन्न-भिन्न राज्यों में वेतनमान अलग-अलग हैं और कई राज्यों में राजकीय व निजी विद्यालयों के वेतनमानों में भी भिन्नता है। निम्नलिखित तालिका मे विभिन्न राज्यों के वेतनमान दिखाए गए हैं—

तालिका संख्या 46

शिक्षक-प्रशिक्षण विद्यालयों में अध्यापकों के वेतनमान

राज्य	प्रधानाध्यापक	अध्यापक प्रशिक्षित स्नातक
आन्ध्रप्रदेश	३२५—७००	
	२००—४००	१३०—२५०
असम	३५०—९५०	२००—५००
	३००—१०००	

बिहार	३२५–५०५	
गुजरात	२८०–७३५	१६०–३७०
जम्मू, कश्मीर	—	—
केरल	१५०–२५०	१५०–२५० (राजकीय)
		११०–२०० (अराजकीय)
तमिलनाडु	३००–८०० (राजपत्रित)	२२५–३५०
	२२५–३५०	१४०–२५०
मध्यप्रदेश	२७५–७००	२५०–४५० (राजकीय)
		१५०–२६० (अराजकीय)
महाराष्ट्र	२५०–७०० (राजकीय)	१२०–३०० (राजकीय)
	१५०-२५०–३५० (अराजकीय)	
	१२०–३३०	
मैसूर	२५०–५०० (राजकीय)	१३०/१४०/१५०-२५०
	२००–३५० (अराजकीय)	
उड़ीसा	२५०–४५०	—
पंजाब	२५०–७५० (राजपत्रित)	२५०–३००
	२५०–३५०	११०–२५०
राजस्थान	२८५–८००	१७०–३३५
उत्तर प्रदेश	२५०–६००	१५०–३५०
बंगाल	३५०–५२५	२२५–४६५ (राजकीय)
		२१०–४५० (अराजकीय)
केन्द्र-शासित प्रदेश	—	—

पिछले पाँच वर्षों में कई राज्यों में वेतनमानों में परिवर्तन हुए हैं परन्तु उनमें वृद्धि समकक्ष अन्य पदों को दृष्टि में रखकर ही हुई है। राजस्थान में १–६–६८ से २८५–८०० की वेतन-शृंखला ३७५–८५० में बदली गई थी परन्तु शिक्षक-प्रशिक्षण की महत्ता को दृष्टि में रखकर इन विद्यालयों के प्रधानाचार्यों की वेतन शृंखला में जुलाई सन् १९७० में और वृद्धि की गई और उसे ६००–११०० की कर दी गई। शिक्षक-प्रशिक्षण विद्यालयों के अध्यापकों की न्यूनतम योग्यता भी राजस्थान में एम. ए. बी. एड. कर दिए जाने से वेतन शृंखला भी १७०–३८५ से बढ़ाकर २२५–५२५ कर दी गई।

शिक्षक-प्रशिक्षण विद्यालय के अध्यापक का पद व प्रतिष्ठा हायर सैकण्डरी के पोस्ट ग्रेजुएट अध्यापक के समकक्ष ही है।

तालिका संख्या १६ व उपरोक्त विवरण से ज्ञात होगा कि सबसे अच्छी वेतन शृंखला राजस्थान व असम में है और सबसे कम केरल में है। कुछ राज्यों में एक ही पद के लिए दो वेतनमान हैं। विभिन्न राज्यों में प्रशिक्षित स्नातक अध्यापक के वेतनमान भी भिन्न-भिन्न हैं। केरल, मध्य-प्रदेश, मैसूर और बंगाल में राजकीय और अराजकीय विद्यालयों में वेतनमान समान नहीं है। बहुत से राज्यों में इन अध्यापकों के वही वेतनमान हैं जो माध्यमिक कक्षाओं को पढ़ाने वाले अध्यापको के होते है।

शिक्षा आयोग (१९६६) के अनुसार 'शिक्षक-प्रशिक्षण विद्यालय के अध्यापकों के वेतनमान माध्यमिक स्कूलों के बराबर होते है और प्राय: उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों के वेतनमानों से कम ही होते है। माध्यमिक स्कूलों के अच्छे अध्यापक प्राथमिक प्रशिक्षण शालाओं में काम करना पसन्द नहीं करते क्योंकि वहाँ ट्यूशन मिलने की गुंजाइश नही होती और काम की मात्रा भी बहुत होती है। इन संस्थाओं के कुछ अध्यापक निरीक्षक वर्ग में से चुन जाते हैं। उनमें भी जिन अच्छे निरीक्षकों को अपने काम में ही उन्नति के अवसर अधिक दिखाई देते हैं वे अध्यापक बनने को आकृष्ट नहीं होते। ये बाधाएँ तब दूर हो जाएँगी जब संस्थाओं का स्तर कालेजों के समकक्ष कर दिया जाएगा।'

यह तो स्पष्ट ही है कि शिक्षक-प्रशिक्षण विद्यालयों के अध्यापकों के वेतनमान उनके कार्य व पद के अनुरूप नहीं हैं। आवश्यकता तो इस बात की है कि उनके वेतनमान उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों से भी अधिक हों। कारण भी स्पष्ट ही है। योग्यता उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों के अध्यापकों के समकक्ष होने से वेतनमान उनसे कम तो होने ही नहीं चाहिए। यदि वेतनमान बराबर भी रखे जाएँ तो भी उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों के अच्छे अध्यापक शिक्षक-प्रशिक्षण विद्यालयों में काम नहीं करना चाहेंगे क्योंकि एक ओर तो इन विद्यालयों में कार्यभार अधिक होता है और दूसरी ओर जो लाभ उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों में प्राप्त होता है व जिसकी ओर शिक्षा आयोग ने भी संकेत किया है, वह लाभ शिक्षक-प्रशिक्षण विद्यालयों में नहीं मिलता। इन दोनों दृष्टियों से शिक्षक-प्रशिक्षण विद्यालयों के अध्यापकों का वेतनमान उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों के अध्यापकों के वेतनमान से

थोड़ा अधिक होना चाहिए। यदि वेतनमान समान रखा जाए तो दो वार्षिक वेतन वृद्धियों के बराबर विशेष भत्ता दिया जाना चाहिए। शिक्षक-प्रशिक्षण विद्यालयों में अच्छे अध्यापकों को आकर्षित करने और उन्हें वहाँ बनाए रखने के लिए इसके अतिरिक्त और कोई सरल उपाय नहीं है।

छात्र-अध्यापक अनुपात

विभिन्न राज्यों में इन विद्यालयों में अध्यापकों की संख्या में भी भिन्नता है। कई राज्यों में आवश्यकता से कम संख्या है और कई राज्यों में तो उद्योग, कला व शारीरिक शिक्षा अध्यापकों को भी अकादमिक स्टॉफ में गिना जाता है और वे छात्रों की व्यावसायिक शिक्षा का निर्देशन भी करते हैं। उत्तरप्रदेश में स्टॉफ की संख्या सभी विद्यालयों में समान है---१ प्रधानाचार्य, ५ प्रशिक्षित स्नातक अध्यापक और ५ स्नातक से कम योग्यता वाले अध्यापक। राजस्थान में भी प्रधानाचार्य के अतिरिक्त ६ प्रशिक्षित अधिस्नातक व ३ कला, शारीरिक शिक्षा व उद्योग के अध्यापक होते हैं। सर्वेक्षण के आधार पर छात्र-अध्यापक अनुपात विभिन्न स्थानों पर १ : १० से १ : ४० पाया गया। इन विद्यालयों के लिए १ : १० से १ : १५ तक का अनुपात तो सन्तोषजनक ही माना जाना चाहिए परन्तु इससे अधिक अनुपात में प्रभावी प्रशिक्षण नहीं हो सकता। अधिक अनुपात होने का एक कारण यह भी हो सकता है कि हर विद्यालय में ४ या ५ अध्यापक शारीरिक शिक्षा, उद्योग, कला आदि विषयों के होते हैं और वे छात्रों के अध्यापनाभ्यास का परिवीक्षण नहीं कर सकते व न ही अन्य सैद्धान्तिक कक्षाएँ ले सकते हैं इसलिए अन्य अध्यापकों पर कार्यभार बढ़ जाता है। जब सब स्तरों पर शैक्षिक योग्यता में वृद्धि हो रही है तो कला, उद्योग व शारीरिक शिक्षा अध्यापकों की योग्यता भी न्यूनतम रूप से स्नातक कर दी जानी चाहिए और नियुक्ति में उनको प्राथमिकता दी जानी चाहिए जो अपने विषय के प्रशिक्षण के साथ शिक्षा में स्नातक योग्यता प्राप्त हों। यदि ये अध्यापक भी व्यावसायिक योग्यता प्राप्त हों तो छात्रों के अध्यापनाभ्यास के परिवीक्षण में सहायता कर सकेंगे। एक ओर इनका कार्यभार भी अन्य अध्यापकों के समान होगा व दूसरी ओर अन्य अध्यापकों का कार्यभार कम होगा और छात्रों पर अधिक ध्यान दिया जा सकेगा।

अध्यापन-अनुभव

जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है शिक्षक-प्रशिक्षण विद्यालयों के

अधिकांश अध्यापकों को प्राथमिक कक्षाओं को पढ़ाने का अनुभव नहीं है और न ही प्राथमिक विद्यालयों के परिवीक्षण का अनुभव है। उन्हें माध्यमिक या उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों में पढ़ाने का तो अनुभव है। आन्ध्र प्रदेश के कुछ प्रधानाचार्यों को बेसिक स्कूलों या प्राथमिक शालाओं में अध्यापन का अनुभव है व तामिलनाडु, महाराष्ट्र, मैसूर, राजस्थान और बंगाल में कुछ प्रधानाचार्यों को १ से ८ वर्ष तक निरीक्षण का अनुभव है। अध्यापकों की स्थिति भी भिन्न-भिन्न है। कुछ अध्यापकों को प्राथमिक व माध्यमिक दोनों प्रकार के विद्यालयों में पढ़ाने का अनुभव है और कुछ को माध्यमिक विद्यालयों में काम करने का ही अनुभव है।

इन विद्यालयों में नियुक्ति के लिए ही यह बन्धन लगा दिया जाए कि प्राथमिक कक्षाओं का अध्यापन अनुभव अनिवार्य है तो योग्य अध्यापकों के मिलने में कठिनाई होगी। अच्छे अध्यापकों को चुन कर उन्हें इस पद पर रहते हुए ही प्राथमिक कक्षाओं के अध्यापन व निरीक्षण अनुभव की व्यवस्था की जा सकती है। राजकीय सेवा में बहुत से प्राथमिक अध्यापक अपनी शैक्षणिक योग्यता में वृद्धि कर बी. ए., एम. ए. व बी. एड. होकर माध्यमिक विद्यालयों में पदोन्नति पाते है। इन अध्यापकों मे से भी चयन कर शिक्षक-प्रशिक्षण विद्यालयों के अध्यापक राजकीय संस्थाओं मे तो नियुक्त किए ही जा सकते है। इस प्रकार योग्यता और अनुभव दोनो की ही रक्षा की जा सकती है।

कार्यभार

शिक्षक-प्रशिक्षण विद्यालयों के अध्यापकों को मुख्यतया तीन कार्य करने पड़ते है—(१) अध्यापन, (२) अध्यापनाभ्यास का परिवीक्षण और (३) सहगामी प्रवृत्तियाँ व सामुदायिक जीवन में योग। इनके अतिरिक्त छात्रों के पाठों को शुद्ध करना, गृहकार्य की जाँच करना, प्रदर्शन-पाठ देना आदि कई प्रकार के कार्य होते ही हैं। भिन्न-भिन्न राज्यों में कार्य की मात्रा भिन्न-भिन्न है और यहाँ तक कि एक ही राज्य में अलग-अलग विद्यालयों में कार्यभार में भिन्नता है। महाराष्ट्र और केरल में तो प्रधानाचार्यो व अध्यापकों के अध्यापन कार्यभार समान ही हैं। प्रधानाचार्यों को अध्यापन के अतिरिक्त परिवीक्षण, प्रशासन, छात्रावास आदि कई अन्य कार्य भी करने पड़ते हैं। अध्यापकों को उपरोक्त तीन कार्यो के अतिरिक्त परीक्षा, प्रवेश, खेल, सांस्कृतिक प्रवृत्तियाँ आदि में भी काम करना पड़ता है। कला, उद्योग व शारीरिक शिक्षा

अध्यापक सैद्धान्तिक विषयों का अध्यापन और अध्यापनाभ्यास का परिवीक्षण नहीं करते। इस तरह उनके पास काम बहुत कम रहता है और अन्य अध्यापकों पर कार्यभार बढ़ जाता है। जैसा कि सुझाव दिया जा चुका है इन विशेष विषयों के अध्यापकों की शैक्षणिक व व्यावसायिक योग्यता में वृद्धि की जानी चाहिए या उन्हें अध्यापनाभ्यास के परिवीक्षण का विशेष प्रशिक्षण दिया जाकर छात्रों के परिवीक्षण का कार्य सौंपा जाना चाहिए ताकि अन्य अध्यापकों के कार्यभार में कमी हो सके और प्रशिक्षण का स्तर भी सुधरे।

राजस्थान मे शिक्षक-प्रशिक्षण विद्यालयों के अध्यापकों के कार्यभार का निर्धारण करने के लिए सन् १९७१ में श्रीमती ओ. जोशी, निदेशक, राज्य शिक्षा संस्थान के संयोजकत्व में एक समिति का निर्माण किया गया था। समिति ने प्रधानाचार्यों और अध्यापकों के कार्यभार का विस्तार से अध्ययन किया और कार्यभार की वर्तमान स्थिति ज्ञात कर निम्नलिखित सिफारिशें की—

प्रधानाचार्य का कार्यभार—

संस्था प्रधान को मुख्यतः कक्षाध्यापन और परिवीक्षण का दायित्व निभाना होता है। प्रशिक्षणालय की उन्नति के लिए उसके विभिन्न क्रिया कलापों तथा कार्यकर्त्ताओं के कार्य का उसके द्वारा सुनियोजित परिवीक्षण आवश्यक है इसलिए उसे वर्ष भर की परिवीक्षण योजना बनानी चाहिए। प्रधानाचार्य को अध्यापन व परिवीक्षण के लिए न्यूनतम निम्नलिखित कालांश देने चाहिए—

(अ) अध्यापन कार्य—प्रति सप्ताह ४ कालांश वर्ष के कुल कालांश १२०

(आ) परिवीक्षण कार्य—

१—अभ्यास-पाठ परिवीक्षण

१. प्रत्येक प्रशिक्षणार्थी के पाठों का कम से कम एक पाठ का परिवीक्षण (दो छात्राध्यापकों का एक कालांश में)	६५
२. प्रत्येक प्रशिक्षणार्थी के आलोचनात्मक पाठ का परिवीक्षण (एक कालांश में दो)	६५
३. प्रत्येक अध्यापक के दो प्रदर्शन पाठों का अवलोकन	१८
४. अध्यापकों द्वारा दी गई परिवीक्षण टिप्पणियों एवं छात्राध्यापकों की पाठ योजनाओं का परिवीक्षण (प्रतिमाह दो अनुदेशकों के क्रम से एवं लगभग २० छात्राध्यापकों का)	२२

२— सैद्धान्तिक शिक्षण परिवीक्षण	
१. प्रत्येक अध्यापक के अध्यापन का परिवीक्षण प्रति माह एक कालांश	९०
२. सत्रीय एवं लिखित कार्य का परिवीक्षण	५०
३. पुस्तकालय एवं वाचनालय का परिवीक्षण प्रति माह एक बार	१०
३— क्रियात्मक पक्षों का परिवीक्षण	
१. कार्यानुभव—प्रति माह एक बार	१०
२. चित्रकला—प्रति माह एक बार	१०
३. शारीरिक शिक्षा, खेल आदि प्रति माह एक बार	१०
४. सामुदायिक जीवन—प्रति माह एक बार	१०
४— अन्य कार्य	
१. अध्यापकों की वार्षिक योजनाएँ व सत्रीय प्रगति	१८
२. विविध प्रायोजनाओं का परिवीक्षण एवं मूल्यांकन	२४
३. कार्यालय तथा भण्डार का परिवीक्षण	४८
४. उत्सव, जयन्तियाँ आदि	३०
	६००

इस प्रकार लगभग २००/२३० कार्य दिवसों में अध्यापन न परिवीक्षण के ६०० कालांश निर्धारित करने से अकादमिक कार्य के लिए प्रतिदिन ३ कालांश का कार्यभार रहता है। यदि ३ कालांश अन्य प्रशासनिक कार्यों के लिए भी निर्धारित कर दिया जाए तो सप्ताह में ३६ कालांश अर्थात् २४ घण्टों का कार्य होता है।

प्रशिक्षकों का कार्यभार

शिक्षक-प्रशिक्षण विद्यालयों में प्रशिक्षकों में से ६ प्रशिक्षक एम.ए., बी. एड. तथा अन्य तीन शारीरिक शिक्षा, चित्रकला एवं कार्यानुभव के प्रशिक्षकों के लिए अभी बी. एड. होना आवश्यक नहीं है, अतः कार्यभार निकालने में दोनों प्रकार के प्रशिक्षकों को अलग-अलग माना गया है तथा इसमें प्रति सत्र ६५ छात्राध्यापकों की कल्पना की गई है।

प्रशिक्षणालयों में गणनानुसार लगभग ५० कार्य दिवसों में विशेष कार्य होंगे जिनमें लगभग सभी प्रशिक्षक कार्य करेंगे। अतः उन्हें छोड़ कर शेष

लगभग १८० दिवसो का कार्यभार निम्नांकित विवरण के अनुसार रहेगा—

अभ्यास शिक्षण	अपेक्षित कालांश	कुल कालांश
१—प्रथम सत्र के अभ्यास पाठ ६५ × ६१ कालांश	३९६५	
प्रति छात्राध्यापक ३१ × १ कालांश,		
२ कालांश × २ पाठ,		
चार कालांश × २ पाठ,		
तीन कालांश × ६ पाठ,		
कुल ३१ + ४ + ८ + १८ = ६१ कालांश से		
द्वितीय सत्र के अभ्यास	२६००	
(४० पाठ × १ कालांश प्रति छात्राध्यापक से)		
	६५६५	
प्रति कालांश ४ छात्राध्यापकों के पाठ देखने पर अपेक्षित कालांश		१६४१
२—समालोचना के २६० पाठों के लिए १ कालांश प्रति पाठ से	२६०	३९०
तथा पाठों की समालोचना हेतु १/२ कालांश प्रति पाठ से	१३०	
३—पाठों का मार्गदर्शन—		
६५६५ पाठों के लिए १ कालांश में ६ से		१०९४
४—प्रदर्शन-पाठ—		
(१) प्रथम वर्ष (हिन्दी के ४, प्रत्येक अन्य ४ विषयों के १२, सम्पूर्ण दिवस १ × ४ एक से अधिक कालांश १ × ३ व संबंधित पाठ १ × २ कालांश से कुल	२५	४४
कालांश तथा इनकी समालोचना हेतु एक कालांश प्रति पाठ से	१९	

(२) द्वितीय वर्ष–हिन्दी, गणित, अंग्रेजी के ४ पाठों के १२ वैकल्पिक विषयों के ३ पाठ ३ से ६ तथा इनकी समालोचना के लिए	१८ १८	३६
५–परीक्षा पाठ मार्गदर्शन १३०–छात्राध्यापकों के लिए २ कालांश प्रति छात्राध्यापको से		२६०
६–कतिपय विशिष्ट अनुभव प्रति छात्राध्यापक २ कालांश से इनमे सैद्धान्तिक चर्चाएँ ग्रुप में तथा व्यक्तिगत मार्गदर्शन दिया जायेगा।		२६०
		३७२५

कुल कार्य दिवस १८०से प्रतिदिन के कालांश–२०.७५
प्रति प्रशिक्षक कार्य भार — ३.४५
= ३ ५ कालाश

सैद्धान्तिक शिक्षण

इन प्रशिक्षको को सामान्य विषयों के साथ ही वैकल्पिक विषयों का भी अध्यापन करना होगा। अपेक्षित कालांश इस प्रकार रहेंगे :–

	प्रथम सत्र	द्वितीय सत्र
शिक्षा सिद्धान्त	८५	९५
शिक्षा मनोविज्ञान	८५	१०५
हिन्दी	१४५	१२५
गणित	१००	१००
सामाजिक विज्ञान	१००	–
सामान्य विज्ञान	१००	–
अंग्रेजी	१३०	१२५
वैकल्पिक (२)	–	२००
कतिपय विशिष्ट अनुभव	२५	३५
	७७०	७८५

इनमें से ११० कालाश आचार्य द्वारा लिये जाएँगे तथा शेष १४४५ कालांश १८० दिनों में ६ अनुदेशक लेंगे। इस प्रकार सैद्धान्तिक शिक्षण का

कार्यभार प्रति प्रशिक्षक १.३३ कालांश रहेगा और प्रायोगिक तथा सैद्धान्तिक शिक्षण प्रति प्रशिक्षक ३.५+१.३३=४८३ अर्थात् ५ कालांश रहेगा। प्रतिदिन ५ कालांश का अर्थ है ३ घण्टा व २० मिनट।

आन्तरिक एवं बाह्य मूल्यांकन, पाठ तैयारी व कक्षा तथा गृहकार्य की जाँच का समय इसके अतिरिक्त रहेगा।

अन्य तीन प्रशिक्षकों का कार्यभार :—

१. शारीरिक शिक्षा प्रशिक्षक

कुल कार्य दिवस १८० में प्रातः या सायं १ कालांश पी. टी. या खेल।	१८०	कालांश
सैद्धान्तिक शिक्षण दोनों सत्रों के लिए	१४५	कालांश
प्रायोगिक शिक्षण ६५ × ३ = १९५ ÷ ४	४९	,,
प्रायोगिक पाठ व मार्गदर्शन १९५ ÷ ६	३२	,,
कुल कालांश	४०६	
प्रति कार्य दिवस भार—	२.२५	कालांश

२. चित्रकला प्रशिक्षक

सैद्धान्तिक शिक्षण दोनों सत्रो मे – (चित्रकला तथा प्रशिक्षण सामग्री मार्गदर्शन सहित)	२७५	कालांश
वैकल्पिक चित्रकला———	१००	,,
प्रायोगिक शिक्षण ६५ × ३ = १९५ ÷ ४	४९	,,
प्रायोगिक पाठ मार्गदर्शन १९५ ÷ ६	३२	,,
कुल कालांश	४५६	,,
प्रति कार्य दिवस भार —	२.७५	,,

३. कार्यानुभव प्रशिक्षक

सैद्धान्तिक एवं क्रियात्मक शिक्षण (दोनों सत्रों में)	२७५	कालांश
प्रायोगिक शिक्षण ६५ × ३ = १९५ ÷ ४	४९	,,
प्रायोगिक पाठ मार्गदर्शन १९५ ÷ ६ = ३२ कालांश	३२	,,
पुस्तकालय अध्ययन में सहयोग	७०	,,
कुल कालांश	४२६	,,
प्रति कार्य दिवस भार	२.३६	कालांश

कार्यभार की असमानता को दृष्टि में रख कर समिति ने सिफारिश की कि शिक्षक प्रशिक्षण वि द्यालयों में कार्य करने वाले सभी प्रशिक्षक बी. एड. होने चाहिए, जिससे अभ्यास शिक्षण का कार्य सुविधापूर्वक आयोजित हो सके तथा प्रशिक्षकों का कार्यभार भी लगभग समान रह सके। वर्तमान में जो प्रशिक्षक शारीरिक शिक्षा, कार्यानुभव एवं चित्रकला का विषय लेते हैं उनका बी. एड. होना आवश्यक नहीं है फलस्वरूप केवल ६ प्रशिक्षक ही अभ्यास शिक्षण का अधिकांश कार्यभार उठाते हैं। विभाग में शारीरिक शिक्षा, कार्यानुभव एवं चित्रकला के शिक्षक हैं जो बी. एड. भी कर चुके हैं, उन्हें शिक्षक प्रशिक्षण विद्यालयों में स्थानान्तरित करना तथा जो प्रशिक्षक बी. एड. नहीं हैं, उन्हें उन्हें अन्यत्र माध्यमिक विद्यालयों में प्रतिनियुक्त किया जाना उचित होगा।

प्राथमिक शिक्षा समस्त शिक्षा की पहली सीढ़ी है और बहुत से छात्र तो इसे ही पूरा कर व्यवसाय में चले जाते हैं। यह आवश्यक है कि इस स्तर पर ऐसी शिक्षा दी जाए कि छात्र आगे जाकर एक सफल नागरिक बन सके। प्राथमिक शिक्षक बहुत ही योग्य व्यक्ति होने चाहिए जिनमें समस्याओं को हल करने की क्षमता व सूझ-बूझ हो। प्राथमिक शिक्षक प्रशिक्षक का इस दृष्टि से महत्त्वपूर्ण कार्य है जिसे उसे अच्छी तरह निभाना है। निश्चय ही इस व्यवसाय में योग्यतम व्यक्तियों को चुना जाना चाहिए और उन्हें ऐसे अवसर निरन्तर दिए जाने चाहिए कि वे उसका लाभ प्रशिक्षणार्थियों को दे सकें।

१५

शिक्षक प्रशिक्षकों का सेवारत प्रशिक्षण

शिक्षकों और शैक्षिक प्रशासकों का सेवारत प्रशिक्षण सभी विकसित देशों में एक सामान्य कार्यक्रम बन गया है और इसे व्यावसायिक तैयारी व उन्नयन का अन्तरग अग समझा जाता है। अब यह माना जा रहा है कि सेवा पूर्व का प्रशिक्षण चाहे कितना ही अच्छा क्यों न हो, इस नित नये परिवर्तन के युग में सदा-सदा के लिए वह पर्याप्त नहीं हो सकता चाहे वह शिक्षक के लिए हो चाहे प्रशासक के लिए। आज ज्ञान के सभी क्षेत्रों में वृद्धि हो रही है, सांस्कृतिक व भौतिक परिवर्तनों के साथ पाठ्यक्रम बदल रहे हैं, छात्र और अध्यापकों की सख्या मे तीव्र गति से वृद्धि हुई है और शिक्षा, सीखने की प्रक्रिया, बाल व युवा मनोविज्ञान आदि कई क्षेत्रों में हमारा ज्ञान बढ़ा है। ऐसी अवस्था में शिक्षकों को उन परिवर्तनों से परिचित रखने की अत्यन्त आवश्यकता है। यदि विद्यालयों को नई चुनौतियों का भली प्रकार सामना करने के लिए सक्षम बनाना है तो सबसे पहले शिक्षक प्रशिक्षकों को उन सब नये विचारों से परिचित रहना होगा। सयुक्त राज्य अमेरिका के शिक्षक प्रशिक्षण आयोग (१९३८) के अनुसार विद्यालयों मे शिक्षक का स्तर उसके अध्यापकों के व्यवसाय में आने के बाद के अनुभवों पर निर्भर होता है और इस तरह अध्यापकों का प्रभावी कार्य मुख्य रूप से इस बात पर निर्भर होता है कि कार्य करते हुए उन्हें किन स्थितियों और चुनौतियों का सामना करना पड़ता है। इसका यह अर्थ है कि अध्यापक कार्य करते हुए सीखता है। कार्यरत अध्यापक को कक्षा में नई-नई स्थितियों का सामना करना पडता है और उन परिस्थितियों के फल-स्वरूप वह अपने मे नई क्षमताओं और कौशल का विकास करता है। यह कार्य

वास्तविक सेवा के पूर्व सम्भव नहीं है चाहे उसका सेवा पूर्व प्रशिक्षण कितना ही अच्छा रहा हो। यह बात शिक्षक प्रशिक्षक के लिये भी उतनी ही सही है।

अध्यापकों के सेवारत प्रशिक्षण की महत्ता यद्यपि स्वीकार तो काफी पहले की गई परन्तु इस सम्बन्ध मे समुचित कार्यवाही का आरम्भ स्वतन्त्रता के बाद ही हुआ है। माध्यमिक शिक्षा आयोग (१९५३) ने पहली बार बल-पूर्वक यह बात कही कि चाहे सेवा पूर्व का प्रशिक्षण कितना ही उत्तम क्यों न हो वह अपने आप में उत्तम अध्यापक तैयार नहीं कर सकता। वह तो ज्ञान, कौशल और अभिवृत्तियाँ उत्पन्न कर अध्यापक को इस योग्य बनाता है कि वह आत्मविश्वास और कुछ पूर्व अनुभव के आधार पर अपना कार्य आरम्भ कर सके। सेवारत प्रशिक्षण के क्षेत्र मे सबसे पहला व्यवस्थित प्रयत्न १९५५ में हुआ जबकि अखिल भारतीय माध्यमिक शिक्षा परिषद् की स्थापना की गई और २४ शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालयों मे सेवा प्रसार विभाग आरम्भ हुए। इनके कार्य की प्रगति देखकर सन् १९६२ में प्राथमिक शिक्षा के क्षेत्र में भी ३० सेवा प्रसार विभाग खोले गए। बाद में इनकी संख्या ४५ हो गई। माध्य-मिक व प्राथमिक शिक्षक के सेवारत प्रशिक्षण की तो आवश्यकता अनुभव की गई परन्तु शिक्षक प्रशिक्षकों के सेवारत पर प्रशिक्षण कोई विशेष ध्यान नहीं दिया गया। केवल यह मान लिया गया कि महाविद्यालय शिक्षकों के सेवारत प्रशिक्षण के लिये सक्षम हैं।

माध्यमिक और प्राथमिक सेवा प्रसार विभागों की स्थापना से शिक्षक प्रशिक्षण संस्थाओं और सामान्य विद्यालयों का व्यवस्थित रूप से सम्पर्क हुआ और शिक्षक प्रशिक्षक सामान्य विद्यालयों की समस्याओं से अवगत होने लगे। यह भी ज्ञात हुआ कि प्रशिक्षण संस्थाओं और विद्यालयों की कार्य पद्धतियों में कितना अन्तर है। विद्यालयों को यह लाभ हुआ कि उन्हें शिक्षा में नये परि-वर्तनों की जानकारी होने लगी। शिक्षक प्रशिक्षकों को भी यह आभास हुआ कि यदि उन्हें विद्यालयों की प्रभावी रूप से सेवा करनी है तो अपनी अकादमिक और व्यावसायिक योग्यता में वृद्धि करनी चाहिए। इस तरह यह भावना बलवती हुई कि जिस प्रकार विद्यालय के अध्यापकों को निरन्तर सहायता की और स्वय विकास की आवश्यकता है, उसी तरह शिक्षक प्रशिक्षकों को भी अपने ज्ञान के विकास की आवश्यकता है।

शिक्षक प्रशिक्षकों के सेवारत प्रशिक्षण के उद्देश्य

भारतीय शिक्षक प्रशिक्षक संघ द्वारा पारित प्रस्ताव के अनुसार राष्ट्रीय

शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् ने प्रो. जे. के. शुक्ला के संयोजकत्व में शिक्षक प्रशिक्षकों के सेवारत प्रशिक्षण के बारे में एक समिति का गठन किया। समिति ने अपने प्रतिवेदन में सेवारत प्रशिक्षण के निम्नलिखित उद्देश्यो का उल्लेख किया —

१—शिक्षक प्रशिक्षकों को प्रशिक्षण कार्यक्रम उन्नत करने और शैक्षिक विकास व आयोजन में नेतृत्व करने में सहायता करना,

२—शिक्षक प्रशिक्षकों के ज्ञान मे निरन्तर वृद्धि करना ताकि वे देश व विदेश मे शिक्षा की प्रगति और अपने विषय के नये ज्ञान से परिचित रहें,

३—शिक्षक प्रशिक्षकों को स्वाध्याय, स्वमनन और स्वकर्तृत्व के लिए प्रेरित करना,

४—शिक्षक प्रशिक्षण के क्षेत्र में प्रचलित विधियों के विश्लेषण और नई पद्धतियाँ आरम्भ करने में सहायता करना ताकि नई पीढ़ी के योग्य अध्यापक तैयार हो सकें,

५—शिक्षक प्रशिक्षकों को पुरानी अनुपयोगी पद्धतियाँ व विचार छोड़ने और नई वैज्ञानिक पद्धतियाँ व विचार ग्रहण करने की ओर अग्रसर करना,

६—शिक्षण समस्याओं को हल करने के लिए सहयोगी वातावरण तैयार करना व शिक्षक प्रशिक्षकों को अपने क्षेत्र में अनुसंधान के लिए प्रेरित करना, और

७—शिक्षक प्रशिक्षकों में सही अभिवृत्ति का विकास करना ताकि राष्ट्रीय विकास का वृहत्तर कार्य योग्यतापूर्वक निभा सकें।

प्राथमिक शिक्षक प्रशिक्षकों का सेवारत प्रशिक्षण

प्राथमिक शिक्षकों के सेवारत प्रशिक्षण की आवश्यकता बुनियादी शिक्षा को राष्ट्रीय स्तर पर स्वीकार किये जाने के समय पहली बार अनुभव की गई। यह आवश्यक समझा गया कि सभी शिक्षक प्रशिक्षकों का बुनियादी शिक्षा में अभिनवन किया जाए। लगभग सभी राज्यों मे इन प्रशिक्षकों को बुनियादी शिक्षा का प्रशिक्षण दिया गया। इसके अतिरिक्त कोई नियमित कार्यक्रम आरम्भ नहीं हुए। सन् १९६३ में पहली बार प्राथमिक शिक्षक-प्रशिक्षण पर हुए अखिल भारतीय सम्मेलन में यह सिफारिश की कि प्राथमिक शिक्षक प्रशिक्षको के लिये संगोष्ठियाँ, अध्ययनवृत्त, अभिनवन पाठ्यक्रम आदि की व्यवस्था की जानी चाहिए। इन संगोष्ठियों में पत्र—वाचन, प्रदर्शन पाठ, शोध कार्य के निष्कर्ष और अन्य समस्याओं पर चर्चा होनी चाहिए।

प्राथमिक शिक्षा पर मुकर्जी समिति ने अपने प्रतिवेदन में कहा—प्राथमिक शिक्षक प्रशिक्षकों तथा प्रशासकों से साक्षात्कार करने पर हमने यह देखा कि उनमें से एक बहुत बड़ी सख्या अपने कार्य के लिए व्यावसायिक रूप से तैयार नहीं थी। जब उन्हें प्राथमिक शालाओं के परिवीक्षक तथा प्राथमिक शिक्षक संस्थाओं में प्रशिक्षक के रूप में नियुक्त किया गया था तो उन्हें प्राथमिक शिक्षा का एक तरह से कोई व्यावहारिक अनुभव ही नहीं था। उनमें से अधिकांश माध्यमिक अध्यापकों को प्रशिक्षित करने वाले महाविद्यालयों की उपज थे और केवल बी. एड. प्रशिक्षित थे। यह उपाधि माध्यमिक शिक्षा की आवश्यकताओं की पूर्ति के निमित्त है और प्राथमिक शिक्षा की आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं करती। अतएव यह परम आवश्यक है कि उचित व्यावसायिक पाठ्यक्रमों का निर्माण किया जाए जैसे प्राथमिक शिक्षा से सम्बन्धित प्रशासकों तथा शिक्षक प्रशिक्षकों को तैयार करने के लिए पूर्व सेवा कार्यक्रम। कोठारी शिक्षा आयोग ने भी यही बात कही—'अधिकांश अध्यापक माध्यमिक स्कूलों से ही चुनकर नियुक्त किये जाते हैं। स्वाभाविक है कि उनका प्रशिक्षण माध्यमिक स्कूलों की दृष्टि से हुआ होता है और परिणाम यह होता है कि वे प्राथमिक स्कूलों के अध्यापकों को प्रशिक्षित करने के लिए स्वयं अर्धप्रशिक्षित होते हैं।

यह स्पष्ट है कि प्राथमिक शिक्षकों की आवश्यकताएँ और शिक्षक प्रशिक्षक की क्षमता में काफी अन्तर है। इसका परिणाम यह होना है कि वे अच्छा सेवापूर्व प्रशिक्षण नहीं दे पाते। सेवापूर्व का अच्छा प्रशिक्षण नहीं दे पाने से शिक्षकों के लिए सेवारत प्रशिक्षण की और अधिक आवश्यकता होती है और फिर सेवारत प्रशिक्षण की व्यवस्था भी वे ही शिक्षक प्रशिक्षक करते हैं जो इसमें पूरी तरह सक्षम नहीं हैं। इस प्रकार यह चक्र चलता रहता है। ऐसी स्थिति में स्तर के उन्नयन की आशा नहीं की जा सकती।

सन् १९६३ में भारतीय शिक्षक प्रशिक्षक संघ ने प्राथमिक शिक्षक प्रशिक्षकों और निरीक्षकों को प्रशिक्षित करने के लिए पाठ्यक्रम निर्माण हेतु एक समिति की स्थापना की थी। इस समिति ने निम्नलिखित एकवर्षीय पाठ्यक्रम निर्धारित किया।

सैद्धान्तिक

१—शिक्षा का समाजशास्त्रीय एवं मनोवैज्ञानिक आधार।

२—पाठ्यक्रम निर्माण के सिद्धान्त तथा अध्यापन में अनुसधान।

३—शैक्षिक अनुसंधान की तकनीक।
४—प्राथमिक शिक्षा की समस्याएँ।
५—प्राथमिक शिक्षा प्रशासन व परिवीक्षण या प्राथमिक शिक्षक प्रशिक्षण।

क्रियात्मक

१—शिक्षण अभ्यास—बहु कक्षा शिक्षण और समवाय शिक्षण।
२—सामाजिक शिक्षा कार्यक्रम आरम्भ करने के लिए सर्वेक्षण व समाज की सहायता से समस्याओं के समाधान के प्रयत्न।
३—बाल अध्ययन।
४—कक्षा एवं विद्यालय के कार्य का मूल्यांकन करना।
५—छात्राध्यापकों और अन्य शिक्षकों के अध्यापन कार्य का परिवीक्षण।
६—छात्र अभिलेख तैयार करना।
७—संगोष्ठी, कार्य संगोष्ठी, अध्ययनवृत्त आदि की व्यवस्था करना।
८—हस्तकला कार्य का अनुभव।

समिति का मत था कि यह पाठ्यक्रम स्नातकोत्तर स्तर का होना चाहिए क्योंकि बी. एड. उपाधि शिक्षक प्रशिक्षक एवं परिवीक्षक को व्यावसायिक क्षमता प्रदान करने में असमर्थ है। राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद् ने इस योजना को कुछ परिवर्तनों के साथ स्वीकार किया और इसके अनुरूप दो पाठ्यक्रम आरम्भ किए–एक नौ माह का और दूसरा तीन माह की अवधि का। इन पाठ्यक्रमों से ३३ शिक्षक प्रशिक्षक लाभान्वित हुए। बाद में ये पाठ्यक्रम बन्द कर दिये गये और यह मत प्रकट किया गया कि इन्हें राज्य की आवश्यकतानुसार राज्य शिक्षा संस्थान को आरम्भ करने चाहिए।

प्राथमिक शिक्षक प्रशिक्षकों के सेवारत प्रशिक्षण का कार्य राज्य शिक्षा संस्थानों की सन् १९६४ में स्थापना के बाद नियमित रूप से आरम्भ हुआ। इन शिक्षा संस्थानों का मुख्य उद्देश्य प्राथमिक शिक्षा में गुणात्मक सुधार है। राज्य शिक्षा संस्थानों के निदेशकों के नवम्बर १९६४ में हुए सम्मेलन में गुणात्मक सुधार के लिए संस्थानों के निम्नलिखित कार्य निश्चित किए गए—

१—जो शिक्षक प्रशिक्षक या परिवीक्षक पहली बार नियुक्त हुए हैं उनके लिए अधिष्ठापन प्रशिक्षण की व्यवस्था करना,

२—शिक्षक-प्रशिक्षकों व परिवीक्षकों के लिए सेवारत प्रशिक्षण का आयोजन इस प्रकार करना कि प्रत्येक को पाँच वर्ष की अवधि में तीन माह का प्रशिक्षण प्राप्त हो जाए,

३—शिक्षा विभाग के वरिष्ठ अधिकारियों के लिए संगोष्ठी का आयोजन करना,

४—स्वायत्तशासी संस्थाओं के शिक्षा प्रशासकों के लिए संगोष्ठी और सम्मेलनों की व्यवस्था करना,

५—पास के प्राथमिक विद्यालयों की समुन्नति हेतु सेवा प्रसार केन्द्र की स्थापना करना और राज्य के ऐसे ही अन्य केन्द्रों की देखरेख करना,

६—शिक्षक-प्रशिक्षण विद्यालयों के लिए सेवा प्रसार कार्य करना,

७—विद्यालयी शिक्षा में स्वयं शोधकार्य करना या अन्य संस्थाओं के साथ मिलकर शोधकार्य को बढ़ावा देना,

८—शिक्षा विभाग को शिक्षक-प्रशिक्षण कार्यक्रम को उन्नत करने में सहायता करना विशेष कर शिक्षक-प्रशिक्षण मण्डल की स्थापना व उसके कार्य संचालन में,

९—अप्रशिक्षित शिक्षकों की कमी दूर करने के लिए और प्रशिक्षित शिक्षकों की ज्ञान वृद्धि हेतु पत्राचार पाठ्यक्रम आरम्भ करना,

१०-शैक्षिक साहित्य का सृजन जैसे पत्रिका निकालना,

११–शिक्षा विभाग द्वारा समय-समय पर बताए गए कार्यक्रमों का मूल्यांकन करना,

१२–पाठ्यपुस्तकों के सुधार में सहायता करना,

१३–शिक्षा में सुधार के लिए प्रयोग करना,

१४–पाठ्यक्रम, शिक्षण विधियाँ और सहायक उपकरणों में सुधार कार्य करना,

१५–राज्य की जनता को शिक्षा प्रसार व गुणात्मक सुधार से परिचित करना और

१६–राज्य के शिक्षा विभाग को शैक्षिक योजना बनाने और उसे क्रियान्वित करने में सहायता करना।

इस प्रकार प्रत्येक राज्य शिक्षा संस्थान ने अपने राज्य के शिक्षक-प्रशिक्षकों के सेवारत प्रशिक्षण का कार्य आरम्भ किया। राजस्थान राज्य शिक्षा संस्थान ने चार सप्ताह के लिए प्राथमिक शिक्षक प्रशिक्षकों और प्राथमिक परिवीक्षकों के सम्मिलित सेवारत प्रशिक्षण की व्यवस्था की। एक

ही अवधि में शिक्षक प्रशिक्षक और परिवीक्षक को सम्मिलित प्रशिक्षण देने के आधार पर निम्नलिखित धारणाएँ थीं—

१—शिक्षक प्रशिक्षक का कार्य प्रशिक्षण विद्यालय स्तर पर समाप्त नहीं हो जाता, क्योंकि उसके द्वारा प्रशिक्षित अध्यापक विद्यालय में बाद में अध्यापन कार्य करता है। विद्यालयों में विशिष्ट स्थितियों में मार्गदर्शन देने का कार्य प्रधानाध्यापक या निरीक्षक का होता है। इस प्रकार निरीक्षक भी शिक्षक प्रशिक्षक का कार्य करता है। प्रशिक्षक निश्चित स्थान पर काम करता है और परिवीक्षक भ्रमणशील शिक्षक प्रशिक्षक की भूमिका निभाता है। इन दोनों में से एक को अलग रखकर शिक्षक-प्रशिक्षण की कल्पना करना असम्भव है।

२—शिक्षक प्रशिक्षक क्षेत्र व उसके अनुभवों से सामान्यतः रहित होता है। वह अपने कार्य की प्रेरणा उन आदर्शों से लेता है जो विचारकों ने व्यक्त किए हैं। निरीक्षक क्षेत्र से अधिक निकट होता है व आदर्शों की क्रियान्विति देखता है। वास्तविकता को देखते हुए वह इतना व्यावहारिक बन जाता है कि बहुत बार आदर्श उसकी निगाह से ओझल हो जाते हैं। शिक्षक प्रशिक्षकों को यथार्थोन्मुख आदर्शवादी और निरीक्षकों को आदर्शोन्मुख यथार्थवादी बनाने के लिए निकट लाने के यत्न जरूरी हैं।

३—शिक्षक प्रशिक्षक और निरीक्षक को शिक्षकों के सदर्भ में उत्पादक और उपभोक्ता कहना भी अनुपयुक्त नहीं होगा। शिक्षक प्रशिक्षण कार्यक्रम तभी गतिमान और क्षेत्रीय आवश्यकताओं के अनुरूप बना रह सकता है जब क्षेत्रीय कार्यकर्त्ताओं और शिक्षक प्रशिक्षकों का निकटतम सम्पर्क हो। और इसी प्रकार निरीक्षक भी गतिमान तभी हो सकता है जब तत्सम्बन्धी नवीनतम ज्ञान की जानकारी उसे मिलती रहे। इसलिये दोनों का सम्पर्क जरूरी है।

कोठारी शिक्षा आयोग ने शिक्षक-प्रशिक्षण कार्यक्रम में अलगाव दूर करने के क्रम में जो बिन्दु सुझाए हैं उनमें शिक्षक प्रशिक्षक व निरीक्षक के अलगाव दूर करने के पक्ष पर कुछ भी नही कहा गया है परन्तु राजस्थान राज्य शिक्षा संस्थान ने उचित समझा कि विद्यालय सुधार कार्यक्रमों के नियोजन और क्रियान्विति में शिक्षक प्रशिक्षकों और निरीक्षकों का सम्मिलित कार्य आवश्यक है।

प्राथमिक शिक्षक प्रशिक्षकों के सेवारत प्रशिक्षण के लिए एक मात्र अभिकरण राज्य शिक्षा संस्थान ही है। राज्य शिक्षा संस्थान में जो अधिकारी इस कार्य को करें उन्हें भी प्राथमिक शिक्षा का गहन अध्ययन होना चाहिए। प्राथमिक शिक्षा में विशेषज्ञता प्राप्त किये बिना उनके द्वारा दिये गये सेवारत प्रशिक्षण का कोई विशेष फल नहीं होगा।

माध्यमिक शिक्षक प्रशिक्षकों का सेवारत प्रशिक्षण

माध्यमिक शिक्षकों के सेवारत प्रशिक्षण कार्य की महत्ता तो काफी पहले स्वीकार कर दी गई थी परन्तु माध्यमिक शिक्षक प्रशिक्षकों के सेवारत प्रशिक्षण के बारे में बहुत बाद में सोचा गया। शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालयों के शिक्षक प्रशिक्षक माध्यमिक शिक्षा में स्नातक उपाधि प्राप्त होते हैं अतः यही धारणा थी कि इस उपाधि के कारण वे माध्यमिक शिक्षकों को प्रशिक्षित करने के लिए भी सक्षम हैं। शिक्षक प्रशिक्षकों के सेवारत प्रशिक्षण की आवश्यकता के बारे में सबसे पहले बड़ौदा अध्ययन दल ने सिफारिश की 'माध्यमिक शिक्षकों को प्रभावी सेवारत प्रशिक्षण देने के लिए यह आवश्यक है कि शिक्षक प्रशिक्षकों के सेवारत प्रशिक्षण का आयोजन किया जाए।.....दुर्भाग्यवश अधिकतर महाविद्यालयों में वैसे शिक्षक प्रशिक्षक नहीं है जैसे कि होने चाहिए। अकादमिक और व्यावसायिक दोनो क्षेत्रों में उनका ज्ञान पर्याप्त नहीं है। शिक्षा आयोग के अनुसार शिक्षक प्रशिक्षकों के पास दो स्नातकोत्तर उपाधियां होनी चाहिए—एक किसी अध्ययन विषय की और दूसरी शिक्षा विषय की और डाक्टर उपाधिधारियों का भी यथेष्ट अनुपात (कोई १० प्रतिशत) होना चाहिए। एम० एड० स्तर पर विशेष विषय के रूप में या विशेष पाठ्यक्रम के रूप में शिक्षक—प्रशिक्षण का विकास भी उनके द्वारा पढ़ा हुआ होना चाहिए। यदि इसे मानक समझा जाये तो ज्ञात होगा कि बहुत से महाविद्यालयों में इस योग्यता के पर्याप्त शिक्षक प्रशिक्षक नही हैं और इस सम्बन्ध में बहुत कुछ कार्य की आवश्यकता है। ऐसे बहुत से शिक्षक प्रशिक्षक है जिन्होंने स्वयं प्रशिक्षण भी वर्षो पहले लिया है जबकि उस समय की परिस्थितियों और आज की परिस्थितियों मे बहुत ही भिन्नता है। आज कई नये विषय आरम्भ हो गये हैं जैसे सामाजिक अध्ययन, सामान्य विज्ञान आदि। सामाजिक अध्ययन विषय विश्वविद्यालयों मे पढ़ाया नहीं जाता है अतः भूगोल, इतिहास, राजनीतिशास्त्र या अर्थशास्त्र का अधिस्नातक इस पढ़ाता है। सामान्य विज्ञान भी विश्वविद्यालय स्तर पर विषय नही है और सामान्य विज्ञान की विषयवस्तु और

शिक्षण विधियों का उस शिक्षक प्रशिक्षक को अध्यापन करना पड़ता है जिसने स्वयं ने इस विषय को नहीं पढ़ा है। इसलिए इन विषयों के शिक्षक प्रशिक्षकों को विशेष सेवारत प्रशिक्षण की आवश्यकता है। प्रशिक्षण महाविद्यालयों के सर्वेक्षण (१९६५) से ज्ञात हुआ कि शिक्षक प्रशिक्षकों में केवल ५.१० प्रतिशत पी एच. डी., ३१ ७० प्रतिशत एम. ए. एम. एड., १०.६८ प्रतिशत बी. ए. एम. एड. और ४१·०९ प्रतिशत एम. ए. बी. एड ही हैं। इस प्रकार अधिकाश शिक्षक प्रशिक्षकों के लिए अपनी योग्यता में वृद्धि करने की आवश्यकता है। योग्यता में वृद्धि के कई उपाय होने चाहिए। शिक्षक प्रशिक्षक स्वयं अनुसंधान कर पी. एच. डी. उपाधि प्राप्त करें और उनके लिए अभिस्थापन और अभिनवन पाठ्यक्रमों की व्यवस्था की जाये। क्षेत्र कई हो सकते है—मूल्यांकन, पाठ्यक्रम-निर्माण, निर्देशन, शैक्षिक आयोजन, शैक्षिक अर्थशास्त्र, शैक्षिक सांख्यिकी आदि। शिक्षा आयोग ने भी सिफारिश की कि शिक्षक प्रशिक्षकों के सेवारत प्रशिक्षण के लिए ग्रीष्मकालीन संस्थाओं के समुचित कार्यक्रम बनाए जाने चाहिए।

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान व प्रशिक्षण परिषद् ने शिक्षक प्रशिक्षकों के सेवारत प्रशिक्षण के लिए पहल की। अपने विभिन्न विभागों के द्वारा कई विषयों में नियमित पाठ्यक्रम और कई विषयों पर संगोष्ठियाँ और कार्य संगोष्ठियाँ आयोजित की। जिन विषयों में नियमित पाठ्यक्रम आरम्भ किए, वे इस प्रकार थे—(१) शैक्षिक अनुसंधान, (२) पूर्व प्राथमिक शिक्षा, (३) शैक्षिक व व्यावसायिक निर्देशन, (४) प्रौढ़ व समाज शिक्षा, (५) दृश्य-श्रव्य शिक्षा, (६) मूल्यांकन आदि। कुछ विशेष पाठ्यक्रम शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालयों के प्रधानाचार्य, सेवा प्रसार केन्द्रों के समन्वेता और मानद निर्देशकों के लिए भी आयोजित किये गये। इन पाठ्यक्रमों से लगभग १८३ शिक्षक प्रशिक्षक लाभान्वित हुए। सत्र १९६७–६८ में एम. एड. के बाद विशेषज्ञ तैयार करने के लिए एसोशियेटशिप पाठ्यक्रम भी परिषद् द्वारा आरम्भ किया गया था। इनमे से अधिकांश पाठ्यक्रम समाप्त कर दिये गए हैं इसलिये कि इन्हें अब राज्य शिक्षा संस्थान चलाएँ। परिषद् द्वारा तो अब केवल कार्य संगोष्ठियों के माध्यम से ही सेवारत प्रशिक्षण दिया जाता है। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग व उक्त परिषद् संयुक्त रूप से शिक्षक प्रशिक्षकों के लिए ग्रीष्मकालीन संस्थाओं की व्यवस्था करती है। भारतीय शिक्षा की समस्याएँ, शैक्षिक मनोविज्ञान,

शैक्षिक अनुसंधान, विभिन्न विज्ञान विषय आदि कई क्षेत्रों में ग्रीष्मकालीन संस्थाओं का आयोजन हो चुका है।

अब राज्य शिक्षा संस्थान भी माध्यमिक शिक्षा के क्षेत्र में कार्य करने लगे हैं। राजस्थान शिक्षक प्रशिक्षण मण्डल ने निर्णय लिया था कि महा-विद्यालयों के शिक्षक प्रशिक्षकों के सेवारत प्रशिक्षण का कार्य भी राज्य शिक्षा संस्थान आरम्भ करे। इस निर्णय के फलस्वरूप राजस्थान राज्य शिक्षा संस्थान ने १९७१ के ग्रीष्मावकाश में राज्य के सभी शिक्षक प्रशिक्षण महा-विद्यालयों से कुछ चुने हुए शिक्षक प्रशिक्षकों की कार्यगोष्ठी आयोजित की। कार्यगोष्ठी ने प्रशिक्षण को उन्नत करने के लिये सिफारिशें की। प्रसन्नता का विषय है कि उन सिफारिशों में से अधिकांश को राज्य के शिक्षा विभाग ने स्वीकार किया और सभी सम्बन्धित महाविद्यालयों और विद्यालयों को तदनुसार कार्य करने का निर्देश दिया।

कुछ समस्याएँ

(१) **आयोजित प्रयत्न**—तीन पंचवर्षीय योजनाओं में शिक्षक-प्रशिक्षण के लिए कोई अलग से व्यवस्था नहीं थी। वास्तव में शिक्षक प्रशिक्षकों के सेवारत प्रशिक्षण की आवश्यकता भी बहुत देर से ही अनुभव की गई। इस कारण इसे आयोजित करने की व्यवस्थित प्रणाली का प्रादुर्भाव नहीं हुआ और न ही इसे नियमित रूप से आयोजित करने के लिये किसी भी स्तर पर संस्था की स्थापना की गई। राष्ट्रीय स्तर पर राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान व प्रशिक्षण परिषद् सेवारत प्रशिक्षण का कार्य करती है परन्तु शिक्षक प्रशिक्षकों की संख्या, उनकी योग्यता और नित नये परिवर्तनों को दृष्टि में रखते हुए वर्तमान व्यवस्था बिल्कुल ही अपर्याप्त है। यह अनुभव किया जा रहा है कि शिक्षकों के अच्छे सेवारत प्रशिक्षण की नितान्त आवश्यकता है तो उन्हें सेवारत प्रशिक्षण देने वाले शिक्षक प्रशिक्षकों की योग्यता में वृद्धि करना सबसे प्रथम कार्य होना चाहिए। इसे सुचारु रूप से क्रियान्वित करने के लिए पंचवर्षीय योजनाओं में अलग से व्यय की व्यवस्था होनी चाहिए। चूंकि शिक्षक-प्रशिक्षक भी विभिन्न स्तरों के हैं, जैसे पूर्व प्राथमिक, और प्राथमिक माध्यमिक शिक्षक प्रशिक्षक अतः इन तीनों के लिए अलग से सेवारत प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित होने चाहिए। राज्य शिक्षा संस्थान प्राथमिक शिक्षक प्रशिक्षको के सेवारत प्रशिक्षण की व्यवस्था करती है परन्तु माध्यमिक शिक्षक-प्रशिक्षकों के लिए कुछ ग्रीष्मकालीन संस्थाओं या कुछ कार्यगोष्ठियों के अतिरिक्त कोई सुविचारित व सुनियोजित

व्यवस्था नही है। आवश्यकता इस बात की है कि इस सम्बन्ध में योजना बनाई जाए व ऐसी नियमित व्यवस्था की जाए कि हर शिक्षक प्रशिक्षक को पांच वर्ष में दो-तीन माह ऐसे कार्यक्रमों में बिताने का अवसर मिल जाए।

सेवारत शिक्षक-प्रशिक्षण पर प्रो. जे. के. शुक्ला की अध्यक्षता मे बनी समिति ने सुझाव दिया कि देश मे नियमित सेवारत प्रशिक्षण केन्द्रो की स्थापना की जानी चाहिए। ये केन्द्र प्रत्येक राज्य के लिए अलग-अलग हों व उन्हें राज्य शिक्षा संस्थान या विख्यात शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालय से सम्बद्ध किया जाए। राष्ट्रीय स्तर पर यह केन्द्र राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसधान व प्रशिक्षण परिषद् के शिक्षक-प्रशिक्षण विभाग से सम्बद्ध हो। इन केन्द्रों में शिक्षक-प्रशिक्षक और अन्य प्रशासनिक अधिकारियों को उच्च सेवारत प्रशिक्षण दिया जाए। इन केन्द्रों की स्थापना के निम्नलिखित उद्देश्य होने चाहिए—

१—पाठ्यक्रम और शिक्षण सुधार के लिये कार्य करना,

२—अच्छी विधियों के प्रदर्शन के लिये प्रदर्शन केन्द्रों का कार्य करना,

३—शिक्षक प्रशिक्षको व परिवीक्षण अधिकारियों को शिक्षक-प्रशिक्षण व शिक्षण विधियों में प्रशिक्षित करना,

४—शिक्षक-प्रशिक्षकों व परिवीक्षण अधिकारियो के लिए संगोष्ठियों, कार्य-संगोष्ठियों आदि का आयोजन करना,

५—राष्ट्रीय शिक्षा सस्थान के साथ मिलकर सेवारत प्रशिक्षण की योजना बनाना,

६—राज्य में सेवारत प्रशिक्षण की समस्याओं के समाधान के लिए अध्ययन-दल बनाना,

७—विषय-शिक्षण सुधार एवं अन्य व्यावसायिक कार्यों के लिए अध्ययन-वृत, समूह आदि बनाना,

८—केन्द्र की सुविधाएँ शिक्षक प्रशिक्षण विद्यालयों और महाविद्यालयों को उपलब्ध करना,

९—अध्यापन साहित्य और अन्य उपकरणों का निर्माण करना और उसे क्षेत्र में पहुँचाना और

१०—सेवारत प्रशिक्षण के क्षेत्र में शोधकार्य करना और आगे के कार्यक्रमों में उसका उपयोग करना।

समिति ने जिन उद्देश्यों का सुझाव दिया वे बहुत ही व्यापक हैं। वैसे इन कार्यक्रमों का आयोजन किए बिना केवल शिक्षक प्रशिक्षकों के सेवारत प्रशिक्षण का कार्य ही करते रहने से केन्द्र मुख्य धारा से अलग रहेगा। अतः प्रशिक्षण के साथ क्षेत्र के सुधार कार्य तो जुड़े ही रहने चाहिए। यह बात सही है कि जब तक नियमित केन्द्रों की स्थापना नहीं होगी, तब तक आवश्यकता ही अनुभव होती रहेगी, ठोस कार्य कुछ भी नहीं हो सकेगा। आशा की जानी चाहिए कि पांचवीं पंचवर्षीय योजना में शिक्षक प्रशिक्षकों के सेवारत प्रशिक्षण के बारे में योजनाबद्ध तरीके से कार्य हो सकेगा।

(२) **कार्यक्रमों का चयन**—जो भी कार्यक्रम आज आयोजित होते हैं उनके बारे में भी यह सुनने को मिलता है कि वे क्षेत्र की आवश्यकता को दृष्टि में रखकर आयोजित नहीं किये जाते। चूंकि कुछ वित्त की व्यवस्था होती है और कार्यक्रम आयोजित करने होते हैं अतः केवल आयोजित करने वालों की सुविधानुसार विषयों का चुनाव कर लिया जाता है। जब विषय भाग लेने वालों की समस्याओं पर आधारित नहीं होते हैं तो उनकी विषयों में कोई रुचि नहीं होती। प्रोफेसर एच. बी. मजूमदार ने इस समस्या के हल के लिए निम्नलिखित पदों का सुझाव दिया—

१—प्राथमिक व माध्यमिक स्तर के शिक्षक प्रशिक्षकों की योग्यता, उनकी समस्याएँ उनके द्वारा कमी अनुभव किए जाने वाले क्षेत्रों का सर्वेक्षण जाए।

२—वर्तमान कार्यक्रमों का इस दृष्टि से विश्लेषण किया जाए कि वे शिक्षक-प्रशिक्षकों की आवश्यकता की पूर्ति किस सीमा तक करते हैं।

३—उपरोक्त विश्लेषण के आधार पर नये पाठ्यक्रमों का निर्माण किया किया जाए।

४—उन पाठ्यक्रमों के आधार पर प्रायोगिक प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित किए जाएँ। उनका मूल्यांकन कर आवश्यकता हो तो संशोधन, परिवर्द्धन करें फिर उन्हें लागू किया जाए।

५—उन कार्यक्रमों पर प्रति पांच वर्ष में पुनर्विचार किया जाए

आशय केवल इतना ही है कि जो भी कार्यक्रम आयोजित किए जाएं वे क्षेत्र की आवश्यकता पर आधारित होने चाहिए। व्यवस्थित सर्वेक्षण कार्य तो आवश्यक है ही, यदि सुविचारित व आवश्यकतानुसार कार्यक्रम आयोजित

किए जाएँ तो उपस्थिति की समस्या भी नहीं रहेगी, शिक्षक प्रशिक्षक स्वयं ही रुचिपूर्वक भाग लेंगे।

(३) **अवधि**—इन कार्यक्रमों के आयोजन में अवधि भी एक समस्या है। कार्यक्रम मुख्यतया दो प्रकार के होते हैं—अल्पकालिक एवं दीर्घकालिक। दीर्घकालिक कार्यक्रम दो-तीन माह या इससे अधिक अवधि के हो सकते हैं और अल्पकालिक कार्यक्रम ८-१० दिन के। अल्पकालिक कार्यक्रमों के बारे में यह सोचा जाता है कि थोड़ी अवधि होने के कारण प्रशिक्षकों पर उनका अच्छा प्रभाव नहीं पड़ता और वे लाभान्वित नहीं होते अतः कार्यक्रम अधिक अवधि के होने चाहिए ताकि नई संकल्पनाओं और कुशलताओं को ग्रहण कर सकें। यदि अधिक अवधि के कार्यक्रम होते हैं तो अधिकांश शिक्षक प्रशिक्षक जो अधिक आयु के हो चुकने से पारिवारिक कठिनाइयों के कारण अधिक समय तक अपने कार्य स्थान से दूर नहीं रह सकते। इस कारण अधिक अवधि वाले कार्यक्रमों में भाग लेना पसन्द नहीं करते। दोनों का मध्यम मार्ग ही उचित लगता है। यदि सेवारत प्रशिक्षण कार्यक्रम न तो इतनी कम अवधि के हों कि उनका प्रभाव न रहे और न इतनी अवधि के हों कि उसमें शिक्षक-प्रशिक्षक भाग ही न ले सकें, तभी प्रभावी रूप से कार्य हो सकेगा। अल्पावधि कार्यक्रम १०–१५ दिवस के हो सकते हैं और दीर्घावधि कार्यक्रम एक माह की अवधि के। यदि दीर्घावधि प्रशिक्षण कार्यक्रम की अवधि एक से अधिक महीनों की आवश्यक ही हो तो उसके भी भाग कर दिए जाने चाहिए और ऐसी व्यवस्था होनी चाहिए कि आगे के भाग कुछ समय के बाद आयोजित हों।

(४) **प्रशिक्षण का समय**—कभी-कभी प्रशिक्षण कार्यक्रम उन दिनों में आयोजित किए जाते हैं जबकि विद्यालयों एवं महाविद्यालयों में विशष कार्य होते हैं जैसे सत्र का आरम्भ या सत्र का अन्त आदि। कई ऐसे महाविद्यालय हैं जिनमें अध्यापनाभ्यास का कार्यक्रम वर्षपर्यन्त चलता है और इस बीच में किसी भी शिक्षक प्रशिक्षक को महाविद्यालय के प्रधान, बाहर जाने की अनुमति नहीं देते। अतः प्रशिक्षण कार्यक्रम उस समय आयोजित किए जाने चाहिए जबकि अधिकांश भाग लेने वालों को सुविधा हो। सुविधा की दृष्टि से माध्यावधि अवकाश. शीतकालीन अवकाश या ग्रीष्मावकाश बहुत ही उपयुक्त रहते हैं परन्तु यदि सत्र के बीच में कार्य दिवसों में भी कार्यक्रम आयोजित किए जाएं तो उसकी

योजना सत्र के पूर्व बन जानी चाहिए। इसकी सूचना सभी भाग लेने वालों और संस्था प्रधानों को सत्र के आरम्भ में ही मिल जाए तो वे अपनी संस्था का अन्य कार्यक्रम उसी के अनुरूप बना लेंगे और भाग लेने की कोई असुविधा नहीं रहेगी।

५. संभागी—प्रो० जे. के. शुक्ला समिति ने यह भी अनुभव किया कि सेवारत प्रशिक्षण कार्यक्रमों में संभागियों का चुनाव उचित रीति से नहीं होता। कुछ ही व्यक्ति बार-बार सम्मेलनों और संगोष्ठियों में बुलाये जाते हैं या राज्य के शिक्षा विभागों द्वारा प्रतिनियुक्त कर दिये जाते हैं। इस प्रकार प्रशिक्षण कार्यक्रम का लाभ जिनको मिलना चाहिए उन्हें नहीं मिलता। अतः इन कार्यक्रमों के लिए भाग लेने वालों के चुनाव में विशेष सावधानी बरतने की आवश्यकता है। यह कार्य तभी सफलतापूर्वक हो सकता है जबकि आयोजन या प्रतिनियुक्ति करने वाले अधिकारी क्षेत्र में समस्त शिक्षक-प्रशिक्षकों की योग्यता, कार्यक्षमता व समस्याओं से परिचित हों और कार्यक्रम के अनुसार ही उनमें से चुनकर व्यक्तियों को बुलाए या प्रतिनियुक्त करे। एक बात और भी ध्यान में रखने की है कि उन संभागियों का ही चुनाव किया जाए जो इसमें स्वेच्छा से भाग लें। मात्र सरकारी आदेश से बिना आवश्यकता अनुभव किये जो व्यक्ति प्रशिक्षण में सम्मिलित होते हैं वे इसे केवल खाना-पूर्ती समझते हैं। अच्छा हो, अनिच्छुक व्यक्तियों को प्रशिक्षण कार्यक्रमों के लिए आमंत्रित या प्रतिनियुक्त न किया जाए क्योंकि इससे श्रम, शक्ति व धन का अपव्यय ही होगा। संभागियों के चुनाव में इस दृष्टि से विशेष सावधानी की आवश्यकता है।

६. संदर्भ्य व्यक्ति—शिक्षक-प्रशिक्षकों के सेवारत प्रशिक्षण कार्यक्रमों में अधिकांशतः वे ही व्यक्ति भाग लेते हैं जो काफी उम्र के व अनुभवी होते हैं। इन कार्यक्रमों में शिक्षण कार्य की पद्धति निश्चय ही विद्यालयों की कार्य पद्धति से भिन्न होती है परन्तु प्रायः बहुत ही कम संदर्भ्य व्यक्ति ऐसे होते हैं जो संभागियों को अपने ज्ञान व उच्च योग्यता से प्रभावित कर सकें। ऐसी स्थिति में इन प्रशिक्षण कार्यक्रमों की उपयोगिता पर लोगों को संदेह होता है और भाग लेने वाले भी कार्यक्रम को केवल समय बिताने का साधन समझते हैं। संदर्भ्य व्यक्तियों के रूप में बहुधा उन व्यक्तियों का ही चुनाव होता है जो उच्च पदों पर आसीन होते हैं। इसमें बुराई नहीं है परन्तु बुराई तब आ जाती है जबकि उच्च पद को उच्च योग्यता का समानार्थक समझ लिया जाता है।

केवल उच्च पद पर दृष्टि न रखकर व्यक्ति की योग्यता को ही संदर्भ्य व्यक्ति के चुनाव का मापदण्ड बनाया जाना चाहिए। जब तक संदर्भ्य व्यक्ति अपने क्षेत्र में निष्णात और संभागियों की हर जिज्ञासा की योग्यता के आधार पर पूर्ति करने में सक्षम नहीं होंगे तब तक प्रशिक्षण कार्यक्रम मात्र खानापूरी ही रहेगी, उससे वास्तविक लाभ कुछ भी नहीं होगा। संभागियों के चुनाव में सावधानी की आवश्यकता तो है ही परन्तु संदर्भ्य व्यक्तियों के चुनाव में उससे भी अधिक सावधानी की आवश्यकता है। राज्य शिक्षा संस्थान में जो भी व्यक्ति नियुक्त हों, वे ऐसे हों जिनकी योग्यता में किसी को संदेह न हो और उन्हें ऐसे अवसर दिए जाएँ कि वे अपने ज्ञान में निरन्तर वृद्धि करते रहें।

प्रशिक्षण कार्यक्रम के प्रकार

१. **नियमित पाठ्यक्रम**—कोठारी शिक्षा आयोग के अनुसार शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालयों के शिक्षक-प्रशिक्षकों के पास दो स्नातकोत्तर उपाधियाँ होनी चाहिए—एक किसी अध्यापन विषय में और दूसरी शिक्षा विषय में। अधिकांश शिक्षक प्रशिक्षक इस योग्यता के नहीं है। शिक्षक-प्रशिक्षक यथेष्ट संख्या में पी-एच० डी० भी होने चाहिए, जो नहीं हैं। अतः शिक्षक-प्रशिक्षकों की शैक्षिक योग्यता में वृद्धि की अत्यन्त आवश्यकता है। जो एम० ए० बी० एड० हैं उन्हें एम० एड० करनी चाहिए और जो बी० ए० एम० एड० हैं उन्हें एम० ए० करना चाहिए। जो एम० ए० एम० एड० हैं उन्हें पी० एच० डी० करने के लिए प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। शिक्षक-प्रशिक्षकों की नई नियुक्ति के लिए तो न्यूनतम योग्यता एम० ए० एम० एड० निर्धारित की जा सकती है पर जो पहले से ही शिक्षक प्रशिक्षक हैं उन्हें तो आवश्यक सुविधा देकर ही योग्यता में वृद्धि करने के लिए प्रेरित किया जाना चाहिए। एम० एड० के लिए एक सुविधा सवेतन अवकाश की दी जा सकती है परन्तु संभवतः इसमें नियोजकों को आर्थिक कठिनाई हो। सीधा व सरल उपाय एम० एड० अवकाशकालीन या पत्राचार पाठ्यक्रम आरम्भ करने का है ताकि शिक्षक-प्रशिक्षक कार्य करते हुए भी योग्यता में वृद्धि कर सकें। जिन महाविद्यालयों में एम. एड. कक्षाएँ हैं, वहाँ के शिक्षक-प्रशिक्षक अंशकालिक रूप से उस पाठ्यक्रम को पूरा करें व एम. एड. की परीक्षा दें। अवकाशकालीन या पत्राचार एम. एड. पाठ्यक्रम की सुविधा अभी बहुत ही कम स्थानों पर है अतः इसे बढ़ाई जानी चाहिए। केन्द्रीय शिक्षा संस्थान, दिल्ली की तरह रात्रिकालीन

एम. एड. कक्षाएँ बड़े शहरों में आरम्भ की जाएँ तो भी काफी लाभ हो सकेगा।

जो शिक्षक-प्रशिक्षक पी-एच. डी. करना चाहें उन्हे हर संभव सहायता दी जानी चाहिए। चूंकि एम. एड. व पी-एच. डी. करने से शिक्षक-प्रशिक्षकों के वेतन-मान में वृद्धि का प्रावधान नहीं है अतः योग्यता-वृद्धि के इन कार्यक्रमों को शिक्षक-प्रशिक्षक का व्यक्तिगत कार्य न समझ कर महाविद्यालय का ही कार्य समझा जाना चाहिए और इस अतिरिक्त कार्य के लिए उन्हें समय की सुविधा भी दी जानी चाहिए। यह प्रसन्नता का विषय है कि जो शिक्षक-प्रशिक्षक पी-एच. डी करते हैं उनकी योजना विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा स्वीकृत हो जाने पर आर्थिक सहायता भी दी जाती है। शिक्षक-प्रशिक्षकों को इस योजना का लाभ उठाना चाहिए।

विद्यालयों या महाविद्यालयों के जो शिक्षक-प्रशिक्षक किसी विषय में अधिस्नातक नहीं हैं उन्हें अधिस्नातक उपाधि प्राप्त करने के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए। शिक्षकों को स्वयंपाठी छात्र के रूप में विज्ञान के अतिरिक्त अन्य विषयों में अधिस्नातक उपाधि प्राप्त करने की सुविधा है अतः शैक्षिक प्रशासकों द्वारा उन्हें परीक्षा देने की अनुमति आवश्यक रूप से दी जानी चाहिए। हर विद्यालय और महाविद्यालय इन कार्यरत शिक्षक-प्रशिक्षकों की योग्यता-वृद्धि की पंचवर्षीय योजना बनाएँ और सभी को शिक्षा आयोग द्वारा प्रस्तावित योग्यता तक लाने का प्रयत्न करें।

जो शिक्षक-प्रशिक्षक एम. एड. करेंगे वे बाद में भी शिक्षक-प्रशिक्षक रहेंगे अतः ऐसी व्यवस्था की जानी चाहिए कि एम. एड. में शिक्षक-प्रशिक्षण विषय वे अवश्य लें। शिक्षक-प्रशिक्षण का पाठ्यक्रम भी ऐसा बनाया जाये कि वह क्षेत्र की आवश्यकताओं की पूर्ति कर सके। इसमें सैद्धान्तिक कार्य के साथ व्यावहारिक कार्य पर समुचित बल दिया जाए। ताकि इसे पूरा करने के बाद शिक्षक-प्रशिक्षक पहले से अधिक क्षमता से कार्य कर सके।

२. **दीर्घकालिक पाठ्यक्रम**—यह भी आवश्यक है कि कुछ विशिष्ट क्षेत्रों में एकवर्षीय या कुछ कम अवधि के व्यावसायिक डिप्लोमा पाठ्यक्रम आरम्भ किये जाएँ। ये विशिष्ट क्षेत्र हैं—

१—शैक्षिक प्रशासन एवं वित्त

२—शिक्षा की आर्थिक व्यवस्था तथा वित्त आयोजना

३—निदेशन तथा परामर्श

४–पाठ्यचर्या तथा शिक्षण सामग्री
५–शैक्षिक मापन तथा मूल्यांकन
६–विज्ञान शिक्षा
७–भाषा शिक्षण
८–श्रव्य-दृश्य शिक्षा
९–बाल विकास
१०–शिक्षण प्रौद्योगिकी आदि

इस प्रकार के कुछ पाठ्यक्रम राष्ट्रीय शिक्षा संस्थान द्वारा आरम्भ भी किए गए परन्तु उसमें पर्याप्त सफलता नहीं मिली। यह अनुभव किया गया कि इन पाठ्यक्रमों में भाग लेने के लिए शिक्षक-प्रशिक्षकों मे कोई उत्साह नहीं है। कारण स्पष्ट था कि इन पाठ्यक्रमों को पूरा कर लेने के बाद भी उनके वेतन या पदोन्नति सुविधा में कोई अन्तर नहीं आता। पाठ्यक्रमों में भाग लेने के लिए किसी प्रकार का अन्य प्रोत्साहन भी नहीं था और न ही किसी पद के लिए यह न्यूनतम आवश्यकता ही थी। पाठ्यक्रम पूरा करने के बाद कोई मान्य उपाधि भी नहीं मिलती अतः कुछ लोगों का सुझाव था कि ऐसे पाठ्यक्रम आयोजित किये जाएँ जिन्हें पूरा करने पर कोई मान्य उपाधि मिले। डॉक्टर आर. एन. मेहरोत्रा का विचार है कि उपाधि देना भी समस्या का हल नहीं है क्योंकि भारत में उपाधिधारियों की कोई कमी नहीं है और नई-नई उपाधियों को धारण करने मात्र से ही कोई व्यक्ति बहुत योग्य नहीं बन जाता अतः सेवारत प्रशिक्षण का उद्देश्य उपाधि देना नहीं होना चाहिए। उपाय सरल नहीं है परन्तु इतना अवश्य है कि इस प्रकार के पाठ्यक्रम चलाए जाएँ तो वे उत्प्रेरक अवश्य होने चाहिए।

दीर्घकालिक पाठ्यक्रमों के सम्बन्ध में एक समस्या यह भी रहती है कि अधिक अवधि होने के कारण शिक्षक-प्रशिक्षक अपनी अन्य आवश्यकताओं के कारण भाग नहीं ले पाते। अतः ऐसे पाठ्यक्रमों की अवधि भी कम होनी चाहिए। यदि तीन माह का पाठ्यक्रम भी हो तो उसे सुविधानुसार दो-तीन भागों में बाँट देना चाहिए और वर्ष भर में उसे इस प्रकार आयोजित करना चाहिए कि शिक्षक-प्रशिक्षक सुविधापूर्वक भाग ले सकें। यह तो निश्चित ही है कि ऐसे पाठ्यक्रमों में भाग लेने का पूरा व्यय आयोजक अभिकरण अथवा राज्य देगा।

३. **अल्पकालिक पाठ्यक्रम व ग्रीष्मकालीन संस्थाएँ**—अल्पकालिक पाठ्यक्रम का उद्देश्य भाग लेने वाले व्यक्तियों के शैक्षिक व व्यावसायिक ज्ञान का नवीनीकरण करना होता है। ये पाठ्यक्रम विषय-वस्तु व अध्यापन विधियाँ, शिक्षा सिद्धान्त व प्रायोगिक शिक्षण, भारतीय शिक्षा की समस्याएँ, शैक्षिक आयोजन, कार्यक्रम निर्देशन, शिक्षा समाजशास्त्र, शैक्षिक मनोविज्ञान आदि कई विषयों पर आयोजित हो सकते हैं। राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान व प्रशिक्षण परिषद् ने अलग से और विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के साथ सम्मिलित रूप से ऐसे कई कार्यक्रम ग्रीष्मकालीन संस्थाओं के रूप में आयोजित किए हैं। इन संस्थाओं की संख्या भी बढ़ाई जानी चाहिए। कई विश्वविद्यालयों ने बी. एड. पाठ्यक्रमों में अध्यापन विषय की विषयवस्तु का समावेश किया है। शिक्षक-प्रशिक्षक सामान्यतः शिक्षा सिद्धान्तों और शिक्षण विधियों के अध्ययन में ही अधिक समय लगाते हैं। प्रत्येक विषय में विषय-वस्तु-ज्ञान नया ही रूप धारण करता जा रहा है और सामान्य शिक्षक-प्रशिक्षक इस क्षेत्र में कमी का अनुभव करता है। आज की परिवर्तित परिस्थितियों में यह अत्यधिक आवश्यक हो गया है। शिक्षक-प्रशिक्षक अपने विषय की विषय-वस्तु से पूर्ण परिचित रहे अतः विषय-वस्तु से सम्मिलित अध्यापन विधियों की ग्रीष्मकालीन संस्थाएँ अधिक से अधिक संख्या में आयोजित की जानी चाहिए। इन संस्थाओं में विधियों पर अधिक जोर न होकर विषय-वस्तु के ज्ञान को समृद्ध करने का कार्य होना चाहिए। इन वर्षों में विज्ञान विषयों में ऐसी संस्थाएँ हुई हैं पर अन्य विषयों में ग्रीष्मकालीन संस्थाओं की अत्यधिक आवश्यकता है।

ग्रीष्मकालीन संस्थाओं के अतिरिक्त संगोष्ठी, कार्यसंगोष्ठी और सम्मेलनों का आयोजन भी ज्ञान वृद्धि के माध्यम हैं। कार्यसंगोष्ठियाँ कई विषयों पर आयोजित की जा सकती हैं जैसे महाविद्यालयों में प्रवेश प्रणाली, अध्यापनाभ्यास, मूल्यांकन, पाठ्यक्रम सुधार, शैक्षिक अनुसंधान, शिक्षण सुधार में महाविद्यालयों का दायित्व, शिक्षक-प्रशिक्षण की समस्याएँ, महाविद्यालयों में कार्यानुभव आदि। ये कार्य संगोष्ठियाँ राज्य शिक्षा संस्थान या राष्ट्रीय शिक्षा संस्थान आयोजित करता है। इनके सफल संचालन के लिए यह आवश्यक है कि सभी संभागियों के पास विस्तृत कार्य-पत्र काफी समय पूर्व पहुंच जाए ताकि वे पूर्व तैयारी से भाग ले सकें। संगोष्ठियों में भाषणों का अधिक महत्त्व नहीं है अतः सामूहिक चर्चा पर बल होना चाहिए। ऐसे वाता-

वरण का निर्माण होना चाहिए जिसमें सदभ्यं व्यक्ति और संभागी बराबरी की भावना से भाग ले सकें।

३. सेवा प्रसार विभाग

आज प्रायः यह सुनने को मिलता है कि शिक्षण-प्रशिक्षक सस्थाएँ तो महज आदर्शवादी है व उन्हें क्षेत्र की वास्तविकताओं का कोई ज्ञान नही है। यह उन प्रशिक्षण संस्थाओं के बारे में अधिक सही होता है जहाँ पर एक बार नियुक्ति होने के बाद पूरे सेवाकाल तक व्यक्ति शिक्षक-प्रशिक्षक ही रहता है और विशेषतः उन लोगों के लिए जो विद्यालयों से कोई प्रभावी सम्पर्क नहीं रखते। शिक्षा आयोग ने इस सम्पर्कहीनता को शिक्षक-प्रशिक्षण का एक बड़ा दोष बताया और सिफारिश की कि शिक्षक-प्रशिक्षण संस्थाओं का विद्यालयों से अलगाव दूर होना चाहिए। सम्पर्क हीनता के निवारण के लिए प्रत्येक प्रशिक्षण सस्था के लिए यह आवश्यक होना चाहिए कि वह अपने निकटवर्ती विद्यालयों को मार्ग-निर्देश दे कि वे अध्यापन कार्यक्रम कैसे बनाएँ और शिक्षण की नई उपयुक्त विधियों को कैसे अपनाएँ। इस प्रकार का विस्तार कार्य न केवल विद्यालय सुधार के लिए अपितु स्वय प्रशिक्षण कार्यक्रम के सुधार के लिए भी आवश्यक है। अतः प्रत्येक प्रशिक्षण संस्था के साथ प्रसार सेवा विभाग होना चाहिए। प्रसार सेवा विभाग के माध्यम से शिक्षक-प्रशिक्षक विद्यालयों में जाएँ तो वे विद्यालयों की समस्याओं को अच्छी प्रकार समझ सकेंगे व उनके व्यावसायिक ज्ञान में वृद्धि होगी। प्रसार सेवा विभाग शिक्षक-प्रशिक्षकों के सेवारत ज्ञान बढाने के अच्छे साधन है और इनका पूरा उपयोग किया जाना चाहिए। इन विभागों को ऐसे कार्यक्रम आयोजित करने चाहिए जिसमें संस्था के सभी प्रशिक्षक बारी-बारी से भाग ले सकें।

४. प्रशिक्षण संस्थाओं में अध्ययन वृत्त

शिक्षक-प्रशिक्षकों के व्यावसायिक उन्नयन का साधन स्वयं प्रशिक्षण सस्था ही बन सकती हैं। संस्था के सभी शिक्षक-प्रशिक्षक आपस में एक दूसरे के उन्नयन का कार्य कर सकते है जैसे अध्ययन वृत्त (स्टडी सर्किल) का निर्माण करें या व्यावसायिक संघ बनाएँ। अध्ययन वृत्त की नियमित सभाएँ हों और उनमें समस्याओं पर विचार किया जाए, पत्र पढ़े जाएँ और उन पर चर्चा हो। ये अध्ययन वृत्त दिखावे के लिए नहीं पर वास्तविक व ठोस कार्य के लिए हों जिसमें हर शिक्षक-प्रशिक्षक रुचि पूर्वक भाग ले और योगदान दे।

५. व्यावसायिक संघ की सदस्यता

राष्ट्रीय स्तर पर शिक्षक-प्रशिक्षकों का एक मात्र संगठन 'भारतीय शिक्षक-प्रशिक्षक संघ' है। इसकी कई राज्यों में शाखाएँ भी है। यह विशुद्ध व्यावसायिक संगठन है और प्रकाशनों और वार्षिक सम्मेलनों के द्वारा व्यावसायिक उन्नयन का कार्य करता है। जो शिक्षक-प्रशिक्षक इसके सदस्य हैं व सम्मेलनों में भाग लेते हैं, उन्हें लाभ अवश्य होता है। यद्यपि संघ ने पूरे शिक्षक-प्रशिक्षण को अपना क्षेत्र बनाया है पर प्राथमिक शिक्षक-प्रशिक्षक न तो अधिक संख्या में सम्मेलनों में भाग लेते हैं और न ही इसके सदस्य बने हैं। आवश्यकता इस बात की है कि प्रत्येक राज्य में इस संघ की शाखाएं हों और वे अपने स्तर पर व्यावसायिक उन्नयन का कार्य करें। संघ भी अपनी गतिविधियाँ बढ़ाए और प्रत्येक शिक्षक-प्रशिक्षक से सम्पर्क स्थापित करने का प्रयत्न करे तो काफी लाभ होगा। संघ की त्रैमासिक पत्रिका 'टीचर एज्यूकेशन' का भी हर शिक्षक-प्रशिक्षक को ग्राहक बनाने का प्रयत्न किया जाना चाहिए।

६. अन्य प्रशिक्षण संस्थाओं का अवलोकन

दूसरी प्रशिक्षण संस्थाओं के अवलोकन से भी काफी लाभ होता है। प्रत्येक संस्था की अपनी विशेषताएँ होती है और इन्हें देखने और समझने का अवसर अन्य शिक्षक-प्रशिक्षकों को मिलना चाहिए। इस प्रकार शिक्षक-प्रशिक्षकों के ज्ञान में वृद्धि होगी और दूसरे स्थान की विशेषताएँ स्वयं की संस्था में आरम्भ करने का प्रयत्न करेंगे। राजस्थान के शिक्षक-प्रशिक्षण मण्डल ने सन् १९६९ में यह निर्णय लिया कि राज्य का शिक्षा विभाग एक महाविद्यालय के चुने हुए शिक्षक-प्रशिक्षकों को दूसरे महाविद्यालयों में भेजे जो वहाँ के शिक्षक-प्रशिक्षकों से मिलकर प्रशिक्षण से सम्बन्धित विषयों पर चर्चा करें। यह व्यवस्था राज्य के शिक्षक-प्रशिक्षण महाविद्यालयों तक ही सीमित रखी गई। आवश्यकता इस बात की है कि इस प्रकार का अन्तर्राज्यीय आदान-प्रदान भी हो। राज्यों के शिक्षा सचिवों की मई, १९६९ में हुई बैठक के निर्णयानुसार शिक्षा प्रशासन अधिकारियों के दल अन्य राज्यों में चल रहे सुधार कार्यों के अवलोकन हेतु भेजे जाने लगे हैं परन्तु शिक्षक-प्रशिक्षकों के लिए अभी तक ऐसी व्यवस्था नहीं हो पाई है। राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् को इस सम्बन्ध में पहल करनी चाहिए व शिक्षक-प्रशिक्षकों के अन्तर्राज्यीय शैक्षिक भ्रमण दल की व्यवस्था करनी चाहिए।

७. स्वाध्याय

व्यावसायिक उन्नयन का स्वाध्याय से उत्तम साधन शायद ही कोई हो। प्रत्येक शिक्षक-प्रशिक्षक को अपने क्षेत्र में निरन्तर अध्ययन करते रहना चाहिए। शिक्षक-प्रशिक्षक स्वाध्याय करता रहे इसके लिए सुविधाओं की भी आवश्यकता होती है। जिस संस्था में प्रशिक्षक परम्परित कार्यों में पूरे समय ही फंसे रहते हैं या उन पर अत्यधिक कार्य लाद दिया जाता है तो उन्हें स्वाध्याय का समय नहीं मिलता। ऐसी स्थिति में वे ज्ञान के क्षेत्र में पिछड़ते जाते हैं और अपने छात्रों की जिज्ञासा की पूर्ति भी नहीं कर पाते। उन्हें नियमित रूप रूप से इतना समय दिया जाना चाहिए कि वे स्वाध्याय कर सकें। यदि पांच-छः वर्ष की सेवा के बाद कुछ महीनों के लिए अध्ययन हेतु सवेतन अवकाश दे दिया जाए तो इससे भी लाभ होगा। हो सकता है, इस सुविधा का कुछ लोग दुरुपयोग भी करें परन्तु आरम्भ तो विश्वास से ही करना चाहिए। इस अवकाश का लाभ उठाने वाला शिक्षक-प्रशिक्षक अवकाश पूरा होने पर विश्वविद्यालय या संस्था प्रधान द्वारा यह प्रमाण-पत्र प्रस्तुत करे कि उसने वहाँ रहकर किसी विषय पर नियमित अध्ययन किया है। अध्ययन का सार भी प्रस्तुत किया जा सकता है। यदि इस प्रकार की सुविधा बारी-बारी से प्रशिक्षकों को दी जाए तो स्वेच्छा से अपना व्यावसायिक उन्नयन कर सकेंगे और उसका लाभ संस्था को मिलेगा।

विभिन्न अभिकरणों के कार्य

शिक्षक-प्रशिक्षकों के सेवारत प्रशिक्षण का कार्य बहुत से अभिकरण करते हैं। ये अभिकरण विभिन्न स्तरों के हैं। यदि ये अभिकरण समन्वित योजना बनाकर कार्य करें तो इस दिशा में बहुत आगे बढ़ा जा सकता है। सेवारत प्रशिक्षण आयोजन करने वाले निम्नलिखित अभिकरण है—

(१) राष्ट्रीय शिक्षा संस्थान का शिक्षक प्रशिक्षण विभाग

राष्ट्रीय स्तर पर शिक्षक-प्रशिक्षकों एवं राज्य शिक्षा संस्थानों के अधिकारियों के सेवारत प्रशिक्षण का दायित्व इस विभाग का होना चाहिए। यदि विभाग के साथ एक नियमित प्रशिक्षण केन्द्र संलग्न किया जाए तो इस कार्य में गति आएगी। प्रशिक्षण के लिये इस विभाग द्वारा निम्नलिखित कार्य किए जाने चाहिए—

१—क्षेत्र की आवश्यकताओं का राष्ट्रीय स्तर पर पता लगाना,

२—सेवारत प्रशिक्षण के लिये संदर्भ व्यक्तियों का चयन करना,

३—राज्यों के प्रशिक्षण अभिकरणों के निर्देशन के लिए कार्यक्रम आयोजित करना,

४—विभिन्न स्तरों के लिये सेवारत प्रशिक्षण कार्यक्रमों की योजना बनाना,

५—विभिन्न अभिकरणों द्वारा किये जाने वाले कार्यों का समन्वयन करना,

६—सेवारत प्रशिक्षण कार्यक्रमों की सूचनाओं का प्रसार करना, और अनुभवों को प्रकाशनों के द्वारा सभी अभिकरणों को भेजना,

७—देश व विदेशों में उपलब्ध संदर्भ साहित्य उपलब्ध करना और आवश्यतानुसार तैयार कराना,

८—जिन्हें आवश्यकता हो उनका मार्गदर्शन करना और

९—दूसरे देशों के लिए नये शैक्षिक विचारों के वितरण केन्द्र का कार्य करना।

(२) विश्वविद्यालय

लगभग सभी राज्यों में माध्यमिक शिक्षक-प्रशिक्षण विश्वविद्यालयों के अधीन हैं, परन्तु प्राथमिक शिक्षक-प्रशिक्षण के क्षेत्र में अभी तक उनकी कोई रुचि नहीं रही है। माध्यमिक स्तर पर भी विश्वविद्यालयों का कार्य पूर्व सेवा प्रशिक्षण तक ही सीमित है। शिक्षक-प्रशिक्षकों के सेवारत प्रशिक्षण के बारे में विश्वविद्यालय की महत्वपूर्ण भूमिका है और उसे यह निभानी चाहिए। शिक्षक-प्रशिक्षकों के व्यावसायिक उन्नयन के लिये विश्वविद्यालय निम्नलिखित कार्य कर सकते हैं—

१—प्राथमिक शिक्षक प्रशिक्षकों के लिये प्राथमिक शिक्षा के क्षेत्र में अधिस्नातकस्तरीय उपाधि आरम्भ करना।

२—माध्यमिक शिक्षक-प्रशिक्षकों के लिए विषय वस्तु में ग्रीष्मकालीन संस्थाओं का आयोजन करना।

३—विभिन्न विषयों में अभिनवन प्रशिक्षण और कार्य गोष्ठियों का आयोजन करना।

४—सेवारत प्रशिक्षण और उनकी समस्याओं के बारे में अनुसधान को प्रोत्साहन देना।

५—सेवारत प्रशिक्षण के लिए आवश्यक साहित्य का निर्माण करना और

६—जो महाविद्यालय सेवारत-प्रशिक्षण कार्यक्रमों का आयोजन करें उन्हें पाठ्यक्रम निर्माण, उसके क्रियान्वयन और मूल्याकन में सहायता देना।

(३) शिक्षक-प्रशिक्षण महाविद्यालय

शिक्षक-प्रशिक्षण महाविद्यालय अभी सेवापूर्व प्रशिक्षण का कार्य ही करते है पर शिक्षक-प्रशिक्षकों के सेवारत प्रशिक्षण की आवश्यकता के साथ-साथ अब यह अनुभव किया जा रहा है कि उन्हें अध्यापकों के सेवारत प्रशिक्षण का कार्य भी करना चाहिए ताकि वे अध्यापकों के अधिक सम्पर्क में आएँ और क्षेत्र की वास्तविक स्थितियों से परिचित हों। साथ में यह अनुभव किया जा रहा है कि महाविद्यालय स्वयं भी अपने कार्यकर्त्ताओं के व्यावसायिक उन्नयन का कार्य कर सकते हैं। यह कार्य निम्नलिखित उपायों द्वारा किया जा सकता है—

१—माध्यमिक शिक्षकों के लिये सेवारत प्रशिक्षण कार्यक्रमों का आयोजन करना।

२—शिक्षक-प्रशिक्षण क्षेत्र की नई प्रवृत्तियों पर विचार करने के लिये बैठकों का आयोजन करना।

३—विभिन्न सेवारत कार्यक्रमो के लिए सदर्भ्य व्यक्ति उपलब्ध करना।

४—शिक्षक-प्रशिक्षको की आवश्यकतानुसार कार्यक्रमों का आयोजन करना।

५—सेवारत कार्यक्रमों के लिए शिक्षक-प्रशिक्षकों को साहित्य उपलब्ध करना।

६—क्षेत्र की आवश्यकताएँ ज्ञात कर सेवारत प्रशिक्षण कार्यक्रमों की योजना बनाना।

७—सेवारत प्रशिक्षण कार्यक्रमों मे अन्य अभिकरण-राष्ट्रीय शिक्षा संस्थान, राज्य शिक्षा संस्थान, शिक्षक-प्रशिक्षण विद्यालय आदि की सहायता करना।

८—सेवारत प्रशिक्षण कार्यक्रम की विधियाँ, प्रभाव आदि के बारे में अनुसंधान करना।

(४) राज्य शिक्षा संस्थान

राज्य शिक्षा संस्थानों की स्थापना मूलत: प्राथमिक शिक्षा के सुधार के के लिए की गई थी। संस्थानों द्वारा प्राथमिक शिक्षक-प्रशिक्षकों के व्यावसायिक उन्नयन के लिये नियमित कार्यक्रम आयोजित किए जाते हैं। आने वाले कुछ वर्षों में राज्य शिक्षा संस्थान का कार्यक्षेत्र माध्यमिक शिक्षा भी हो जाएगा और राज्य में यह संस्था वही कार्य करेगी जो राष्ट्रीय स्तर पर राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान व प्रशिक्षण परिषद् का है।

(५) शिक्षक-प्रशिक्षण विद्यालय

शिक्षक-प्रशिक्षण महाविद्यालयों की तरह ये विद्यालय सेवापूर्व प्रशिक्षण का ही कार्य करते हैं। यह समझा जा रहा है कि विद्यालयों का यह कार्य अपर्याप्त है और उन्हें सेवारत प्रशिक्षण का कार्य भी करना चाहिए। ये विद्यालय सेवारत प्रशिक्षण के लिए निम्नलिखित कार्य कर सकते हैं—

१—शिक्षक-प्रशिक्षण के क्षेत्र में नई प्रवृत्तियों पर विचार करने के लिये बैठकों का आयोजन करना,

२—सेवारत प्रशिक्षण कार्यक्रमों के उपयोगार्थ साहित्य का निर्माण करना,

३—प्राथमिक शिक्षा सुधार के लिए संदर्भ्य व्यक्ति उपलब्ध करना,

४—प्राथमिक शिक्षक—प्रशिक्षकों के लिये सेवारत प्रशिक्षण कार्यक्रम तैयार करने में दूसरे अभिकरणों की सहायता करना,

५—शिक्षक-प्रशिक्षकों की आवश्यकतानुसार प्रशिक्षण के क्षेत्रों का पता लगाना।

६—प्राथमिक शिक्षक—प्रशिक्षकों के लिये आयोजित कार्यक्रमों के प्रभाव का अध्ययन कर सम्बन्धित अभिकरण को उसकी सूचना देना।

(६) परिवीक्षक

शिक्षक-प्रशिक्षकों के व्यावसायिक उन्नयन में परिवीक्षकों/निरीक्षकों की भी महत्त्वपूर्ण भूमिका है। वे विद्यालयों के निकट सम्पर्क में होते हैं अतः उनकी समस्याओं व कठिनाइयों से भली-भाँति परिचित होते हैं। इस प्रकार के सेवारत प्रशिक्षण कार्यक्रमों के आयोजन में सबसे अधिक सहायता कर सकते हैं। परिवीक्षक निम्नलिखित रूप में सहायता कर सकते हैं—

१—शिक्षक प्रशिक्षकों को समस्याओं की पहिचान में सहायता करना,

२—उनके साथ विचार विमर्श करना,

३—व्यावसायिक समस्याओं पर चर्चा करने के लिये अध्ययन वृत्तों का निर्माण कर शिक्षक-प्रशिक्षकों को भाग लेने को प्रोत्साहित करना,

४—व्यावसायिक उन्नयन के साहित्य निर्माण में सहायता करना, और

५—शिक्षक-प्रशिक्षकों के प्रशिक्षण कार्यक्रम के लिए प्रशासनिक सुविधा देना।

(७) व्यावसायिक संघ

व्यावसायिक संघ भी सेवारत प्रशिक्षण के लिए बहुत कार्य कर सकते। यह कार्य दो प्रकार का हो सकता है—प्रथम तो इन कार्यक्रमों के निर्माण व क्रियान्वयन में अभिकरणों की सहायता करना और द्वितीय, स्वयं कार्यक्रम आयोजित करना।

(अ) सहायता करना

१—संदर्भ्य साहित्य का निर्माण कर अभिकरणों का उपलब्ध करना,

२—विभिन्न कार्यक्रमों के लिये संदर्भ्य व्यक्तियों के चुनाव में सहायता करना,

३—प्रशिक्षण कार्यक्रम निर्माण में सहायता करना, और

४—प्रशिक्षण कार्यक्रमों की सूचना शिक्षक-प्रशिक्षकों को देकर उन्हें भाग लेने के लिये प्रोत्साहित करना और आवश्यक हो तो आर्थिक सहायता करना,

(आ) कार्यक्रम आयोजित करना

१—शिक्षक-प्रशिक्षण के विभिन्न पक्षों पर संगोष्ठी, सम्मेलन आदि आयोजित करना, और

२—शिक्षक प्रशिक्षण संस्थाओं को कम मूल्य पर साहित्य तैयार कराकर भिजवाना।

(८) शिक्षक-प्रशिक्षण मण्डल

कोठारी शिक्षा आयोग ने शिक्षक-प्रशिक्षण की उन्नति हेतु सभी राज्यों में शिक्षक-प्रशिक्षण मण्डलों की स्थापना की सिफ़ारिश की। भारतीय शिक्षक-प्रशिक्षक संघ ने भी कई सम्मेलनों में इन मण्डलों की आवश्यकता पर बल दिया। कई राज्यों में शिक्षक-प्रशिक्षण मण्डलों की स्थापना की गई है जैसे—महाराष्ट्र, गुजरात, राजस्थान आदि। इन मण्डलों का दायित्व राज्य में प्रत्येक स्तर के शिक्षक-प्रशिक्षण में सुधार और विकास करना है। ये मण्डल शिक्षक-प्रशिक्षकों के व्यावसायिक उन्नयन के लिए निम्नलिखित कार्य कर सकते हैं—

१—सभी स्तर के शिक्षक-प्रशिक्षकों के व्यावसायिक उन्नयन की योजना बनाना,

२—इन कार्यक्रमों के लिए वित्त की व्यवस्था करना,

३—सेवारत कार्यक्रमों के निर्देशन व परिवीक्षण के लिये एक अभिकरण का निर्माण करना जो सब स्थानों पर समान स्तर बनाये रख सके,

४—राज्य के सेवारत कार्यक्रमों का राष्ट्रीय स्तर से समन्वय स्थापित करना, और

५—राज्य में किये जा रहे प्रयोगों के साहित्य का प्रकाशन व वितरण करना।

१६

माध्यमिक शिक्षक-प्रशिक्षण संस्थाओं का संगठन

प्रस्तावना

विगत पच्चीस वर्षों में शिक्षक–प्रशिक्षण संस्थाओं की संख्या में तीव्र गति से वृद्धि हुई है। सन् १९४६-४७ में इन महाविद्यालयों की संख्या केवल ४७ थी लेकिन आज यह संख्या बढ़कर लगभग ३०० हो गई है। छात्राध्यापकों की संख्या में दस गुनी बढ़ोतरी हुई है। इस संख्यात्मक वृद्धि के साथ-साथ ही इनके संगठन और स्वरूप में भी परिवर्तन आया है। कुछ संस्थाएँ विश्व–विद्यालयों से संयुक्त हैं, कुछ संस्थाओं का सम्बन्ध राज्य के शिक्षा विभागों से है और कुछ स्वायत्त संस्थाएँ हैं। इस प्रशासनिक विविधता के फलस्वरूप इन संस्थाओं में शिक्षक व छात्र का अनुपात; उनके भवन, साज-सज्जा, वाचनालय, श्रव्य-दृश्य सामग्री आदि की सुविधाएँ, वित्तीय व्यवस्था, उनमें प्रति छात्र प्रशिक्षण की लागत आदि में महान अन्तर है। विभिन्न प्रदेशों में शिक्षकों की वेतन दर, उनके कार्य-भार, योग्यताओं आदि की स्थिति में भी भिन्नता है। इस प्रकार के प्रशासनिक भेद के कारण शिक्षक-प्रशिक्षण महाविद्यालयों के गठन, स्वरूप, लागत आदि मे सामान्य तौर से अन्तर दृष्टिगत होता है। शिक्षक महाविद्यालयों के संगठन के विभिन्न पक्षों का अध्ययन इस अध्याय में किया जायगा। अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से इस अध्याय को निम्नलिखित भागों में विभाजित किया गया है—

(१) वर्तमान स्थिति,

(२) एक महाविद्यालय की अपेक्षित न्यूनतम आवश्यकताएँ और

(३) नवीन संगठन के लिए कुछ सुझाव।

वर्तमान स्थिति

शिक्षक-प्रशिक्षण महाविद्यालयों की स्थिति का अध्ययन करने की दृष्टि से यह ज्ञात किया जाएगा कि प्रत्येक प्रदेश में इन महाविद्यालयों का क्रमिक विकास किस प्रकार हुआ है, इनका प्रबन्ध किस प्रकार होता है, इनमें शिक्षक व प्रशिक्षार्थी का अनुपात कितना है, इनमे पढ़ाने वाले शिक्षकों की क्या योग्यताएँ हैं, शैक्षिक अनुभव कितना है, इन महाविद्यालयों में भवन, वाचनालय, पुस्तकालय, श्रव्य-दृश्य सामग्री, प्रयोगशालाओं की क्या स्थिति है, राज्य, केन्द्र और विश्वविद्यालय से इनके वित्तीय सम्बन्ध कैसे हैं, और छात्रावास की क्या व्यवस्था है ? इनका संक्षिप्त वर्णन आगे के पृष्ठों में किया गया है।

प्रदेशों मे शिक्षक-प्रशिक्षण महाविद्यालयों का विकास

प्रत्येक प्रदेश में महाविद्यालयों की संख्या और उनकी वृद्धि के अनुपात में काफी अन्तर है। कुछ प्रदेशों में सन् १९४७ से पूर्व ही शिक्षक-प्रशिक्षण महाविद्यालय स्थापित हो चुके थे लेकिन कुछ प्रदेशों में इन महाविद्यालयों की स्थापना सन् १९४७ के पश्चात् हुई।

आन्ध्र में प्रथम शिक्षक-प्रशिक्षण महाविद्यालय सन् १९१७ में स्थापित हुआ था। सन् १९४७ से पूर्व इनकी संख्या तीन थी और आज यह बढकर नौ हो गई है। असम में सन् १९३७ में प्रथम शिक्षक महाविद्यालय खोला गया था, आज इनकी संख्या ६ है। बिहार में सन् १९०८ में पहला शिक्षक महाविद्यालय खुला था। आज इनकी संख्या सात है। गुजरात मे शिक्षक, प्रशिक्षण का श्रीगणेश सन् १९३५ में हुआ था। आज वहाँ इनकी संख्या सत्रह है। जम्मू और काश्मीर शिक्षक-प्रशिक्षण के क्षेत्र में सबसे पिछड़ गया है। यहाँ सन् १९४९ में सर्वप्रथम एक महाविद्यालय की स्थापना हुई थी और इनकी संख्या बढ़ कर चार हो गई है। केरल मे सन् १९११ में दो शिक्षक महाविद्यालय खुले और आज इनकी संख्या २१ है। मध्य प्रदेश शिक्षक–प्रशिक्षण के क्षेत्र में काफी आगे रहा। यहाँ प्रथम महाविद्यालय की स्थापना सन् १८८९ में की गई। इस समय इनकी संख्या १५ है। मध्यप्रदेश से पूर्व तमिलनाडु में शिक्षक महाविद्यालय सन् १८८६ में खुला था। यह इस प्रदेश का ही नहीं बल्कि सम्पूर्ण देश का प्रथम शिक्षक महाविद्यालय था। आज इस प्रदेश में कुल उन्नीस शिक्षक महाविद्यालय हैं। इसी शृंखला में महाराष्ट्र का तीसरा स्थान है। यहाँ प्रथम

शिक्षक महाविद्यालय सन् १९०६ में खुला था। महाराष्ट्र में शिक्षक महाविद्यालय की कुल संख्या छब्बीस है। मैसूर में शिक्षक महाविद्यालय का गठन सन् १९२५ में हुआ। यह संख्या बढकर उन्नीस हो गई। उड़ीसा ने प्रथम शिक्षक महाविद्यालय का मुख सन् १९२३ में देखा था और आज वहाँ चार शिक्षक-प्रशिक्षण संस्थाएँ हैं। पंजाब में भी शिक्षक-प्रशिक्षण के क्षेत्र में कार्य देरी से प्रारम्भ हुआ। प्रथम शिक्षक महाविद्यालय की स्थापना सन् १९३९ में हुई थी। अविभाजित पंजाब में यह संख्या कुल पच्चीस थी। राजस्थान में भी प्रथम शिक्षक महाविद्यालय सन् १९४२ में प्रारम्भ हुआ। आज प्रदेश में चौदह शिक्षक महाविद्यालय हैं। उत्तरप्रदेश में सबसे बड़ी संख्या में शिक्षक महाविद्यालय हैं। यह संख्या छप्पन है, और प्रथम शिक्षक महाविद्यालय सन् १९०८ में स्थापित हुआ था। इसी सन् में पश्चिम बंगाल में शिक्षक महाविद्यालय की स्थापना हुई थी जब कि आज इनकी संख्या बढ़कर छब्बीस हो गई है। केन्द्र-शासित प्रदेशों में शिक्षक-प्रशिक्षण महाविद्यालयों की संख्या आठ है।

शिक्षक महाविद्यालयों के संगठन में कुछ परिवर्तन देश में बुनियादी शिक्षा पद्धति को अपनाने के पश्चात् हुआ था। बुनियादी शालाओं की स्थापना के पश्चात् बुनियादी शिक्षक महाविद्यालयों की आवश्यकता अनुभव की गई। अतः बुनियादी माध्यमिक शिक्षक महाविद्यालयों की स्थापना की गई और आज इनकी संख्या ६९ है। मध्यप्रदेश और पजाब में बुनियादी माध्यमिक शिक्षक महाविद्यालयों की संख्या सबसे अधिक है। उत्तरप्रदेश में बुनियादी शिक्षक महाविद्यालयों की संख्या सबसे कम है।

शिक्षक महाविद्यालयों का प्रबन्ध

देश के शिक्षक महाविद्यालयों का प्रबन्ध चार प्रकार की संस्थाएँ करती है—प्रदेश सरकार, विश्वविद्यालय, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद् और गैर सरकारी प्रबन्ध समितियाँ। कुछ अश में केन्द्र सरकार का शिक्षक महाविद्यालयों के प्रबन्ध एवं संगठन में हाथ रहता है, क्योकि विश्वविद्यालय अनुदान आयोग का आर्थिक अनुदान शिक्षक-प्रशिक्षण कार्यक्रम में बढ़ता जा रहा है।

प्रदेश सरकार

शिक्षा प्रदेश (राज्य) की विषय-सूची में है। अतः इसका शिक्षक महाविद्यालयों के प्रबन्ध में बड़ा हाथ होता है। प्रत्येक प्रदेश में शिक्षक-प्रशिक्षण

की नीति प्रदेश की सरकार निर्धारित करती है। प्रदेश सरकार इन संस्थाओं को आर्थिक अनुदान देती है, प्रशिक्षार्थियों को छात्रवृत्तियाँ प्रदान करती है, शिक्षक-प्रशिक्षकों के वेतन मानों को निर्धारित करती है और कुछ सीमा तक, शिक्षक प्रशिक्षण के पाठ्यक्रम निर्धारित करती है और शारीरिक शिक्षा एवं बुनियादी शिक्षा पाठ्यक्रमों की परीक्षाओं को लेती है। प्रदेश सरकार शिक्षा-नीति निर्धारित करती है, विश्वविद्यालय अधिनियम पारित करती है, विश्व-विद्यालयों की स्थापना की स्वीकृति प्रदान करती है।

प्रदेश सरकार राजकीय शिक्षक-प्रशिक्षण महाविद्यालय स्थापित करती है। देश के सोलह प्रदेशों मे राजकीय शिक्षक महाविद्यालय हैं। इनमे से सात प्रदेशों में राजकीय शिक्षक संस्थाएँ ५० से १००% की सख्या मे है। उड़ीसा में सम्पूर्ण शिक्षक-प्रशिक्षण व्यवस्था प्रदेश सरकार के हाथ मे है। मध्यप्रदेश मे लगभग ८७% संस्थाएँ प्रदेश सरकार द्वारा चलाई जाती हैं। पश्चिमी बगाल, बिहार और केन्द्र-शासित प्रदेशों में भी राजकीय संस्थाओं का प्रतिशत ऊँचा है। उत्तरप्रदेश मे राजकीय सस्थाओं की सख्या केवल चार है और ये कुल सख्या का सात प्रतिशत है।

विश्वविद्यालय—अधिकाश शिक्षक महाविद्यालयों का सम्बन्ध विश्व-विद्यालयों से होता है। विश्वविद्यालय शिक्षक-प्रशिक्षण का पाठ्यक्रम निर्धारित करते हैं, परीक्षा लेते हैं और उपाधि वितरण करते हैं, वास्तव में बी. एड. अथवा इससे उच्च शिक्षा का उत्तरदायित्व विश्वविद्यालयों का ही होना चाहिए। केवल उत्तरप्रदेश शिक्षा विभाग प्रदेश मे एल. टी. की परीक्षा लेता है और डिप्लोमा प्रदान करता है। एल. टी. की परीक्षा बी. एड. के समकक्ष मानी जाती है। उत्तरप्रदेश में ग्यारह शिक्षक संस्थाएँ एल. टी. की परीक्षा के लिए प्रशिक्षार्थियों को तैयार करती है।

कलकत्ता विश्वविद्यालय आयोग की सिफारिशो पर अनेक विश्व-विद्यालयों ने शिक्षा विभाग अथवा शिक्षा संकाय की स्थापना की है। वर्तमान समय में पचास विश्वविद्यालय बी. एड. पाठ्यक्रम चलाते हैं। इनमें से चार विश्वविद्यालय मैसूर, राजस्थान, विक्रम और उत्कल चारवर्षीय बी. एड. पाठ्यक्रम भी चलाते हैं। छत्तीस विश्वविद्यालय एम. एड पाठ्यक्रम चलाते हैं और चार विश्वविद्यालयों में द्विवर्षीय एम. ए. (शिक्षा) के पाठ्यक्रम की व्यवस्था है। सोलह विश्वविद्यालयों में पीएच. डी. (शिक्षा) की सुविधा है।

स्नातक और स्नातकोत्तर स्तर पर शिक्षक-प्रशिक्षण का गठन या तो

स्वतन्त्र महाविद्यालयों में होता है अथवा विश्वविद्यालय में एक शिक्षा विभाग या शिक्षा संकाय के अन्तर्गत होता है। कहीं-कहीं पर शिक्षा विभाग किसी विज्ञान या कला के महाविद्यालयों के साथ संयुक्त रहता है। उपलब्ध सूचना के अनुसार २७३ शिक्षक महाविद्यालयों में से १८५ या ६८ प्रतिशत स्वतन्त्र संस्थाओं के रूप में गठित हैं। उनमें से ५६ शिक्षक-प्रशिक्षण संकाय के रूप में सामान्य विज्ञान एवं कला महाविद्यालयों के अन्तर्गत कार्य करते हैं। इनके अतिरिक्त विश्वविद्यालयों के अन्तर्गत ३२ शिक्षा संकाय अथवा शिक्षा महा-विद्यालय कार्य करते हैं। इनका प्रतिशत केवल ११·५ है।

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद्—शिक्षक-प्रशिक्षण के क्षेत्र में इस परिषद् का योगदान महत्त्वपूर्ण है। इसके अन्तर्गत चार क्षेत्रीय शिक्षा महाविद्यालय भोपाल, अजमेर, भुवनेश्वर एवं मैसूर में कार्य कर रहे हैं। इन क्षेत्रीय महाविद्यालयों में एकवर्षीय बी. एड. के अतिरिक्त चार वर्षीय बी. एड. के पाठ्यक्रम भी चलाए जाते हैं। दिल्ली में केन्द्रीय शिक्षा संस्थान भी राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण का अंग है। संभवतः भविष्य में केन्द्रीय शिक्षा संस्था का प्रबन्ध दिल्ली विश्वविद्यालय ले सकता है। इन संस्थाओं के अन्तर्गत परिषद् में एक शिक्षक-प्रशिक्षण विभाग है जो शिक्षक-प्रशिक्षण के सम्बन्ध में सर्वेक्षण एवं शोध का कार्य करता है। यह परिषद् विभिन्न शिक्षक महाविद्यालयों को शोध और अन्वेषण के लिए अनुदान देती है एवं शिक्षक प्रशिक्षकों के लिए अन्तः सेवाकालीन प्रशिक्षण की व्यवस्था करती है।

गैर सरकारी प्रबन्ध समितियाँ

अधिकांश शिक्षक महाविद्यालय गैर सरकारी प्रबन्ध समितियों के अधीन कार्य करते हैं। बिहार और उड़ीसा प्रदेशों को छोड़कर सभी प्रदेशों में प्राइवेट शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालय हैं। आठ प्रदेशों में प्राइवेट महाविद्यालयों की संख्या राजकीय महाविद्यालयों की संख्या से अधिक है। अधिकांश प्रदेशों में प्राइवेट महाविद्यालयों को राज्य शिक्षा विभाग से आर्थिक अनुदान प्राप्त होता है, लेकिन राजस्थान, पश्चिमी बंगाल, केरल और उत्तर प्रदेश में कुछ संस्थाओं को अनुदान मिलता है और कुछ को नहीं। जिन संस्थाओं को, सरकार की ओर से अनुदान प्राप्त होता है, उनको सरकार के कुछ नियमों का अनिवार्य रूप से पालन करना पड़ता है। प्रदेश द्वारा निर्धारित इन नियमों में बहुत भिन्नता है। कुछ प्रदेशों में शिक्षक महाविद्यालय प्राथमिक

एवं माध्यमिक शिक्षा विभाग के नियंत्रण में होते हैं। कुछ प्रदेशों में उच्च अथवा महाविद्यालय शिक्षा विभाग इनके प्रबन्ध की देखभाल करते हैं और अनुदान देते हैं। नियंत्रण की दृष्टि से कोई एक नियम अभी प्रतिपादित नहीं किया गया है। यह वांछनीय होगा कि शिक्षक महाविद्यालयों को निदेशक, महाविद्यालय शिक्षा से संयुक्त कर दिया जाए।

केन्द्रीय सरकार

भारत सरकार सविधान के अनुसार प्रत्यक्षरूप से शिक्षक प्रशिक्षण के लिए उत्तरदायी नहो है। लेकिन केन्द्र सरकार के अन्तर्गत चार विश्व-विद्यालय है—बनारस, अलीगढ, विश्वभारती एवं दिल्ली। इन विश्व-विद्यालयों के अन्तर्गत शिक्षक प्रशिक्षण सकाय हैं। इनके अतिरिक्त केन्द्र-प्रशासित प्रदेशों मे केन्द्र द्वारा स्थापित प्रशिक्षण संस्थाएँ है। केन्द्र सरकार देश की अन्य विभिन्न शिक्षक प्रशिक्षण संस्थाओं को शोध, पुस्तकालय, वाचनालय भवन आदि के लिए आर्थिक अनुदान देती है। इस कार्य को विश्व-विद्यालय अनुदान आयोग करता है। इस आयोग ने उच्चस्तरीय शिक्षा अध्ययन केन्द्र की स्थापना एम. एस. विश्वविद्यालय बड़ौदा में की और यह अध्ययन केन्द्र शिक्षक-प्रशिक्षण के क्षेत्र में शोध एव समन्वय का कार्य करता है। समय-समय पर यह आयोग शिक्षा के क्षेत्र में सर्वेक्षण समितियों की स्थापना करता है जो शिक्षण पाठ्यक्रम एवं शोध के क्षेत्र में जाँच करती है और सुधार के लिए सुझाव देती है।

केन्द्र सरकार के योजना आयोग के अन्तर्गत शिक्षा विभाग है। यह विभाग सारे देश के शिक्षक-प्रशिक्षण के सुधार के लिए योजनाएँ बनाता है। सन् १९६३ में योजना आयोग ने "कमेटी आफ प्लान प्रोजेक्ट" का गठन किया। इस अध्ययन समिति ने कुछ शिक्षण-प्रशिक्षण संस्थाओं का सर्वेक्षण किया और एक प्रतिवेदन प्रस्तुत किया जिसमे शिक्षक प्रशिक्षण के सम्बन्ध में बहुत उपयोगी सुझाव दिये थ।

केन्द्र सरकार ने राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद् की स्थापना की है। इस परिषद् का कार्य शिक्षक-प्रशिक्षण के सुधार में योगदान देना है। इस परिषद् का सक्षिप्त वर्णन पिछले पृष्ठों में किया गया है।

वित्तीय सहायता—उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि विभिन्न संस्थाएँ शिक्षक-प्रशिक्षण के विकास में अपना योगदान देती हैं। केन्द्र और राज्य सरकारें धीरे-धीरे शिक्षक-प्रशिक्षण का आर्थिक भार अपने ऊपर बढ़ाती

जा रही हैं। सन् १९६३–६४ के उपलब्ध आंकड़ों के अनुसार माध्यमिक शिक्षक महाविद्यालयों पर उत्तरप्रदेश में २४,२२,९०० रुपया व्यय हुआ, जो देश के अन्य प्रदेशों से अधिकतम है। उत्तरप्रदेश के बाद दूसरे क्रम पर पश्चिमी बंगाल का स्थान है। जहाँ पर २१,३६,५०० रुपया शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालयों पर व्यय किया गया। शिक्षक-प्रशिक्षण पर सब से कम व्यय-असम में हुआ। इस प्रदेश में कुल १,०८,८०० किया गया। विभिन्न प्रदेशों में अलग-अलग धनराशि शिक्षक महाविद्यालयों में व्यय की जाती है जो आगे तालिका में दी गई है।

विभिन्न प्रदेशों में व्यय की जाने वाली धनराशि की प्रति छात्र लागत भी अलग-अलग है। कुछ प्रदेशों में अन्य के मुकाबले में, प्रति छात्र लागत बहुत अधिक है। इस दृष्टि से राजस्थान सबसे आगे है क्योंकि यहाँ औसत प्रति छात्र व्यय १,२२४ है। इसी प्रकार केन्द्र-शासित प्रदेशों में औसत प्रति छात्र व्यय १,१७५ है। दूसरी ओर प्रति छात्र औसत व्यय कुछ प्रदेशों में बहुत कम है, उदाहरणार्थ, केरल २६२, असम ३७३ और ३७४ तमिलनाडु में शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालयों में विभिन्न प्रदेशों में किया जाने वाला व्यय अग्रलिखित तालिका से स्पष्ट हो जायगा :—

तालिका

शिक्षक-प्रशिक्षण पर किया जाने वाला कुल व्यय और औसत व्यय

१९६४–६५

प्रदेश	कुल व्यय (०० मे)	संख्या महाविद्यालय	औसत व्यय (०० में)
१	२	३	४
आन्ध्र प्रदेश	९८२९	९	१०९८
असम	१४२२	५	२८४
बिहार	४७१८	७	६७४

१	२	३	४
गुजरात	९५४६	१६	५८४
जम्मू-काश्मीर	३७४८	३	१२४९
केरल	६५००	२०	३२५
मध्यप्रदेश	९९५५	१४	७११
तमिलनाडु	७५६३	१९	३९८
महाराष्ट्र	१४१५२	२१	६९३
मैसूर	७८८३	१५	५२६
उड़ीसा	३१७२	४	७९३
पजाब	१७८१०	२२	८१०
राजस्थान	१५७८५	८	१५९५
उत्तरप्रदेश	२३३०१	५४	४३१
पश्चिमी बगाल	२३९९१	२३	१०४३
केन्द्र-शासित प्रदेश	५३२९	७	७५१

भवन और सामग्री

शिक्षक महाविद्यालयो का भवन और साज-सज्जा की दृष्टि से यदि अवलोकन किया जाए तो यह स्पष्ट होगा कि इनकी स्थिति बहुत सुखद नहीं है। विभिन्न प्रदेशों में अन्तर है, एक प्रदेश के अन्दर ही महाविद्यालयों की स्थिति में अन्तर दृष्टिगत होता है। सरकारी और गैर-सरकारी संस्थाओं में भवन और साज-सज्जा सामग्री की सुविधाएँ समान नहीं हैं। इन असमानताओं को ध्यान में रख कर शिक्षक महाविद्यालयों को सुव्यवस्थित रूप से संगठित करने के लिए इन साधनों की एक न्यूनतम सूची तैयार करना आवश्यक है। इसलिये सर्वप्रथम उपलब्ध साधनों का संक्षिप्त विवरण यहाँ

पर दिया गया है जिसके आधार पर भावी आवश्यकताओं पर विचार किया जाएगा।

सन् १९६४–६५ में २३१ शिक्षक महाविद्यालयों से उपलब्ध आंकड़ों के अनुसार ११७ गैर सरकारी और ६५ सरकारी शिक्षक महाविद्यालयों के पास अपने भवन हैं जब कि २९ गैर सरकारी और १२ सरकारी संस्थाएँ किराये के भवनों में कार्य कर रही हैं। इनमें से ७२ संस्थाओं ने उल्लेख किया है कि उनके पास भवन की दृष्टि से पर्याप्त सुविधाएँ हैं जब कि २० संस्थाओं ने स्पष्ट किया कि उनके पास भवन अपर्याप्त हैं। देश के शिक्षक महाविद्यालयों में से केवल १५९ महाविद्यालयों में शिक्षक-प्रशिक्षकों के बैठने के लिए कमरों की व्यवस्था है; ११८ के पास सब विद्यार्थियों के लिए प्रार्थना-भवन अथवा एक बड़ा कमरा है, ८९ महाविद्यालयों में छात्राओं के लिए एक अलग कमरे की व्यवस्था है। अधिकांश शिक्षक महाविद्यालयों में पढ़ने के कमरों, व्याख्यान कक्ष, शिक्षक कक्ष, छात्राओं के कक्ष, खेल के मैदान आदि की दृष्टि से काफी कमी है।

२३१ शिक्षक महाविद्यालयों के आंकड़ों से उपलब्ध होता है कि केवल १८१ संस्थाओं के पास पुस्तकालय है। इनमें से १३८ संस्थाएँ यह अनुभव करती हैं कि पुस्तकालय सुविधाएँ पर्याप्त हैं, जब कि ४३ संस्थाओं में पुस्तकालय की अपर्याप्त सुविधाएँ अनुभव की जाती हैं। केवल ८२ संस्थाओं में मनोविज्ञान प्रयोगशालाएँ हैं। १९१ संस्थाओं में विज्ञान प्रयोगशालाएँ हैं। सोलह महाविद्यालयों में गृह विज्ञान प्रयोगशालाएँ उपलब्ध हैं। पाँच संस्थाओं के पास तकनीकी विषयों की प्रयोगशालाएँ हैं। लकड़ी के काम, कपड़ा बुनने आदि के वर्कशाप ७६ शिक्षक महाविद्यालयों में उपलब्ध है। इनमें से ५८ वर्कशाप सन्तोप्रद हैं, जब कि अठारह की स्थिति असंतोषजनक है। इसी प्रकार श्रव्य-दृश्य सामग्री की स्थिति भी शोचनीय है। केवल ६६ शिक्षक महाविद्यालयों के पास श्रव्य-दृश्य विभाग के लिए पृथक् से भवन हैं। श्रव्य-दृश्य सामान यथा टेप रिकार्ड, फिल्म प्रोजेक्टर, रिकार्ड प्लेयर आदि की सुविधाएँ बहुत ही सीमित संस्थाओं के पास हैं।

शिक्षक-प्रशिक्षक की अवस्था

शिक्षक महाविद्यालयों में शिक्षकों की योग्यता, अनुभव और कार्यभार की दृष्टि से विविधता है। सन् १९६४–६५ के आँकड़ों के अनुसार लगभग

२५४३ शिक्षक-प्रशिक्षक २३१ शिक्षक महाविद्यालयों में कार्य कर रहे थे। इस अवधि में इन संस्थाओं और प्रशिक्षकों की संख्या में वृद्धि हुई है।

शिक्षक और शिक्षार्थी का अनुपात एक महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। इस समुचित अनुपात के आधार पर मानवीय सम्बन्धों का निर्माण होता है और शिक्षक-प्रशिक्षण के कार्यक्रम में वांछित सुधार किया जा सकता है। शिक्षक महाविद्यालयों मे प्रशिक्षक और प्रशिक्षार्थी का राष्ट्रीय स्तर पर अनुपात १ : १० है। यह अनुपात कार्य की दृष्टि से उचित है। लेकिन कुछ प्रदेशों मे प्रशिक्षक और प्रशिक्षार्थी का अनुपात बहुत अधिक है, उदाहरण स्वरूप बिहार में १ : १६ दूसरी ओर केन्द्र-शासित प्रदेशों में अनुपात केवल १ : ४ है।

शिक्षक प्रशिक्षको की योग्यता और अनुभव का भी शिक्षक महाविद्यालयों के संगठन और स्तर पर बहुत प्रभाव पड़ता है। योग्यता की दृष्टि से प्रशिक्षकों मे बहुत विभिन्नता है। १६८३ शिक्षक-प्रशिक्षकों के उपलब्ध आँकड़ों को ध्यान में रखा जाए तो ज्ञात होता है कि इनमे से ८६ पीएच. डी. हैं, ५३५ के पास एम. ए. एम. एड. की डिग्रियाँ हैं, ६६२ एम. ए. बी. एड. है, १२६ बी. ए, बी. एड. है, २१३ बी. ए. बी. एड. शारीरिक शिक्षा डिग्री प्राप्त है, और २१३ केवल एम. ए. हैं।

पीएच. डी. योग्यता वाले शिक्षक-प्रशिक्षक अधिकांशतः (२·४१%) विश्वविद्यालयों में है, २% गैर सरकारी शिक्षक महाविद्यालयों में, और ०·६५% सरकारी शिक्षा महाविद्यालयों में कार्य करते हैं। विश्वविद्यालय और गैर सरकारी संस्थाओं में अधिक योग्यता वाले शिक्षक-प्रशिक्षक कार्य करते हैं। गैर सरकारी संस्थाओं में १६.६८ प्रतिशत प्रशिक्षक एम. ए. एम. एड. हैं। ६·११ प्रतिशत बी. ए. एम. एड. और २१.४६ प्रतिशत एम. ए. बी. एड. है।

शिक्षक महाविद्यालयों में प्रशिक्षकों के कार्यभार को चार भागों में विभाजित किया जा सकता है—कक्षाध्यापन, पर्यवेक्षण कार्य, शोधकार्य में मार्गदर्शन और किसी अन्वेषण कार्य का उत्तरदायित्व। विभिन्न प्रकार की संस्थाओं मे प्रशिक्षकों पर कार्यभार में भिन्नता है। अखिल भारतीय आँकड़ों को ध्यान में रखते हुए माध्यमिक शिक्षक संस्थाओं में कक्षाध्यापन का भार २ से १८ घटे प्रति सप्ताह है। विश्वविद्यालयों एवं स्नातकोत्तर शिक्षक महाविद्यालयों में प्रोफेसर, रीडर और वरिष्ठ प्राध्यापकों के ऊपर शोध करने

वाले विद्यार्थियों को मार्गदर्शन का कार्य भी है। इसी प्रकार इन संस्थाओं में प्रोफेसर और रीडर्स संस्था अथवा व्यक्तिगत शोध प्रोजेक्ट पर भी कार्य करते हैं।

विगत वर्षों में शिक्षक महाविद्यालयों में विद्यार्थियों की सख्या में वृद्धि हुई है। सन् १९६४–६५ में २५,२६४ विद्यार्थी प्रशिक्षण प्राप्त कर रहे थे। इसी वर्ष के आँकड़ों के अनुसार सामाजिक विषयों (इतिहास, भूगोल, नागरिक शास्त्र एव अर्थशास्त्र) में सबसे अधिक (१३५२६) विद्यार्थी उत्तीर्ण हुए, इसके बाद भाषा का दूसरा स्थान है, (९०४०) अंग्रेजी (८३४१), विज्ञान विषयों का तृतीय स्थान है (४१३८), वाणिज्य, ललित कलाओं मे विद्यार्थियों की संख्या क्रमशः १९२ और १५० क्रमशः थी।

माध्यमिक शिक्षक-प्रशिक्षण संस्थाओं में अवरोधन और अपव्यय की समस्या है। इस समस्या की जानकारी भावी कार्यक्रम के गठन से पूर्व आवश्यक है। सन् १९६३–६४ और १९६४–६५ के उपलब्ध आँकड़ों के आधार पर यह तथ्य सामने आता है कि शिक्षक महाविद्यालयों में अवरोधन की वृद्धि हुई है। सन् १९६३–६४ में ३ प्रतिशत विद्यार्थियों ने पढ़ाई छोड़ी थी जब कि १९६४–६५ में यह प्रतिशत बढकर ४ हो गया। दूसरी समस्या अपव्यय की है। सन १९६३-६४ में ११ प्रतिशत अनुत्तीर्ण हुए, और १९६४–६५ में अनुत्तीर्ण विद्यार्थियों का प्रतिशत १२ था। इस प्रकार अपव्यय और अवरोधन की समस्या शिक्षक-प्रशिक्षण के क्षेत्र में कम नहीं है। दोनों प्रकार के अपव्यय से मानव शक्ति और भौतिक साधनों का क्षय होता है। इस समस्या का निराकरण सुनियोजित शिक्षक प्रशिक्षण कार्यक्रम के अन्तर्गत किया जाना चाहिए।

शिक्षक महाविद्यालयों में प्रवेश प्राप्त करने वाले प्रशिक्षार्थियों की योग्यता के सम्बन्ध में कुछ सर्वेक्षण किये गए हैं। उनसे ज्ञात होता है कि प्रवेश प्राप्त करने वालों मे अधिक संख्या तृतीय श्रेणी वाले स्नातकों की है। इलाहाबाद विश्वविद्यालय के एक अध्ययन के अनुसार यह स्पष्ट होता है कि शिक्षक महाविद्यालयों में प्रवेश प्राप्त करने वाले प्रशिक्षार्थियों का शैक्षिक स्तर निम्न है, इनमें से २/३ प्रशिक्षार्थी तृतीय श्रेणी में उत्तीर्ण हुए हैं। इसी प्रकार शिक्षक महाविद्यालय फगवाड़ा (पंजाब) के एक अध्ययन के अनुसार शिक्षक महाविद्यालय में प्रशिक्षार्थियों का शैक्षिक स्तर अग्रलिखित तालिका से स्पष्ट होता है।

तालिका
बी एड. प्रशिक्षार्थियों की योग्यता

डिग्री	प्रथम कक्षा	द्वितीय कक्षा	तृतीय कक्षा
एम. ए.	०.०	२.०	६.०
एम. एससी.	०.०	०.०	० ०
बी. ए.	०.७	८.३	६२.८
बी. एमसी.	०.०	३.२	उल्लेख नही किया गया

महाराष्ट्र के एक शिक्षक महाविद्यालय के अध्ययन से भी स्पष्ट होता है कि—

१–पिछले चार वर्षों से एक भी एम. एससी. ने प्रवेश प्राप्त नही किया है।
२–२६६ प्रशिक्षार्थियों मे से केवल छः एम ए. थ, उनमे से केवल एक द्वितीय श्रेणी मे उत्तीर्ण हुआ था।
३–लगभग २१० ग्रेज्युगट 'पास' श्रेणी के थे।

शिक्षक महाविद्यालयों का न्यूनतम अपेक्षाएं

उपर्युक्त विवरण से वर्तमान शिक्षक महाविद्यालयों के गठनात्मक पहलुओं का दिग्दर्शन होता है। कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि शिक्षक महाविद्यालयों की स्थिति बहुत सन्तोषजनक नहीं है। कुछ सीमित संख्या वाले शिक्षक महाविद्यालय, मानवीय और भौतिक साधनों से सम्पन्न होने का गौरव रखते है किन्तु अधिकांश संस्थाएँ अनेक अभावों से ग्रस्त हैं। उनमें न्यूनतम भौतिक साधन भी नहीं है—भवन अपर्याप्त है, शिक्षकों का अभाव है, आर्थिक दृष्टि से हीन अवस्था है और कार्य करने की कोई स्वतन्त्रता नहीं है। ऐसे शिक्षक महाविद्यालय अपने उत्तरदायित्वों को वहन करने में असमर्थ रहते हैं जिससे शैक्षिक स्तर गिरते जाते हैं। इन संस्थाओं द्वारा तैयार किये गये शिक्षकों से शालाओं की शिक्षा मे गिरावट आती है। अतः अच्छे शिक्षकों को तैयार करने के लिए अच्छे शिक्षक महाविद्यालय होने चाहिए। एक अच्छे शिक्षक महाविद्यालय की कुछ अपेक्षित न्यूनतम आवश्यकताएँ है जिनको सरकार अथवा गैर सरकारी एजेन्सी को पूर्ण करना चाहिए। बिना न्यूनतम भवन, श्रव्य-दृश्य सामग्री, पुस्तकालय, आर्थिक अनुदान आदि के कोई भी शिक्षक महाविद्यालय सफलतापूर्वक काम नही कर सकता।

अब इस बात का अध्ययन यहाँ किया जायेगा कि एक शिक्षक महाविद्यालय की न्यूनतम अपेक्षित आवश्यकताएँ कौन सी हैं ? इस दृष्टि से राजस्थान विश्वविद्यालय ने एक न्यूनतम सूची शिक्षक महाविद्यालय के लिए निर्धारित कर दी है। इस सूची के अनुसार एक शिक्षक महाविद्यालय में, जिसमें १०० बी. एड. प्रशिक्षार्थी हों और १० से १५ एम. एड. विद्यार्थी हों, निम्नलिखित साधनों का होना अनिवार्य है :—

शिक्षक वृन्द—प्रधानाचार्य—१
प्रोफेसर —३
प्राध्यापक ७

इनके अतिरिक्त शारीरिक शिक्षा और दस्तकारी के अध्यापकों की नियुक्ति होनी चाहिए। सामान्यतः शिक्षक और प्रशिक्षार्थी का अनुपात १ : १० होना चाहिए। इस अनुपात में प्रधानाचार्य, दस्तकारी और शारीरिक शिक्षा के अध्यापक को शामिल नहीं किया जाता है। प्राध्यापकों की इस सख्या को न्यूनतम मानना चाहिए।

प्राध्यापकों की योग्यता के लिए एम. ए., एम. एससी. और एम. एड. न्यूनतम निर्धारित किया जाना चाहिए। एम. ए. और एम. एड. की परीक्षाएँ कम से कम द्वितीय श्रेणी में उत्तीर्ण की होनी चाहिए।

विश्वविद्यालय ने सिफारिश की है कि एम. एड. कक्षा में १५ विद्यार्थी से अधिक नही होने चाहिए जिससे कि अध्ययन का स्तर ऊँचा रखा जा सके।

भवन :—विश्वविद्यालय ने एक शिक्षक महाविद्यालय के लिए निम्नलिखित प्रकार के भवन की न्यूनतम अपेक्षा की है:—

(१) एक बड़ा हाल (२,४०० वर्ग फीट), (२) कम से कम दस विषय कक्ष, (३) मनोविज्ञान प्रयोगशाला—६०० वर्ग फीट, (४) विज्ञान प्रयोगशाला १००० वर्ग फीट (५) कार्यशाला ४०० वर्ग फीट, (६) कला और ललित कला कक्ष ४०० वर्ग फीट, (७) शिक्षक कक्ष, (८) छात्राओ के लिए एक पृथक् कमरा, (९) पुस्तकालय—१५०० वर्ग फीट, (१०) खेल के मैदान, (११) छात्रावास।

सामग्री :—भवन के अतिरिक्त विभिन्न प्रयोगशालाओं की साज-सज्जा के लिए सामग्री चाहिए। श्रव्य-दृश्य सामग्री प्रचुर मात्रा में उपलब्ध कराई जाए, क्योंकि इसका शिक्षक महाविद्यालयों में बहुत महत्त्व है। सामग्री के खरीदने और उनको ठीक प्रकार से रखने के लिए धन का प्रावधान किया

जाना चाहिए। लगभग ५ से १० प्रतिशत धन प्रत्येक वर्ष सामग्री की मरम्मत और रक्षा के लिए रखा जाए। इस दृष्टि से सामान की एक सूची प्रस्तावित की गई है—

मद	लागत मूल्य	आवर्तक व्यय (वार्षिक)
१ मनोविज्ञान प्रयोगशाला	५,०००	५००
२. विज्ञान प्रयोगशाला	८०००	१०००
३. कला और दस्तकारी विभाग	५,०००	१०००
४. श्रव्य-दृश्य सामग्री	८,०००	५००
५. खेल की सामग्री	१,०००	५००

पुस्तकालय—एक शिक्षक महाविद्यालय में एक पुस्तकालय का होना आवश्यक है। पुस्तकों के अतिरिक्त पत्र-पत्रिकाओं की प्रचुरता भी होनी चाहिए। यह सुझाव दिया गया है कि एक बी. एड. महाविद्यालय में ३००० पुस्तकें होनी चाहिए। इसके लिए लगभग १०,००० रुपये का प्रावधान किया जाना चाहिए। यदि एम. एड. कक्षाएँ हो तो ५०० अतिरिक्त पुस्तकें होनी आवश्यक है। महाविद्यालय को प्रत्येक वर्ष ५ ००० रुपया पुस्तकालय में पुस्तकों एव पत्र-पत्रिकाओं के लिए व्यय करना चाहिए। एम. एड. कक्षाएँ होने पर प्रतिवर्ष ५०० रुपया अधिक पत्र-पत्रिकाओं पर खर्च करना चाहिए।

प्रायोगिक स्कूल—एक शिक्षक महाविद्यालय के साथ एक माध्यमिक अथवा उच्च माध्यमिक स्कूल संयुक्त होना चाहिए। इस स्कूल का प्रशासनिक एवं आर्थिक नियन्त्रण महाविद्यालय के प्रधानाचार्य का होना चाहिए। इस शाला में प्रशिक्षक और प्रशिक्षार्थी अपने नवीन विचारों और प्रयोगों का परीक्षण करें। इनमें निदर्शन पाठों का आयोजन किया जाए। प्रशिक्षार्थियों के लिए इस स्कूल को एक प्रयोगशाला के रूप में कार्य करना चाहिए।

राजस्थान विश्वविद्यालय द्वारा प्रस्तावित साज-सामान की सूची के अतिरिक्त शिक्षक महाविद्यालयों में दो अन्य बातों की ओर विशेष ध्यान देना चाहिए। अब शिक्षक महाविद्यालयों में अन्तः सेवाकालीन प्रशिक्षण का उत्तरदायित्व बढ़ गया है। अतः इनमें सेवा-प्रसार विभाग की स्थापना के लिए सुविधाएँ प्रदान करनी चाहिए। एक सेवा-प्रसार विभाग के लिए एक समन्वयक की नियुक्ति होनी चाहिए और इसके लिए औसतन २०,००० रुपए के वार्षिक अनुदान का प्रावधान होना चाहिए। एक शिक्षक महाविद्यालय में दूसरा महत्त्वपूर्ण कक्ष श्रव्य-दृश्य विभाग है। जिस प्रकार प्रशिक्षार्थियों के लिए

एक पुस्तकालय अत्यावश्यक है उसी प्रकार एक सम्पन्न श्रव्य–दृश्य विभाग भी अनिवार्य है। इह विभाग में प्रचुर मात्रा में चार्ट, माडल, ग्राफ, चित्र, नक्शे आदि का संकलन होना चाहिए ताकि प्रशिक्षार्थी अध्यापन अभ्यास में इनका प्रयोग कर सकें। इनके अतिरिक्त आधुनिक उपकरण यथा टेप रिकार्ड, फिल्म प्रोजेक्टर, टेलीविजन सेट आदि भी उपलब्ध कराये जाएँ। इन उपकरणों से शिक्षण–विधियों में परिवर्तन आयेगा।

राज्य और राष्ट्रीय स्तर पर संगठनात्मक सुझाव

एक शिक्षक महाविद्यालय के सुप्रबन्ध के लिए साज-सज्जा और सामग्री की आवश्यकता होती है। उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट हुआ है कि एक शिक्षक महाविद्यालय को किन न्यूनतम साधनों की आवश्यकता है। इन साधनों को जुटाना सरकार अथवा संस्था की गैर-सरकारी प्रबन्ध समितियों का उत्तर-दायित्व है। इन साधनों के प्रचुर मात्रा में उपलब्ध होने से संस्था की कार्य-क्षमता में वृद्धि होती है। अतः प्रबन्धक को इन उपकरणों का सचय करना सस्था की कार्यकुशलता की वृद्धि करने के लिए आवश्यक है। पिछले पृष्ठों में शिक्षक महाविद्यालयों की वर्तमान स्थिति के विवेचन से दो समस्याएँ सामने आती है। पहली समस्या तो यह है कि एक शिक्षक महाविद्यालय का आकार क्या होना चाहिए? क्योकि कुछ सस्थाएँ इतनी छोटी है कि उनका संचालन मितव्ययी नहीं होता, अतः इस समस्या के निराकरण करने के लिए एक शिक्षक महाविद्यालय का न्यूनतम आकार निर्धारित किया जाना चाहिए।

दूसरी समस्या शिक्षक महाविद्यालयों के नियन्त्रण की है। इनका नियन्त्रण विभिन्न एजेन्सियों के पास है। पाठ्यक्रम परीक्षा एव डिग्री की दृष्टि से वे विश्वविद्यालयों के अधीन है। लेकिन उत्तरप्रदेश में एल. टी. का डिप्लोमा अभी राज्य शिक्षा विभाग द्वारा दिया जाता है। एल. टी पाठ्यक्रम और परीक्षाएँ शिक्षा विभाग द्वारा सचालित होती है। शिक्षक महाविद्यालयों को आर्थिक अनुदान की दृष्टि से निदेशक, प्राथमिक एवं माध्यमिक शिक्षा अथवा निदेशक उच्च शिक्षा पर निर्भर रहना पड़ता है। एक ओर पाठ्यक्रम, परीक्षाएँ तथा अन्य शैक्षिक विषयों पर शिक्षक महाविद्यालय विश्वविद्यालयों से सयुक्त हैं, दूसरी ओर शिक्षकों के वेतन, दैनिक व्यय या अन्य शैक्षिक योजनाओं की आर्थिक स्वीकृति के लिए इनको शिक्षा विभाग पर निर्भर रहना पड़ता है। अर्थ के सम्बन्ध में विश्वविद्यालयों की कोई राय नही होती है।

विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की अनेक आर्थिक सहायक योजनाओं का शिक्षक महाविद्यालय, जो विश्वविद्यालय के शिक्षा संकाय या विभाग नहीं हैं, लाभ नहीं उठा पाते हैं क्योंकि विश्वविद्यालय इन सरकारी अथवा गैर सरकारी शिक्षक संस्थाओं को सामान्यत: आर्थिक सहायता का वचन नहीं दे पाते हैं। इस प्रकार प्रबन्ध और सगठनात्मक दृष्टि से शिक्षक महाविद्यालयों की स्थिति दुविधापूर्ण है। अतः इस समस्या के समाधान के लिए निम्नलिखित सुझावों पर विचार किया जाएगा—

आकार—साधारणतया हमारे देश मे शिक्षक महाविद्यालयों का आकार छोटा है। कुछ महाविद्यालयों में ७०, ९०, १०० अथवा इस संख्या के आस-पास प्रशिक्षणार्थी अध्ययन करते है। औसतन एक महाविद्यालय में ९० प्रशिक्षार्थी होते है। शिक्षक महाविद्यालयों के छोटे आकार के फलस्वरूप प्रति छात्र लागत व्यय बहुत बढ़ जाता है। इन छोटे आकार के महाविद्यालयों में धनाभाव के कारण विकास कार्यक्रम हाथ मे नहीं लिए जा सकते हैं क्योंकि इनमें शिक्षक प्रशिक्षकों की संख्या सीमित होती है और सामग्री का अभाव रहता है। इस दृष्टि से इगलैण्ड मे मेकनायर समिति ने सुझाव दिया है कि एक शिक्षक महाविद्यालय की कार्यक्षमता बढाने की दृष्टि से कम से कम २०० प्रशिक्षार्थी होने चाहिए। भारत के शिक्षा आयोग (१९६४–६६) ने भी सुझाव दिया है कि अल्प व्यय और कुशलता, दोनों ही दृष्टियों से यह आवश्यक होगा कि प्रशिक्षण संस्थाएँ काफी बडी हों। प्राथमिक स्तर के लिए दो वर्ष की अवधि के पाठ्यक्रम की व्यवस्था करने वाली संस्थाओं की छात्रसंख्या २०० होनी चाहिए। विद्यमान संस्थाओ की छात्र-सख्या इतनी करने के लिए लगभग पाँच वर्ष का एक कार्यक्रम बनाना चाहिए जिसके अनुसार या तो उनका विस्तार किया जाये या एकाधिक सस्थाओं को मिलाकर बड़ा आकार दिया जाए। जो नई संस्थाएँ स्थापित की जाएँ उनकी छात्रसंख्या ४०० से कम न रखी जाए।

छोटे आकार की समस्या का एक हल सर्वांगीण शिक्षक महाविद्यालय की स्थापना से हो सकता है। यह सुझाव सर्वप्रथम कॉप (copp) समिति ने दिया था। इस समिति ने लिखा है कि सयुक्त राज्य अमेरिका और रूस मे बड़े-बड़े शिक्षक महाविद्यालयों की स्थापना की जाती है, इनके आकार के अनुसार इनको अध्यापन अभ्यास के लिए शालाओं की सुविधा दी जाती है अन्य भारतीय शिक्षाशास्त्रियों और अखिल भारतीय शिक्षक प्रशिक्षक

संघ ने भी सर्वांगीण शिक्षक प्रशिक्षक महाविद्यालयों की स्थापना के विचार का अनुमोदन किया है। इस प्रकार के सर्वांगीण शिक्षक महाविद्यालयों से निम्नलिखित लाभों की कल्पना की गई है—

(१) इनसे भौतिक साधनों का अधिकतम उपयोग होगा, क्योंकि विज्ञान और मनोविज्ञान प्रयोगशालाओं, पुस्तकालय, खेल के मैदान आदि का इस्तेमाल अधिक विद्यार्थी करेंगे। इससे शिक्षण-प्रशिक्षण अधिक मितव्ययी होगा।

(२) इन महाविद्यालयों में प्राथमिक, माध्यमिक शालाओं के कला, विज्ञान, गृह विज्ञान, दस्तकारी, शारीरिक शिक्षा के शिक्षकों को एकत्रित होने का अवसर मिलेगा। इससे इन संस्थाओं का शैक्षिक वातावरण अधिक सम्पन्न होगा।

(३) शिक्षक-प्रशिक्षण में वर्ग-भेद का अन्त हो सकेगा। स्नातकोत्तर से पूर्व-प्राथमिक स्तर तक की कक्षाओं मे समन्वय हो सकेगा।

(४) इन महाविद्यालयों में अध्यापकों की सेवाओं का अधिकतम उपयोग होगा। पूर्व-प्राथमिक अथवा प्राथमिक शिक्षकों को अधिक योग्य और अनुभवी प्राध्यापकों के ज्ञान का लाभ मिल सकेगा।

(५) इन सर्वांगीण शिक्षक महाविद्यालयों में पूर्व-प्राथमिक, प्राथमिक, माध्यमिक, स्नातकोत्तर और शोध की कक्षाओं को पढ़ाने के बाद अध्यापकों को विभिन्न स्तर की समस्याओं को जानने का अवसर मिल सकेगा और वे इन समस्याओ पर शोधकार्य कर सकेंगे।

इन सर्वांगीण शिक्षक महाविद्यालयों का गठन स्थानीय आवश्यकतानुसार विभिन्न प्रकार से किया जाता है। एक शिक्षक महाविद्यालय में एकवर्षीय बी. एड., चारवर्षीय बी. एड. पूर्व-प्राथमिक, प्राथमिक शिक्षक प्रशिक्षण पाठ्यक्रम एम. एड. अथवा पीएच. डी. स्तर की कक्षाएं आयोजित की जा सकती है, और विभिन्न कक्षाओं के लिए प्रशिक्षार्थियों की संख्या सीमित की जा सकती है। अधिक से अधिक एक शिक्षक महाविद्यालय में ४०० विद्यार्थी हो सकते हैं। सर्वांगीण शिक्षक महाविद्यालय केवल एक ही प्रकार के न हों बल्कि उनमें विविधता होनी चाहिए। अतः निम्नलिखित तीन वर्ग की सर्वांगीण संस्थाएँ हो सकती हैं—

१—अ वर्ग—इस प्रकार के महाविद्यालय में २०० विद्यार्थियों के लिए एकवर्षीय बी. एड. और १०० प्राथमिक शालाओं के शिक्षकों का प्रशिक्षण कार्य चलाया जाए,

२–ब वर्ग—इस प्रकार की संस्थाओं में तीन प्रकार के प्रशिक्षण कार्यक्रम चलाये जाएँ और इसमें बी. एड. तथा प्राथमिक के २०० विद्यार्थियों और १५० चारवर्षीय बी. एड. पाठ्यक्रम के विद्यार्थियों को प्रवेश दिया जाए।

३–स वर्ग—इस प्रकार के महाविद्यालय में एकवर्षीय बी. एड. तथा प्राथमिक शिक्षक-प्रशिक्षण के २०० छात्राध्यापक और १५० स्नातकोत्तर पीएच. डी. तथा अन्य प्रकार के विशेष प्रशिक्षण पाठ्यक्रम के विद्यार्थी हो सकते हैं। बी. एड. और प्राथमिक शिक्षक-प्रशिक्षण के अतिरिक्त निम्न प्रकार के पाठ्यक्रमों मे विद्यार्थियों को प्रवेश दिया जाना चाहिए।

पाठ्यक्रम	विद्यार्थी संख्या
पीएच० डी०	२५
पोस्टग्रेजुएट डिप्लोमा फॉर टीचर एज्यूकेटर्स ऑफ प्राइमरी संस्था	३०
एम० एड०	४०
मार्गदर्शन, शिक्षा प्रशासन, विशेष शिक्षा आदि के डिप्लोमा पाठ्यक्रम	३०

भवन—सर्वांगीण शिक्षक महाविद्यालय के लिए भवन और प्राध्यापको का प्रावधान किया जाना चाहिए। इसमें १५० छात्रों और ५० छात्राओं के लिए छात्रावास की व्यवस्था होनी चाहिए। इनके साथ एक माध्यमिक विद्यालय संयुक्त किया जाना चाहिए, एक पूर्व-प्राथमिक विभाग होना चाहिए जिसमें तीन खेलने के कक्ष, एक शयन कक्ष, एक खेल का मैदान, एक भोजन करने का कमरा, एक कपड़ रखने के कमरे का प्रावधान किया जाना चाहिए।

सर्वांगीण शिक्षक महाविद्यालय मे उतने ही प्राध्यापकों की नियुक्ति की आवश्यकता है जितनी कि एक सामान्य शिक्षक महाविद्यालय में लगभग १२ प्राध्यापक कार्यभार को उठा सकते है। कक्षाध्यापन की दृष्टि से एक प्राध्यापक को सप्ताह में केवल बारह कालांश कार्य करना पड़ेगा। अध्यापनाभ्यास कार्यक्रम में प्राध्यापकों की सहायता संयुक्त शाला के सहयोगी शिक्षक करेंगे। इनके अतिरिक्त शारीरिक शिक्षा, संगीत और कला के शिक्षक भी होने चाहिए। सर्वांगीण शिक्षक महाविद्यालयों में अध्यापक और प्रशिक्षार्थी का अनुपात १ : २० माना गया है।

नियंत्रण

शिक्षक महाविद्यालयों के संगठन की दृष्टि से दूसरी समस्या यह है कि इन पर नियंत्रण किस का हो ? विश्वविद्यालय, प्रदेश शिक्षा विभाग, अथवा विश्वविद्यालय अनुदान आयोग इन महाविद्यालयों के प्रबन्ध में किस-किस सीमा तक मदद दे सकते हैं ? इन प्रश्नों के उत्तर में अनेक मत हैं। शिक्षा आयोग (१९६४–६६) ने इस समस्या के हल के लिए निम्नलिखित विशद सुझाव दिए हैं—

शिक्षा आयोग ने सिफारिश की है कि चौथी पंचवर्षीय योजना में अध्यापक–शिक्षा के लिए यथेष्ट वित्त–विनिधान किया जाना चाहिए और इस धन की राशि को विश्वविद्यालय अनुदान आयोग को सौंप दिया जाना चाहिए। भावी आयोजनाओं में इस प्रकार की राशि का विनिधान जारी तो रखना ही होगा, साथ ही बढ़ाना भी पड़ेगा।

इस दायित्व का समुचित पालन करने के लिए विश्वविद्यालय अनुदान आयोग को राष्ट्रीय शिक्षा, अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद् के सहयोग से, एक सम्मिलित स्थायी अध्यापक शिक्षा समिति बनानी चाहिए। इस समिति के सदस्य निम्नलिखित होने चाहिए—

(१) विश्वविद्यालय अनुदान आयोग और राष्ट्रीय शिक्षा, अनुदान एवं प्रशिक्षण परिषद् के प्रतिनिधि,

(२) विश्वविद्यालयों के प्रतिनिधि,

(३) राज्य अध्यापक शिक्षक मडलों के प्रतिनिधि बारी-बारी से,

(४) स्कूल अध्यापक जिनमें से कम से कम एक प्राथमिक अध्यापक हो,

(५) अध्यापकों के संगठनों के प्रतिनिधि,

(६) शिक्षाविद् और

(७) राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षक संघ का एक प्रतिनिधि।

अध्यापक शिक्षण की स्थायी समिति के पास अध्यापक शिक्षा के सभी पहलुओं, जैसे पूर्व-स्नातक और स्नातकोत्तर दोनों ही स्तरों को सामान्य शिक्षा या वृत्तिक शिक्षा का काम होना चाहिए। इसके पास निम्नलिखित कामों को करने की शक्ति भी होनी चाहिये–

(१) प्रशिक्षण-संस्थानों और विश्वविद्यालय विभागों के स्तरों को उन्नत और निर्धारित करना, (२) अध्यापक शिक्षा के सभी स्तरों को सुधारना और उनमें समन्वय करना, (३) सभी प्रकार के अध्यापक शिक्षण संस्थाओं के

कार्यक्रमों, पाठ्यपुस्तकों, अध्यापकों की योग्यता आदि के विषय में विश्वविद्यालयों तथा राज्य शिक्षा विभागों को परामर्श देना, (४) विश्वविद्यालयों के अन्तर्गत शिक्षा संकायों या विभागों के लिए अर्थराशि मंजूर करना, (५) विश्वविद्यालय के शिक्षा संकायों या विभागों और प्रशिक्षणालयों में आवधिक निरीक्षणों की व्यवस्था करना, और (६) विश्वविद्यालयों तथा राज्य शिक्षा विभागों के सहयोग से शिक्षकों के लिए अन्तःसेवा ज्ञान-संवर्धन कार्यक्रमों को विकसित करना और आर्थिक सुविधा-सम्पन्न बनाना ताकि अध्यापकों के विषयवस्तु ज्ञान, वृत्तिक योग्यता और कुशलता में वृद्धि हो सके।

शिक्षा आयोग ने इन कार्यक्रमों के अतिरिक्त भारत सरकार को केन्द्र प्रेरित क्षेत्र के लिए भी उदारतापूर्वक वित्त व्यवस्था करने की सिफारिश की ताकि राज्य सरकारें अध्यापक-शिक्षण को विकसित कर सकें। प्राथमिक अध्यापकों को प्रशिक्षण शालाओं के सुधार का कार्यक्रम बनाना, अन्तःसेवा शिक्षा की व्यवस्था करना और बड़ी-बड़ी प्रशिक्षण शालाएँ स्थापित करना आदि कुछ ऐसे विशेष कार्यक्रम हैं जिन पर जोर देने की आवश्यकता है।

अखिल भारतीय शिक्षक प्रशिक्षक संघ ने सुझाव दिया है कि प्रत्येक प्रदेश में 'स्टेट काउन्सिल फ़ॉर टीचर एज्यूकेशन' का संगठन किया जाना चाहिए। इस काउन्सिल का उद्देश्य प्रदेश में शिक्षक प्रशिक्षण संस्थाओं के लिए योजनाएँ तैयार करना, वित्त की व्यवस्था करना और पूर्व सेवाकालीन और अन्तःसेवा प्रशिक्षण के स्तर को उन्नत करना होगा। इस काउन्सिल में निम्नलिखित सदस्य मनोनीत किए जाने चाहिए—

१–प्रदेश के सब विश्वविद्यालयों के एक–एक प्रतिनिधि।
२–प्रदेश के राज्य शिक्षा संस्थाओं के प्रतिनिधि।
३–प्रदेश के शिक्षक संघों के प्रतिनिधि।
४–शालाओं के प्रधानध्यापकों के प्रतिनिधि।
५–शिक्षा विभाग के अधिकारी और।
६–शिक्षाविद्।

शिक्षा विभाग को इस काउन्सिल की शिक्षक-प्रशिक्षण की योजना बनाने, संस्थाओं के लिए आर्थिक अनुदान की नीति तैयार करने, शिक्षण संस्थाओं के विस्तार की नीति बनाने और इनको मान्यता देने आदि विषयों पर राय लेनी

राज्य सरकार एवं केन्द्र सरकार को इस काउन्सिल को आर्थिक अनुदान देना चाहिए।

बहुत से लोग इस प्रकार की पृथक् काउन्सिल बनाने के पक्ष में नहीं हैं। उनका मत है कि इस प्रकार के अनेक भिन्न भिन्न संगठन स्थापित करने से समन्वय की मूल समस्या समाप्त नहीं होती है, क्योंकि शिक्षा विभाग, विश्व विद्यालय, राज्य सरकार, विश्वविद्यालय अनुदान आयोग तो पृथक पृथक कार्य करेंगे। काउन्सिल से एक संस्था मात्र ही बढ़ेगी, क्योंकि इनको इन विभिन्न संस्थाओं पर ही अपने कार्य के लिए निर्भर रहना पड़ेगा। अतः उचित यह होगा कि वर्तमान संस्थाओं में से किसी एक संस्था को शिक्षक-प्रशिक्षण का उत्तरदायित्व दे देना चाहिए। इस दृष्टि से प्रदेश के विश्वविद्यालय ही ऐसी संस्थाएँ हैं जिनको शिक्षक-प्रशिक्षण के संगठन का उत्तरदायित्व सौंप दिया जाना चाहिए। इसी प्रकार का सुझाव कॉप समिति (Copp) ने भी दिया था। इस समिति ने यह प्रस्ताव किया कि इगलैण्ड की एरिया ट्रेनिंग आर्गेनाइजेशन के समान भारतीय विश्वविद्यालयों को भी शिक्षक-प्रशिक्षण संस्थाओं पर नियन्त्रण करना चाहिए। इंगलैण्ड में मेकनायर समिति ने एरिया ट्रेनिंग आरगेनाइजेशन को विश्वविद्यालयों की स्थापना के लिए सिफारिश की थी जिससे शिक्षक-प्रशिक्षण कार्यक्रम का विश्वविद्यालयों से सीधा सम्पर्क हो सके। इस सुझाव के अन्तर्गत विश्वविद्यालय संगठन में निम्नलिखित परिवर्तन अपेक्षित माने गए हैं :—

१. प्रत्येक विश्वविद्यालय में शिक्षक प्रशिक्षण विभाग (स्कूल) खोले जाएँ, किसी-किसी विश्वविद्यालय में आवश्यकतानुसार एक से अधिक विभाग (स्कूल) भी हो सकते हैं;

२. प्रत्येक विश्वविद्यालयीय शिक्षक प्रशिक्षण विभाग (स्कूल) से सम्बन्धित अन्य शिक्षक-प्रशिक्षण संस्थाएँ होंगी जो अन्य मान्यता प्राप्त शिक्षक प्रशिक्षण संस्थाओं को सहयोग प्रदान करेंगी, और

३. प्रत्येक विश्वविद्यालयीय शिक्षक प्रशिक्षण विभाग (स्कूल) को सम्बन्धित शिक्षक संस्थाओं के विद्यार्थियों के प्रशिक्षण और मूल्यांकन कार्य को करना पड़ेगा। वर्तमान समय में इंगलैण्ड को सत्रह क्षेत्रों विभाजित किया गया है और प्रत्येक क्षेत्र में एक 'एरिया ट्रेनिग आरगेनाइजेशन' विद्यमान है। प्रत्येक क्षेत्रीय आरगेनाइजेशन के अन्तर्गत उस क्षेत्र की सभी शिक्षक प्रशिक्षण संस्थाएँ कार्य करती हैं। इसका प्रत्यक्ष सम्बन्ध विश्वविद्यालय, शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालयों, शिक्षकों, स्थानीय शिक्षा समितियों एवं

शिक्षा मन्त्रालय से होता है। इस आरगेनाइजेशन के प्रमुख कार्य हैं—विश्वविद्यालय की ओर से सम्बन्धित संस्थाओं के शैक्षिक एवं व्यावसायिक कार्यों का पर्यवेक्षण करना। प्रत्येक क्षेत्र में एक इंस्टीट्यूट ऑफ एज्यूकेशन होता है जो इस एरिया ट्रेनिंग आरगेनाइजेशन को परामर्श देता है और निर्धारित नीति और कार्य का संचालन करता है। इंस्टीट्यूट ऑफ एज्यूकेशन के व्यय को विश्वविद्यालय वहन करता है। इंस्टीट्यूट के निदेशक का पद 'प्रोफेसर' के पद के समकक्ष माना जाता है।

भारतीय प्रदेशों में इसी प्रकार के एरिया ट्रेनिंग आरगेनाइजेशन की सिफारिश की गई है। इस प्रकार के संगठन में अनेक विकल्प हो सकते हैं। एक तरीका तो यह हो सकता है कि प्रदेश के विभिन्न विश्वविद्यालयों के क्षेत्र के लिए एक एरिया ट्रेनिंग आरगेनाइजेशन हो। यह आरगेनाइजेशन अपने क्षेत्र की सभी स्तर की शिक्षक प्रशिक्षण संस्थाओं के शैक्षिक, व्यावसायिक, संगठन, प्रबन्ध एवं आर्थिक हितों का निरीक्षण करे।

दूसरा विकल्प यह हो सकता है कि प्रत्येक प्रदेश में एक 'एरिया ट्रेनिंग आरगेनाइजेशन' होना चाहिए और यह सब विश्वविद्यालयों के शिक्षक-प्रशिक्षण कार्यक्रम का समन्वय करे।

तीसरा विकल्प यह हो सकता है कि एरिया ट्रेनिंग आरगेनाइजेशन एक स्वतन्त्र संस्था के रूप में कार्य करे और शिक्षक-प्रशिक्षण के कार्यक्रम का पर्यवेक्षण एवं निरीक्षण करे।

इस प्रकार शिक्षक-प्रशिक्षण के प्रबन्ध की दृष्टि से कई प्रकार के संगठन हो सकते हैं। एरिया ट्रेनिंग आरगेनाइजेशन के विचार को व्यावहारिक स्वरूप देने की आवश्यकता है। शिक्षक-प्रशिक्षण को विश्वविद्यालयों से संयुक्त कर देने से इनके पाठ्यक्रम, शिक्षण और परीक्षा प्रणाली में अधिक सुधार होने की संभावनाएँ हैं। इस माध्यम से प्राथमिक शिक्षक-प्रशिक्षण भी विश्वविद्यालयों से सम्बन्धित हो जायेगा जिससे इनके स्तर में आशातीत उन्नति हो सकेगी। अतः विश्वविद्यालयों के अन्तर्गत एक इंस्टीट्यूट आफ एज्यूकेशन अथवा शिक्षा विभाग अथवा संकाय के स्वरूप की एक सस्था का गठन किया जाना चाहिए, जो अपने क्षेत्र की सभी प्रकार की शिक्षक प्रशिक्षण संस्थाओं का निरीक्षण एव पर्यवेक्षण करे और शिक्षा विभाग, विश्वविद्यालय अनुदान आयोग, राष्ट्रीय शिक्षा अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद् तथा प्रशिक्षण संस्थाओं में आपस में समन्वय स्थापित करे। ऐसा प्रयोग करने की

आवश्यकता आज बहुत बढ़ गई है, क्योंकि शिक्षण-प्रशिक्षण के संख्यात्मक एवं गुणात्मक विकास की ओर सभी का ध्यान आकर्षित हो गया है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालयों के पुनर्गठन की समस्या महत्त्वपूर्ण है। इन महाविद्यालयों को उचित भवन, पुस्तकालय, श्रव्य-दृश्य सामग्री, छात्रावास आदि भौतिक साधनों की आवश्यकता है। गुणात्मक विकास की दृष्टि से उचित संख्या में सुयोग्य शिक्षक प्रशिक्षकों की अनिवार्यता में कोई संदेह नहीं है। इन भौतिक साधनों को बढ़ाने की दृष्टि से आज यह आवश्यक हो गया है कि शिक्षक महाविद्यालयों में प्रशिक्षार्थियों की संख्या में वृद्धि हो। बड़े आकार की संस्थाएँ होने से साधन सुविधाएँ जुटाना सरल होगा। इस दृष्टि से सर्वांगीण शिक्षक-प्रशिक्षण संस्थाओं के खोलने के प्रयोग भी किये जाने चाहिए, शिक्षक-प्रशिक्षण संस्थाओं के प्रबंध की ओर भी ध्यान दिया जाना चाहिए। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग और प्रदेशों के विश्वविद्यालयों को इन प्रशिक्षण संस्थाओं के कार्य का संचालन स्वयं लेना चाहिए और इनके निरीक्षण, पर्यवेक्षण के उत्तरदायित्व को भी वहन करना चाहिए। इससे शिक्षक-प्रशिक्षण कार्यक्रम में गुणात्मक विकास होने की संभावनाएँ हैं।

१७

प्राथमिक शिक्षक-प्रशिक्षण संस्थाओं का संगठन

पिछले अध्याय में माध्यमिक शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालयों के विभिन्न प्रकार के संगठन के विषयों का अध्ययन किया गया था। इस अध्याय में प्राथमिक स्तर की शिक्षक-प्रशिक्षण संस्थाओं के वर्तमान प्रशासन का अध्ययन किया जाएगा और इस बात पर भी विचार किया जाएगा कि इन संस्थाओं के संगठन और प्रशासन में किस प्रकार का परिवर्तन किया जाए जिससे इनके कार्य करने की पद्धतियों में सुधार लाया जा सके और इनकी कार्यकुशलता में वृद्धि हो सके। अध्ययन की दृष्टि से इस अध्याय को निम्न-लिखित खण्डों में विभाजित किया गया है :—

(१) वर्तमान स्थिति;
(२) नवीन संगठन के लिए कुछ सुझाव।

वर्तमान स्थिति

प्रशासन—शिक्षा राज्य का विषय है। अत: प्रदेश की सरकार शिक्षा सम्बन्धी नीति का निर्धारण करती है, आर्थिक अनुदान देती है और साधन सुविधाएँ उपलब्ध करती है जिससे शिक्षा के लक्ष्यों की प्राप्ति हो सके। प्राथमिक शिक्षा का सम्पूर्ण उत्तरदायित्व प्रदेश सरकार पर है, प्राथमिक शिक्षा के नि:शुल्क और अनिवार्य बनाने के संवैधानिक संकल्प को पूर्ण करने का कार्य प्रदेश सरकार का ही है। प्राथमिक शालाओं के लिए प्रशिक्षित शिक्षकों की पूर्ति करने का भार भी प्रदेश सरकार पर ही है।

राज्य सरकार से सम्बन्ध

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद् ने राष्ट्रीय प्राथमिक शिक्षक-प्रशिक्षण के सर्वेक्षण का प्रतिवेदन सन् १९७० में प्रकाशित किया। इस

सर्वेक्षण के अनुसार देश की १५४८ प्राथमिक शिक्षक प्रशिक्षण शालाओं में से ११६८ प्रशिक्षण शालाओं ने प्रश्नावलियों के उत्तर दिए। उक्त सर्वेक्षण में इन प्रशिक्षण शालाओं के सम्बन्ध में आंकड़े उपलब्ध हैं। इस सर्वेक्षण से यह स्पष्ट होता है कि राजकीय प्रशिक्षण शालाओं की संख्या गैर सरकारी संस्थाओं से अधिक है, निम्नलिखित तालिका के अनुसार प्रबन्ध की दृष्टि से स्थिति इस प्रकार है :—

तालिका

प्रदेश	राजकीय संस्थाओं की संख्या	गैर सरकारी अनुदान प्राप्त संस्थाओं की संख्या	अनुदान प्राप्त न करने वाली गैर सरकारी संस्थाओं की संख्या	योग
आन्ध्र प्रदेश	८०	३३	—	११३
असम	३०	एन. ए.	—	३०
बिहार	—	,,	—	—
गुजरात	३९	३९	—	७८
जम्मू-कश्मीर	१३	—	—	१३
केरल	२७	६५	१	९३
मध्यप्रदेश	९७	१	—	९८
तमिलनाडु	६२	७२	—	१३४
महाराष्ट्र	५८	७७	१	१३६
मैसूर	३८	३३	—	७१
उड़ीसा	५८	—	—	५८
पंजाब	६९	३५	—	१०४
राजस्थान	४८	८	७	६३
उत्तरप्रदेश	१२०	२	३	१२५
पश्चिमी बंगाल	२८	९	—	३७
केन्द्र-शासित प्रदेश	१५	—	—	१५
योग	७८२	३७४	१२	११६८

पीछे दी गई तालिका के अनुसार ६७ प्रतिशत राजकीय संस्थाएँ हैं, ३२ प्रतिशत अनुदान प्राप्त गैर सरकारी संस्थाएँ हैं और एक प्रतिशत गैर सरकारी संस्थाओं को अनुदान प्राप्त नहीं होता है। केरल, महाराष्ट्र एवं तमिलनाडु में गैर सरकारी संस्थाओं की संख्या सबसे अधिक है।

विगत पच्चीस वर्षों में सभी प्रदेशों में प्रशिक्षण शालाओं की संख्या में तीव्र गति से वृद्धि हुई है। प्रथम तीन योजनाओं में प्रशिक्षण शालाओं की संख्या में अधिक वृद्धि हुई है। अधिकांश केन्द्र-शासित प्रदेशों और जम्मू-कश्मीर में शिक्षण प्रशिक्षण शालाएँ सन् १९४७ के पश्चात् खोली गई है। इसी अवधि में लगभग ४३२ प्रशिक्षण शालाओं को बेसिक शिक्षा पद्धति पर परिवर्तित कर दिया गया। तमिलनाडु, मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र, मैसूर और पंजाब में विशेष रूप से प्रशिक्षण शालाओं के संगठन में परिवर्तन करके इन्हें बेसिक शिक्षा पद्धति पर ढाला गया।

देश की प्रशिक्षण शालाएँ ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों में समान अनुपात से बँटी हुई है। ग्रामीण क्षेत्रों में इनका प्रतिशत ५०.८ है और शहरी क्षेत्र में इनका प्रतिशत ४९.३ है। गुजरात (५८.६), तमिलनाडु (७२.४), उड़ीसा (५०.८) और पश्चिमी बंगाल (६०) मे प्रशिक्षण शालाएँ ग्रामीण क्षेत्रों में स्थित है। राजस्थान में शहरों के नजदीक स्थित संस्थाओं का प्रतिशत ४७ हैं, ग्रामीण क्षेत्रों में २७.४ प्रतिशत संस्थाएँ है। सामान्यतः प्रदेश सरकारों की नीति यह है कि प्रशिक्षण शालाएँ ग्रामीण क्षेत्रों में अधिक खोली जाएँ ताकि प्राथमिक शिक्षकों को ग्रामीण जन-जीवन, छात्र-छात्राओं और स्कूलों से प्रत्यक्ष अनुभव प्राप्त हो सके।

राज्य शिक्षा में महिलाओं एवं पुरुषों के लिए प्रशिक्षण सुविधाओं के प्रदान करने की नीति के सम्बन्ध में भी विभिन्नता है। इस समय देश में पुरुषों की संख्याओं का प्रतिशत अधिक है। लगभग ५६.७ प्रतिशत पुरुष संस्थाएँ है जबकि २४ ३ प्रतिशत महिलाओं के लिए प्रशिक्षण शालाएँ हैं। १६ प्रतिशत सह-शिक्षा वाली प्रशिक्षण शालाएँ हैं। केरल एक ऐसा प्रदेश है जिसमे महिला प्रशिक्षण शालाओं का प्रतिशत पुरुष प्रशिक्षण शालाओं से अधिक है।

प्रदेश का शिक्षा विभाग प्राथमिक प्रशिक्षण शालाओं को खोलने की अनुमति देता है, उनको अनुदान देता है, विद्यार्थियों की छात्रवृत्तियाँ स्वीकृत

करता है, पाठ्यचर्या का निर्धारण करता है, पाठ्यपुस्तकें निर्धारित करता है, प्रशिक्षण शालाओं का पर्यवेक्षण करता है तथा परीक्षाएँ आयोजित करके उत्तीर्ण विद्यार्थियों को प्रमाण-पत्र प्रदान करता है। प्रत्येक प्रदेश में प्रशिक्षण शालाओं की कार्य-विधि और प्रशिक्षण प्रणाली अन्य प्रदेशों से कुछ अंशों में विभिन्न पाई जाती है, क्योंकि सब प्रदेशों की शिक्षण-प्रशिक्षण की नीति को निर्धारित करने के लिए कोई एक केन्द्रीय संस्था नहीं है।

राज्य शिक्षा संस्थानों से सम्बन्ध—लगभग सभी प्रदेशों में केन्द्रीय सरकार की सहायता से राज्य शिक्षा संस्थानों की स्थापना हो चुकी है। इनकी स्थापना से प्राथमिक शिक्षक-प्रशिक्षण के क्षेत्र में एक नये अध्याय का शुभारम्भ हुआ है। राज्य शिक्षा संस्थान प्रदेश की प्रशिक्षण शालाओं के गुणात्मक विकास की ओर बहुत ध्यान दे रहा है। यह शिक्षक-प्रशिक्षण के पाठ्यक्रम, अध्यापन अभ्यास की विधियों, परीक्षण प्रणाली तथा अन्य तत्सम्बन्धी साधन-सुविधाओं के उन्नयन के लिए कार्य करता है। प्रशिक्षण शालाओं के शिक्षक प्रशिक्षकों के लिए अन्त:सेवाकालीन प्रशिक्षण की व्यवस्था करता है। ग्रीष्मकालीन शिविर आदि का आयोजन व्यावसायिक स्तर के विकास के लिए करता है।

राज्य शिक्षा संस्थान शिक्षा में होने वाले नवाचार अथवा अभिनव-उपक्रमों का प्रकाशन और प्रसार करता है। आशा है कि शिक्षा संस्थानों के प्रयासों से प्राथमिक प्रशिक्षण शालाओं के स्तर उन्नत हो सकेंगे।

राष्ट्रीय शिक्षा संस्थान से सम्बन्ध—भारत सरकार ने सर्वप्रथम १९५६ में राष्ट्रीय बुनियादी शिक्षा-संस्थान की स्थापना की थी, जिसका उद्देश्य बुनियादी शिक्षा का विकास करना था। इस दृष्टि से इस संस्था का सम्बन्ध विभिन्न देशों की बुनियादी प्राथमिक प्रशिक्षण शालाओं से भी स्थापित हो गया। इस संस्था को राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान प्रशिक्षण परिषद् से संयुक्त कर दिया है। इसके फलस्वरूप इस संस्था के कार्यक्रम में परिवर्तन आया। अब इसके कार्य को राष्ट्रीय शिक्षा संस्थान के दो विभाग, शिक्षक प्रशिक्षण विभाग और पूर्व प्राथमिक एवं प्राथमिक विभाग, करते हैं। राष्ट्रीय शिक्षा संस्थान के ये दोनों विभाग प्राथमिक स्तर की शिक्षक प्रशिक्षण की समस्याओं पर अन्वेषण करते हैं और प्रशिक्षण कार्यक्रम के विकास के लिए नई दिशाएं एवं आयाम निर्धारित करते हैं। प्रदेश के राज्य शिक्षा संस्थान और राष्ट्रीय शिक्षा संस्थान मिल-जुल कर शिक्षक प्रशिक्षण की समस्याओं के समाधान के लिए कार्य करते हैं।

संस्थाओं का आकार—अल्प व्यव और कुशलता दोनों ही दृष्टियों से प्रशिक्षण संस्थाओं का आकार काफी बड़ा होना चाहिए लेकिन वर्तमान उपलब्ध आंकड़ों से ज्ञात होता है कि हमारे देश में कुछ प्राथमिक शालाओं का आकार पर्याप्त है और कुछ संस्थाएं बहुत छोटी है। कॉप (opp) समिति ने १३६ प्रशिक्ष शालाओं के सर्वेक्षण के आधार पर लिखा है कि १८ संस्थाओं में 50 से कम, ५९ संस्थाओं में १०० से कम, १८ संस्थाओं में १५० से कम, 30 संस्थाओं में २०० से कम और केवल १३ संस्थाओं में २०० से ऊपर विद्यार्वी पढ़ते हैं।[1] इन आंकड़ों से विदित होता है कि प्रशिक्षण शालाओं का औसत आकार लगभग १०० का है। इस बात की पुष्टि एक अन्य सर्वेक्षण से हुई है, जिसमें लिखा है कि कुछ संस्थाएं ऐसी है जिनमें केवल २० छात्र है और कुछ सस्थाओं में ३०० विद्यार्थी पढ़ते हैं।[2]

उत्तर प्रदेश और पंजाब में अनेक गैर सरकारी प्रशिक्षण शालाएं एक हाईस्कूल से संयुक्त रहती हैं। अन्य प्रदेशों में अधिकांश प्रशिक्षण शालाएं पवतन्त्र अस्तित्व रखती है। कॉप (Sopp) समिति की राय में हाई स्कूलों से सम्बद्ध प्रशिक्षण शालाएँ अधिक उपयोगी होती हैं क्योंकि इनको हाई स्कूल के अन्म सुयोग्य अध्यापकों की सेवाएँ सरलता से उपलब्ध हो सकती है। अध्यापन अभ्यास के लिए सम्बद्ध हाई स्कूल की कक्षाएं मिल जाती है, और एक विशिष्ट लाभ यह भी है कि अनेकसुयोग्य छात्र हाई स्कूल के अहाते में शिक्षक प्रशिक्षण की सुविधा होने के कारण शाला के विद्यार्थी प्रशिक्षण की ओर आकृष्ट होते हैं।

भवन और अन्य उपकरण—दुर्भाग्य से प्रशिक्षण शालाओं की भवर, साज-सज्जा, प्रयोग शाला अन्य भौतिक सुविधाओं की दृष्टि से स्थिति शोचनीय है। भारत सरकार ने सन् १९६९–७० में प्रशिक्षण शालाओं का चक सर्वेक्षण किया था। इस सर्वेक्षण से प्रशिक्षण शालाओं की स्थिति का बोध होता है। आसाम बिहार और पंजाब में अधिकांश प्रशिक्षण शालाओं के पास स्वयं के भवन हैं। लेकिन उत्तर प्रदेश, महाराष्ट्र और मध्यप्रदेश में अधिकतर प्रशिक्षण शालाअएं किराये के भवनों में चलाई जाती है अथवा इन यालाओं के अन्य शिक्षण संस्थाओं के भवन में चलाया जाता है। इन दोनों प्रकार की स्थितियों में प्रशिक्षण शालाओं के पास अपर्याप्त भवन होते हैं। इससे अध्यापन में असुविधा रहती है।

इस सन्बन्ध में राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषदद् के सर्वेक्षण प्रतिवेदन (१९७०) के अनुसार अधिकांश प्रशिक्षण शालाओं के अपने भवन भवन हैं, अथवा वे किराए के भवनों में चलाए जाते हैं। लगभग ३० प्रतिशत प्रशिक्षण शालाओं के अपने स्वयं के भवन है। असम की सभी संस्थाओं के पास अपने भवन हैं। अन्य प्रदेशों में स्थिति भिन्न है। केरल और उड़ीसा में 85 प्रतिशत, मध्म प्रदेश एवं राजस्थान में ७१ से ८० प्रतिशत, तमिलनाडू पश्चिमी बंगाल एवं पंजाब में ६० से ७० प्रतिशत, मैसूर, केन्द्रीय प्रशासित प्रदेशों में ५० प्रतिशत, गुजरात में ४२ प्रतिशत और उत्तर प्रदेश में लगभग ३८ प्रतिशत प्रशिक्षण शालाओं के पास निजी भवन हैं।

अधिकतर प्रशिक्षण शालाओं में पुस्तकालय एवं वाचनालयों की उचित सुविधाएँ नहीं हैं। पंजाब, बिहार और महाराष्ट्र की ८० प्रतिशत प्रशिक्षण शालाओं के पास पुस्तकालयों की संतोषजनक सुविधाएँ हैं, लेकिन दूसरी ओर उड़ीसा और पश्चिमी बंगाल में क्रमशः ३७ और ४३ प्रतिशत प्रशिक्षण संस्थाओं के पास ही पर्याप्त पुस्तकालय और वाचनालय हैं। अन्य संस्थाओं की स्थिति इस दृष्टि से बहुत शोचनीय है।

राजस्थान में ७५ प्रतिशत प्रशिक्षण संस्थाओं के पास ५०० से ४००० पुस्तकें हैं जो अधिकांश में हिन्दी भाषा में है। केवल ९ प्रतिशत संस्थाओं के पास ४००० से अधिक पुस्तकें हैं।

प्रशिक्षण शालाओं में प्रयोगशालाओं की स्थिति बहुत ही खराब है। केवल पंजाब के ७२ प्रतिशत प्रशिक्षण संस्थाओं में प्रयोगशालाएँ हैं। गुजरात और महाराष्ट्र में प्रयोगशालाओं की दृष्टि से संस्थाओं की स्थिति संतोषप्रद है। गुजरात की ५९ प्रतिशत और महाराष्ट्र की ४८ प्रतिशत संस्थाओं में प्रयोगशालाओं की सुविधाएँ हैं। उड़ीसा की किसी भी संस्था में प्रयोगशाला नहीं है। पश्चिमी बंगाल में ४ प्रतिशत, बिहार में ५ प्रतिशत, असम में ७ प्रतिशत और केरल की १५ प्रतिशत प्रशिक्षण शालाओं में प्रयोगशालाओं की सुविधाएँ उपलब्ध हैं। इस वैज्ञानिक युग में जब कि विज्ञान-शिक्षण पर अधिक जोर दिया जा रहा है प्रशिक्षण शालाओं में वैज्ञानिक उपकरणों से पूर्ण प्रयोग-शालाओं की आवश्यकता है। वहाँ विद्यमान प्रशिक्षण शालाओं में पर्याप्त प्रयोगशालाएँ भी उपलब्ध नहीं हैं। इसी प्रकार बंगाल, बिहार, उड़ीसा, मैसूर और असम की अधिकतर प्रशिक्षण संस्थाओं में उद्योग-कक्षों की व्यवस्था नहीं है।

यह सामान्य मान्यता है कि प्रशिक्षण शालाओं से प्रयोगात्मक अथवा 'निदर्शन' स्कूल सम्बद्ध होने चाहिए और इनका प्रयोग निदर्शन अथवा विशेष अध्ययन के लिए किया जाना चाहिए। इस दृष्टि से उत्तरप्रदेश की प्रशिक्षण शालाओं की स्थिति सर्वश्रेष्ठ है। वहाँ की शत-प्रतिशत प्रशिक्षण संस्थाओं से प्रयोगात्मक स्कूल सम्बद्ध हैं। असम, बिहार, पंजाब, पश्चिमी बंगाल और आन्ध्र प्रदेश की स्थिति भी संतोषप्रद है, इन प्रदेशों के ७५ प्रतिशत प्रशिक्षण शालाओं के साथ स्कूल संयुक्त हैं। इनके विपरीत उड़ीसा में २४ प्रतिशत, राजस्थान में २६ प्रतिशत और मध्यप्रदेश में २६ प्रतिशत प्रशिक्षण शालाओं के साथ स्कूल जुड़े हुए हैं।

बड़े नगरों में स्थित प्रशिक्षण शालाओं को छोड़कर अन्य सभी प्रशिक्षण शालाओं में ८० प्रतिशत छात्रों के लिए छात्रावास की आवश्यकता होती है। शिक्षाविदों का यह विचार है कि यदि प्रशिक्षार्थियों को छात्रावास की सुविधाएँ नहीं दी जाती हैं तो प्रशिक्षण कार्य अपूर्ण रह जाता है। छात्रावास में रह कर छात्राध्यापक सामूहिक जीवन तथा अन्य पाठ्येतर क्रियाओं को आयोजित करने का प्रशिक्षण प्राप्त करते हैं। छात्रावास की सुविधाएँ सभी प्रदेशों में समान रूप से उपलब्ध नहीं हैं। केरल, मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र, मैसूर, राजस्थान और उत्तरप्रदेश के ५० प्रतिशत से कम प्रशिक्षण शालाओं में छात्रावास की सुविधाएँ हैं। केवल असम और बिहार के ९५ प्रतिशत संस्थाओं के पास छात्रावास की सुविधाएँ हैं। छात्रावास का प्रबन्ध विशेष रूप से महिला प्रशिक्षार्थियों के लिए अत्यन्त आवश्यक है।

वित्तीय साधन—प्राथमिक स्तर के शिक्षक-प्रशिक्षण पर राज्य सरकार ही अधिकांश प्रदेशों में व्यय वहन करती है। कुछ प्रदेशों में प्रशिक्षण शालाएँ पूर्णतया राजकीय हैं, गैर सरकारी संस्थाओं को प्रशिक्षण शालाएँ खोलने की अनुमति नहीं दी जाती है, लेकिन कुछ प्रदेश, यथा महाराष्ट्र और तमिलनाडु, में गैर सरकारी प्रशिक्षण शालाओं को काफी प्रोत्साहन दिया जाता है। विभिन्न प्रदेशों में प्राथमिक शिक्षक-प्रशिक्षण पर व्यय की जाने वाली राशि में काफी अन्तर है जो आगे दी गई तालिका से स्पष्ट हो जायेगा—

तालिका

व्यय की जाने वाली राशि (हजार रुपयों में) १९६०–६१

प्रदेश	संस्थाओं की कुल संख्या	कुल व्यय
१	२	३
१. आन्ध्रप्रदेश	१३७	२,९३५
२. असम	३६	७८९
३. बिहार	१२२	५,३३६
४. गुजरात	७८	१,९९४
५. जम्मू-कश्मीर	१०	६८९
६. केरल	८०	९४२
७. मध्यप्रदेश	४६	३,४६३
८. तमिलनाडु	२३	३५३
९. महाराष्ट्र	१७६	५,१३८
१०. पंजाब	२६	७२७
११. राजस्थान	५५	३,२३६

प्रशिक्षार्थियों की योग्यता एवं चयन विधि

विभिन्न प्रदेशों में शिक्षक प्रशिक्षण शालाओं में प्रवेश के लिए न्यूनतम योग्यता भिन्न-भिन्न है। आन्ध्रप्रदेश, असम, गुजरात, केरल, पश्चिमी बगाल, उत्तरप्रदेश, पंजाब और राजस्थान मे हाई स्कूल, दसवीं अथवा ग्यारहवी कक्षा उत्तीर्ण प्रशिक्षार्थियों को प्रवेश दिया जाता है। दूसरी ओर जम्मू-कश्मीर, उत्तरप्रदेश और पंजाब में आठवी कक्षा उत्तीर्ण प्रशिक्षार्थियों को भी प्रवेश दिया जाता है।

प्रवेश के समय प्रशिक्षार्थियों का एक समिति द्वारा चयन किया जाता है। अधिकांश प्रदेशों में चयन का आधार साक्षात्कार एवं योग्यता है। आन्ध्रप्रदेश, असम, मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र, उत्तरप्रदेश, पजाब और राजस्थान में प्रशिक्षार्थियों के साक्षात्कार के लिए एक समिति का गठन किया जाता है, जिसके सदस्य होते हैं—जिला शिक्षा अधिकारी, अध्यक्ष जिला परिषद, विधान सभा के सदस्य और एक प्रधानाध्यापक का प्रतिनिधि। गुजरात, उड़ीसा और जम्मू-कश्मीर में प्रशिक्षार्थियों का चयन साक्षात्कार एवं लिखित परीक्षा के परिणामों के आधार पर किया जाता है। केरल, मैसूर और

तमिलनाडु में प्रशिक्षार्थियों का प्रवेश योग्यता के आधार पर किया जाता है और उनके पिछले परीक्षा परिणाम के प्रतिशत को ध्यान में रख कर प्रवेश दिया जाता है। कुछ प्रदेशों में शिक्षा विभाग शालाओं के अप्रशिक्षित एवं अनुभवी शिक्षकों को प्रशिक्षण के लिए मनोनीत करता है और कुछ प्रदेशों में अनुसूचित एवं पिछड़ी जातियों के प्रशिक्षार्थियों के लिए प्रवेश सुरक्षित रखे गए हैं।

सभी प्रदेशों की राजकीय प्रशिक्षण शालाओं में प्रशिक्षार्थियों को छात्र-वृत्तियाँ प्रदान की जाती हैं। लेकिन छात्रवृत्तियों की संख्या और आर्थिक सहायता की राशि में विभिन्न नीतियाँ अपनायी जाती हैं। अनुसूचित एवं पिछड़ी जाति के प्रशिक्षार्थियों के लिए सभी प्रदेशों में छात्रवृत्तियों की व्यवस्था है। छात्रवृत्तियाँ सामान्यतः १२ रुपये से ४० रुपये के मध्य दी जाती हैं। केन्द्र-शासित प्रदेशों में से गोआ, अंडमान-निकोबार द्वीप समूहों में सभी प्रशिक्षार्थियों को छात्रवृत्तियाँ दी जाती हैं। दिल्ली में केवल कुछ ही प्रशिक्षार्थियों को छात्रवृत्तियाँ दी जाती हैं।

शिक्षक-प्रशिक्षक—शिक्षक-प्रशिक्षकों की शैक्षिक योग्यताओं एवं अनुभव के सम्बन्ध में प्रादेशिक विभिन्नताएँ हैं। सामान्यतः सभी प्रदेशों में प्रशिक्षण शालाओं के प्रधानाचार्य पद के लिए बी. एड. न्यूनतम योग्यता निर्धारित की गई हैं। सर्वेक्षण से यह ज्ञात हुआ कि असम, मध्यप्रदेश, केरल और महाराष्ट्र की कुछ प्रशिक्षण शालाओं में बी. एड. से कम योग्यता वाले प्रधानाध्यापकों की नियुक्ति भी की जाती है। दूसरी ओर राजस्थान, मैसूर, उड़ीसा आदि प्रदेशों के प्रशिक्षणालयों में बी. ए. बी. एड. से अधिक योग्यता वाले शिक्षक प्रशिक्षकों की नियुक्ति की जाती है। राजस्थान में प्रशिक्षण शालाओं के प्रधानाचार्य की न्यूनतम योग्यता एम. ए. बी. एड. निर्धारित की गई है और अनेक प्रधानाचार्य एम. ए. एम. एड. की योग्यता रखते हैं।

प्रधानाचार्यों के अतिरिक्त अन्य शिक्षक प्रशिक्षकों की न्यूनतम शैक्षिक योग्यता सामान्यतः बी. ए. बी. एड. निर्धारित की गई है। उपलब्ध आँकड़ों के अनुसार सभी प्रदेशों की प्रशिक्षण शालाओं के अधिकांश शिक्षक-प्रशिक्षक न्यूनतम शैक्षिक योग्यता रखते है। कुछ प्रदेशों में शिक्षक-प्रशिक्षक न्यूनतम से अधिक योग्यता रखते हैं। राजस्थान में प्रशिक्षण शालाओं के शिक्षक-प्रशिक्षकों के लिए न्यूनतम शैक्षिक योग्यता एम. ए. बी. एड. निर्धारित की गई है। कृषि, संगीत, कला, शिल्पकला, शारीरिक शिक्षा आदि के शिक्षकों के लिए

हाई स्कूल एवं सम्बन्धित विषय में डिप्लोमा का होना न्यूनतम शैक्षिक योग्यता स्वीकार की गई है ।

निरीक्षण एवं पर्यवेक्षण—प्रशिक्षण शालाओं के निरीक्षण एवं पर्यवेक्षण की व्यवस्था है, लेकिन इनकी विधियों में बहुत विविधता है । शिक्षक प्रशिक्षण शालाओं के निरीक्षण का उत्तरदायित्व अधिकांश प्रदेशों में शिक्षा विभाग के निदेशक, अतिरिक्त निदेशक अथवा उप-निदेशक के ऊपर होता है । असम, जम्मू-कश्मीर और दिल्ली में यह स्थिति थोड़ी भिन्न है । असम में बेसिक शिक्षाधिकारी अथवा जिला निरीक्षक, जम्मू-कश्मीर में शिक्षक प्रशिक्षण शालाओं के प्रधानाचार्य और दिल्ली में विशेषाधिकारी शिक्षक प्रशिक्षण शालाओं के निरीक्षण के लिए नियुक्त किये जाते हैं । अधिकांश प्रदेशों में प्रशिक्षणालयों के निरीक्षण का कार्य जिला शिक्षाधिकारी अथवा जिला विद्यालय निरीक्षक करता है । ये अधिकारी या तो स्वयं ही संस्थाओं का निरीक्षण करते हैं अथवा वे निरीक्षण हेतु अन्य व्यक्तियों को निरीक्षण दल में शामिल कर लेते हैं । केरल, महाराष्ट्र, मध्यप्रदेश, उड़ीसा, राजस्थान, पश्चिमी बंगाल और दिल्ली की प्रशिक्षण शालाओं का प्रतिवर्ष पेनल परिवीक्षण होता है । गुजरात में कभी-कभी जिला शिक्षाधिकारियों द्वारा, बिना पूर्व सूचना के भी इन संस्थाओं का निरीक्षण किया जाता है । केरल और राजस्थान में प्रशिक्षणालयों का निरीक्षण राज्य शिक्षा संस्थान द्वारा किया जाता है, लेकिन उपलब्ध सूचनाओं से ज्ञात होता है कि सामान्यतया प्रशिक्षण शालाओं का निरीक्षण नियमित रूप से नहीं किया जाता । इनका प्रत्येक वर्ष निरीक्षण नहीं होता, यद्यपि शिक्षाधिकारियों से यह अपेक्षित है कि इनका वर्ष में एक बार निरीक्षण किया जाना चाहिए ।

नवीन संगठन के लिए कुछ सुझाव

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि प्राथमिक प्रशिक्षण शालाओं की स्थिति माध्यमिक प्रशिक्षण शालाओं से अधिक शोचनीय है । उनका आकार छोटा है । निरीक्षण और पर्यवेक्षण का अभाव है, प्रशिक्षक की शैक्षिकों योग्यता अनुकूल नहीं है, प्रशिक्षार्थियों के प्रवेश की योग्यता में बहुत विभिन्नता है, भवन, धन आदि की दृष्टि से ये संस्थाएँ अभावों से ग्रस्त हैं । अतः इनके सुधार के लिये एक चतुर्मुखी योजना की आवश्यकता है ।

आकार एवं स्थान निर्धारण

छोटी संस्थाएँ अधिक खर्चीली होती हैं, अतः संस्था का आकार बड़ा होना चाहिए । प्राथमिक शिक्षक-प्रशिक्षण की प्रथम राष्ट्रीय संगोष्ठी ने प्रशि-

क्षण शालाओं के आकार के सम्बन्ध में कुछ महत्त्वपूर्ण सुझाव दिये हैं जिनको स्वीकार कर लेना चाहिए। इस संगोष्ठी के अनुसार एक द्विवर्षीय पाठ्यक्रम वाली प्रशिक्षण शाला में १६०–२०० प्रशिक्षार्थी होने चाहिए, प्रथम और द्वितीय वर्ष की कक्षाओं के चार विभाग होने चाहिए और प्रत्येक विभाग में कम से कम ४० और अधिक से अधिक ५० प्रशिक्षार्थी होने चाहिए। चालीस की संख्या संतोषप्रद है।

आकार के साथ-साथ दूसरा महत्त्वपूर्ण बिन्दु प्रशिक्षण शालाओं के स्थान–निर्धारण का है। ८० प्रतिशत जनसंख्या ग्रामीण क्षेत्रों में रहती है, अतः प्रशिक्षण शालाओं की ४/५ संख्या ग्रामीण क्षेत्रों में होनी चाहिए। संस्थाओं को खोलते समय जिले को इकाई मानकर उनकी संख्या का निर्धारण करना चाहिए। प्रशिक्षण शालाओं में निदर्शन अथवा सहयोगी शालाओं की भी आवश्यकता होती है, अतः ये संस्थाएँ ५००० से १५,००० की आबादी वाले क्षेत्रों में खोली जानी चाहिए।

विविध प्रकार की संस्थाओं को अध्यापक-प्रशिक्षण का दायित्व सभाल लेना चाहिए। उदारहणतः यदि कोई भारतीय औद्योगिक संस्थान अपने कार्यक्रम के अंग के रूप एक शिक्षक-प्रशिक्षण शाला भी खोल ले तो प्रशिक्षण शाला के कार्यक्रम में विविधता आ जायेगी और उसका स्थान किसी औद्योगिक क्षेत्र में होगा। कृषि विश्वविद्यालय भी ऐसा कर सकते हैं। इस कोटि के कार्यक्रमों से शिक्षक-प्रशिक्षक के कार्यक्रम को उत्तम प्रतिष्ठा एवं विस्तृत आधार भूमि मिल जायेगी। इसके अतिरिक्त इस कार्यक्रम से शिक्षा भी कृषि और ग्रामोद्योग की दिशा में उन्मुख होगी।

विकास कार्यक्रम

केन्द्रीय शिक्षा सलाहकार बोर्ड के छत्तीसवें अधिवेशन (१८–१९ सितम्बर १९७२) ने विद्यमान १६०० प्रशिक्षण शालाओं की पाँचवीं योजना में विकास के लिए सुझाव दिया है। इसने प्रस्तावित किया है कि प्रत्येक संस्था को अपने भवन, पुस्तकालय, श्रव्य-दृश्य सामग्री आदि के विकास के लिए एक लाख रु० की आर्थिक सहायता दी जाए। इस बोर्ड ने यह अनुमान लगाया कि एक नई प्रशिक्षण शाला की स्थापना के लिए ५ लाख के अनावर्तक खर्च और १.२५ लाख के प्रतिवर्ष आवर्तक खर्च की आवश्यकता है। इसी अनुपात से प्रत्येक प्रशिक्षण शाला को अनुदान प्राप्त होना चाहिए।

गुणात्मक विकास

प्रशिक्षण शालाओं के गुणात्मक विकास की दृष्टि से इनके संगठन की ओर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए। इस संगठन के तीन पहलू हैं—(१) प्रशिक्षार्थी, (२) शिक्षक-प्रशिक्षण और (३) सगठन के लिए उत्तरदायी सस्था। प्रशिक्षणार्थियों के स्तर में सुधार किया जाना चाहिए। प्रशिक्षणार्थियों के प्रवेश के लिए न्यूनतम शैक्षिक योग्यता निर्धारित होनी चाहिए। सामान्यतया हाईस्कूल की योग्यता रखने वाले को प्रवेश दिया जाना चाहिए और धीरे-धीरे इसको बढ़ाकर हायर सैकण्डरी अथवा इंटरमीडियेट कर दिया जाना चाहिए। इससे शिक्षक-प्रशिक्षण का स्तर सुधरेगा। इसी प्रकार शिक्षक-प्रशिक्षकों की न्यूनतम योग्यता के स्तर को बढाया जाना चाहिए। एक शिक्षक-प्रशिक्षक की योग्यता न्यूनतम एम. ए. बी. एड. होनी चाहिए। लेकिन वांछनीय यह होगा कि उन व्यक्तियों की नियुक्ति की जाए जिनके पास एम. एड. की उपाधि है।

गुणात्मक विकास की दृष्टि से प्रशिक्षण शालाओं के बाह्य संगठन के स्वरूप में भी परिवर्तन होना चाहिए ताकि इनके निरीक्षण, पर्यवेक्षण, आर्थिक अनुदान और पाठ्यचर्या निर्माण में वांछनीय संशोधन एवं परिमार्जन सम्भव हो सके। यहाँ पर कोई रूढ़िगत अथवा एक ही प्रकार के संगठन का सुझाव सभी प्रदेशों की संस्थाओं के लिए प्रस्तावित करने का उद्देश्य नहीं है। संगठन विविध प्रकार के होने चाहिए ताकि इनके आधार पर प्रशिक्षण शालाओं की कार्यक्षमता का मूल्यांकन हो सके। इस प्रकार के लचीले संगठन से विभिन्न क्षेत्रीय आवश्यकताओं का भी ध्यान रखा जा सकता है। इस दृष्टि से कुछ वैकल्पिक सगठनों का सुझाव दिया गया है।

पिछले अध्याय में सर्वांगीण शिक्षक महाविद्यालय की उपादेयता पर विचार किया गया था। इस पक्ष पर भी विचार किया गया था कि प्राथमिक शिक्षक-प्रशिक्षण कार्यक्रम तैयार करने का उत्तरदायित्व विश्वविद्यालयों को सौंप दिया जाए, क्योंकि अब प्रशिक्षण शालाओं में हाईस्कूल अथवा हायरसैकण्डरी योग्यता वाले विद्यार्थी प्रवेश प्राप्त करते हैं और इनके लिए पाठ्यचर्या संचालन करने का उत्तरदायित्व विश्वविद्यालय वहन कर सकते हैं।

पिछले अध्याय में एक दूसरा विकल्प 'एरिया ट्रेनिंग आरगेनाइजेशन' का सुझाया गया था। इस प्रकार के संगठन से प्रशिक्षण शालाएँ विश्वविद्यालय

और विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के प्रशासनिक ढांचे के अन्तर्गत आ जाती हैं और इनको इन संस्थाओं से होने वाले लाभ प्राप्त हो सकते है ।

एक तीसरा विकल्प यह है कि प्रशिक्षण शालाओं को प्रशासन की दृष्टि से राज्य शिक्षा संस्थानों से संयुक्त किया जाए । ये संस्थान पाठ्यचर्या निर्माण, निरीक्षण एवं पर्यवेक्षण और परीक्षा की व्यवस्था करें । राज्य सरकार को प्राथमिक शिक्षा के विकास और आर्थिक अनुदान के सम्बन्ध में राय दें । इस परिवर्तन से शिक्षक प्रशिक्षण के क्षेत्र में सुधार हो सकता है ।

एक अन्य ऐजेन्सी का सुझाव भी शिक्षा आयोग ने दिया है । प्रत्येक राज्य में शिक्षक प्रशिक्षण परिषद की स्थापना के लिए सिफारिश की गई है । यह परिषद प्राथमिक शिक्षक-प्रशिक्षण के प्रशासन का उत्तरदायित्व वहन करेगी । यह सुझाव भी विचारणीय है और यह प्रयोग किया जाना चाहिए । इस सुझाव का एक दूसरा पक्ष भी है । इससे एक नई संस्था को जन्म मिलेगा जो न तो प्रदेश के शिक्षा विभाग और न विश्वविद्यालय के स्तर को प्राप्त करेगी । यह तो केवल एक सलाहकार समिति होगी और अन्ततोगत्वा प्रशिक्षण शालाओं का उत्तरदायित्व प्रदेश के शिक्षा विभाग ही निर्वाह करेंगे । इससे अधिक संतोषजनक परिणाम निकलने की आशा कम है। इस प्रकार के प्रबन्ध से प्राथमिक शिक्षक-प्रशिक्षण कार्यक्रम का विश्वविद्यालयों से सीधा सम्बन्ध नहीं हो पाएगा और इनका विश्वविद्यालय तथा उच्च शिक्षा से अलगाव बना रहेगा ।

कुछ प्राथमिक प्रशिक्षण शालाओं को स्वायत्त संस्था का स्तर भी दिया जाना चाहिए । इस स्वायत्तता के अन्तर्गत शिक्षक प्रशिक्षण शालाओं को विद्यार्थियों के चयन, अध्ययन, पाठ्यचर्या तथा शिक्षण विधियों के निर्धारण और आन्तरिक परीक्षा की स्वतन्त्रता प्राप्त होगी । इस प्रकार के प्रयोग और परीक्षण करने वाली संस्थाओं को प्रोत्साहन दिया जाना चाहिए । कुछ आदर्श संस्थाओं को इस कार्य के लिए चुन लिया जाए और प्रयोग के रूप में प्रारम्भ में पाँच वर्ष के लिए इन चुनी हुई संस्थाओं को कार्य करने की सुविधा प्रदान की जाय यह उचित होगा ।

पूर्व-प्राथमिक शिक्षक-प्रशिक्षण का संगठन

पूर्व-प्राथमिक शिक्षक-प्रशिक्षण की स्थिति अभी देश में सुनियोजित नहीं है । अनेक प्रदेशों में अभी इसके महत्व को स्वीकार नहीं किया गया है ।

कुछ प्रदेशों में राज्य सरकार पूर्व प्राथमिक प्रशिक्षण शालाओं को मान्यता तथा अनुदान देती है। कुछ प्रदेशों में इसके लिए राजकीय संस्थाएँ हैं।

सर्वप्रथम भारत में अंग्रेजी मिशनरियों ने पूर्व-प्राथमिक शिक्षा के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया। सन् १९३९ में मैडम मान्तेसरी के भारत-आगमन के पश्चात् मान्तेसरी पद्धति पर अध्यापकों को प्रशिक्षित करने के लिए कुछ प्रशिक्षण सस्थाएँ खोली गई। लेकिन ये संस्थाएँ अधिकांशतः गैर-सरकारी हैं। सन् १९६१ से पूर्व-प्राथमिक प्रशिक्षण शालाओं की स्थापना के लिए एक नये संगठन ने उत्तरदायित्व लिया है। 'इंडियन काउन्सिल फार चाइल्ड वेलफेयर' ने दिल्ली में पूर्व-प्राथमिक शिक्षक प्रशिक्षण शाला खोली। इस पाठ्यक्रम की अवधि ग्यारह माह है। इस काउन्सिल ने अन्य शहरों में भी इस प्रकार के प्रशिक्षण केन्द्र स्थापित किए हैं। ग्रामीण क्षेत्रों की आवश्यकता की पूर्ति के लिए केन्द्रीय समाज कल्याण बोर्ड ने पूर्व-प्राथमिक प्रशिक्षण केन्द्रों की स्थापना की। दोनों प्रकार के संगठनों द्वारा खोली जाने वाली संस्थाओं को बाल सेविका प्रशिक्षण संस्था के नाम से पुकारा जाता है।

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसधान एवं प्रशिक्षण परिषद ने पूर्व-प्राथमिक शिक्षक प्रशिक्षण के महत्त्व को स्वीकार किया। परिषद ने सन् १९६३ में दिल्ली में पूर्व-प्राथमिक शिक्षक प्रशिक्षण केन्द्र की स्थापना की। दक्षिण भारत के शिक्षकों के लिए इसी प्रकार का एक केन्द्र गांधीग्राम में सन् १९६५ में स्थापित किया गया।

अधिकांश प्रदेशों के शिक्षा विभागों ने पूर्व-प्राथमिक शिक्षक-प्रशिक्षण को मान्यता प्रदान की है। कुछ प्रदेश सरकारें स्वय इस प्रकार की प्रशिक्षण संस्थाएँ चलाती हैं। अन्य प्रदेशों में गैर-सरकारी संस्थाएँ हैं जिनको प्रदेश सरकारें मान्यता और आर्थिक अनुदान प्रदान करती हैं।

कुछ विश्वविद्यालयों ने भी पूर्व-प्राथमिक प्रशिक्षण को अपने क्षेत्र में संयुक्त किया है। एम. एस. विश्वविद्यालय, बड़ौदा ने स्नातक स्तर पर पूर्व-प्राथमिक प्रशिक्षण की व्यवस्था की है। उदयपुर विश्वविद्यालय ने हायर सैकण्डरी योग्यता वाले विद्यार्थियों के लिए पूर्व-प्राथमिक प्रशिक्षण के लिए एकवर्षीय डिप्लोमा कोर्स तैयार किया है।

कुछ संस्थाएँ पूर्व-प्राथमिक प्रशिक्षण के लिए अंशकालीन प्रशिक्षण की व्यवस्था करती हैं। इलाहाबाद का कास्मिक शिक्षा केन्द्र विभिन्न स्थानों पर अल्पकालीन प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित करता है। तमिलनाडु के तीन माह

के अंशकालीन प्रशिक्षण कार्यक्रम में ग्रामीण महिलाओं को पूर्व-प्राथमिक शालाओं में पढ़ाने के लिए प्रशिक्षित किया गया। राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद पूर्व-प्राथमिक शिक्षक प्रशिक्षण के क्षेत्र में समय-समय पर अन्तःसेवाकालीन-प्रशिक्षण की दृष्टि से कार्यगोष्ठियाँ, सेमीनार आदि की व्यवस्था करती है।

उपर्युक्त विवेचन से प्राथमिक प्रशिक्षण के क्षेत्र में एक बात स्पष्ट होती है कि इसके लिए कोई सशक्त प्रशासनिक ढाँचा तैयार नहीं हुआ है। शिक्षा विभाग का एक अधिकारी, अपने अन्य उत्तरदायित्वों के साथ, इसके निरीक्षण और प्रशासन के लिए उत्तरदायी होता है। फलस्वरूप इस प्रशिक्षण की पाठ्यचर्या रूढ़िगत एवं अपरिवर्तनशील बन गई है क्योंकि इसमें यथा समय संशोधन नहीं हो पाते हैं। उपयुक्त प्रशासनिक ढाँचे के अभाव में इनके भवन, खेल के मैदान, छात्रावास और आर्थिक अनुदान की आवश्यकताओं का समय-समय पर सर्वेक्षण एवं विश्लेषण नहीं हो पाता है। अतः प्रशासनिक ढाचे के परिवर्तन की ओर विशेष रूप से ध्यान दिया जाना चाहिए। इसके लिए अनेक सुझाव दिये गये हैं। लेकिन प्रयोग के रूप में विश्वविद्यालयों को कुछ प्रशिक्षण शालाओं को अपने क्षेत्र में ले लेना चाहिए। विश्वविद्यालय प्राथमिक शिक्षक-प्रशिक्षण के लिए डिप्लोमा पाठ्यचर्या चला सकते हैं। गुजरात विद्यापीठ, अहमदाबाद ने एम. एड. में प्राथमिक शिक्षण के लिए विशिष्टीकरण का प्रावधान किया है। इसी प्रकार से पाठ्यचर्या में परिवर्तन अन्य विश्वविद्यालय भी कर सकते हैं।

पूर्व-प्राथमिक स्तर पर तीन अखिल भारतीय एजेन्सियों ने कार्य हाथ में ले लिया है। राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसधान एवं प्रशिक्षण परिषद, इण्डियन काउन्सिल फार चाइल्ड वेलफेयर और केन्द्रीय समाज कल्याण बोर्ड ने पूर्व-प्राथमिक शिक्षा के क्षेत्र में प्रशिक्षण शालाएँ खोली है। कुछ सीमित विश्वविद्यालयों ने पूर्व-प्राथमिक शिक्षक-प्रशिक्षण का उत्तरदायित्व ग्रहण किया है। ये नये आयाम सही दिशा में हैं और इस नवीन प्रशासनिक ढाँचे से पूर्व-प्राथमिक प्रशिक्षण के स्तर में विकास होने की आशा है।

———

१८
वित्त

एक सुनियोजित शिक्षक-प्रशिक्षण कार्यक्रम के लिए वित्त की अनिवार्यता चिरकाल से बनी हुई है। भवन, खेल के मैदान, शिक्षण के लिए विविध प्रकार के उपकरण, छात्रावास आदि के लिए धन चाहिए, इसके अभाव में वांछित सुधार की प्रत्याशा नही की जा सकती। सुयोग्य शिक्षक प्रशिक्षकों को इस व्यवसाय में आकृष्ट करने और उनकी कार्यक्षमता को बढ़ाने के लिए अच्छे वेतनमान निर्धारित किए जाने चाहिए। वेतनमान सामाजिक स्तर, वस्तुओं के मूल्य, अध्यापको की योग्यता के अनुसार तय किये जाने चाहिए ताकि कार्यकर्ताओं को दैनिक आर्थिक चिन्ताओं से मुक्ति मिल सके। प्रशिक्षण संस्थाओं को आर्थिक अनुदान इसलिए भी चाहिए ताकि वे अर्थप्राप्ति के लिए प्रशिक्षार्थियों पर निर्भर न रहें, बल्कि प्रशिक्षार्थियों पर आर्थिक भार कम करने की दृष्टि से उनको छात्रवृत्तियाँ अथवा बिना ब्याज ऋण देने की अधिक व्यवस्था की जानी चाहिए।

शिक्षक-प्रशिक्षण संस्थाओं के वित्त के सम्बन्ध मे अध्ययन करते समय अनेक प्रश्न उठ खड़े होते है, यथा, शिक्षा पर कुल कितना व्यय किया जाता है ? शिक्षा पर होने वाला व्यय राष्ट्रीय आय का कौन सा प्रतिशत है ? अन्य देशों मे शिक्षा पर कितना व्यय होता है ? शिक्षक-प्रशिक्षण पर कितना अंश व्यय किया जाता है ? शिक्षक-प्रशिक्षण मे प्रति छात्र लागत व्यय कितना है ? इन प्रश्नो की जानकारी से शिक्षक-प्रशिक्षण के लिए उपलब्ध वित्तीय साधनो एव स्रोतों का स्पष्टीकरण सभव है और इस दृष्टि से इस अध्याय मे शिक्षक-प्रशिक्षण की वित्तीय व्यवस्था का अध्ययन किया जाएगा।

शिक्षा पर व्यय—यदि हम इस सदर्भ मे स्वतन्त्रता मिलने के बाद की अवधि के दौरान शिक्षा के कुल व्यय मे होने वाली वृद्धि के तरीके पर विचार करे तो अधिक सुविधाजनक रहेगा। शिक्षा आयोग (१९६४–६६) के

आँकड़ों के अनुसार १९४६–४७ में 'ब्रिटिश भारत' में शिक्षा पर कुल ५७·७ करोड़ रुपया खर्च किया जाता था जो जनसंख्या को देखते हुए प्रतिव्यक्ति १·८ रुपया बैठता था। तृतीय पंचवर्षीय योजना के अन्त में शिक्षा का कुल व्यय अनुमानतः ६०० करोड़ रुपया था या (वर्तमान कीमतों पर) १२ रुपया प्रति व्यक्ति के आसपास था। इसका विवरण निम्नलिखित तालिका से प्राप्त हो सकता है :—

तालिका

भारत में शिक्षा का कुल व्यय (१९५०–१९६६)

	१९५०–५१	१९५५–५६	१९६०–६१	१९६५–६६ प्राक्कलित
(१) शिक्षा का कुल व्यय स्रोतों से (रु०करोड़ों में)	१,१४४	१८९७	३,४४४	६,०००
(२) वृद्धि का सूचकांक	१००	१६६	३०१	५२४
(३) प्रति व्यक्ति शिक्षा का व्यय (रु०)	३·२	४·८	७·८	१२·१
(४) वृद्धि का सूचकांक	१००	१५०	२४४	३७८
(५) कुल राष्ट्रीय आय (वर्तमान कीमतों पर रु० करोड़ में)	९५,३००	९९,८००	१,४१,४००	२,१०,०००
(६) वृद्धि का सूचकांक	१००	१०५	१४८	२२०
(७) प्रति व्यक्ति राष्ट्रीय आय (वर्तमान कीमतों पर)	२६६·५	२५५	३२५·७	४२४·४
(८) वृद्धि का सूचकांक	१००	९६	१२२	१५९
(९) राष्ट्रीय आय की तुलना में शिक्षा के कुल व्यय का प्रतिशत	१·२	१·९	२·४	२·९
(१०) वृद्धि का सूचकांक	१००	१५८	२००	२४२
(११) शिक्षा के कुल व्यय की औसत वार्षिक वृद्धि पर	१०·६%	१२·७%	११·८%	११·७%

चतुर्थ योजना में योजना आयोग ने १,२६० करोड़ रु० का प्रावधान शिक्षा के लिए किया है, जो योजना में व्यय की जाने वाली राशि का लगभग ८.७ प्रतिशत है। पाँचवीं योजना में शिक्षा पर व्यय की जाने वाली राशि बढ़ाकर २,२५० करोड़ निर्धारित की गई है। उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट होता है कि प्रथम तीन योजनाओं में शिक्षा पर व्यय होने वाली राशि में लगभग ४२४ प्रतिशत वृद्धि हुई है, अर्थात् प्रतिवर्ष ११.७ प्रतिशत की संचयी दर से वृद्धि हुई है।

शिक्षा पर व्यय होने वाली राशि में वृद्धि तो अवश्य हुई है, लेकिन इस वृद्धि पर दो महत्त्वपूर्ण तत्त्व प्रभाव डालते हैं। पिछली तालिका में जो आँकड़े प्रस्तुत किये गये हैं वे वर्तमान कीमतों पर आधारित हैं। इस अवधि में कीमतों में बहुत ही वृद्धि हुई है। थोक कीमतों का सूचकांक लगभग ५३ प्रतिशत बढ़ा है और श्रमिक वर्ग के निर्वाह-खर्च सूचकांक में लगभग ६५ प्रतिशत की वृद्धि हुई है। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि शिक्षा के कुल व्यय में जो वृद्धि हुई है उसका काफी भाग केवल कीमतों की वृद्धि का ही परिणाम है। दूसरा तत्त्व जो इस दिशा में होने वाली धनराशि की वृद्धि पर प्रभाव डालता है वह है प्रतिवर्ष बढ़ने वाले छात्र-छात्राओं की संख्या में वृद्धि। यह वृद्धि शिक्षा पर किये जाने वाले धन की वृद्धि के अनुपात से कहीं अधिक है। अतः सीमित साधनों को अधिक आवश्यकताओं पर व्यय करने के कारण प्रति छात्र व्यय कम हो जाता है। पिछले आँकड़ों से इस तथ्य की पुष्टि होती है। प्रथम पन्द्रह वर्षों में शिक्षा पर ४२४ प्रतिशत धन की वृद्धि हुई, जबकि प्रति व्यक्ति शिक्षा पर व्यय का प्रतिशत केवल २७८ ही था।

भारत में शिक्षा पर होने वाला कुल व्यय राष्ट्रीय आय का बहुत छोटा अंश है। सन् १९५१ में शिक्षा का कुल व्यय राष्ट्रीय आय का १.२ प्रतिशत था। पहली योजना के अन्त में यह अनुपात १.९ प्रतिशत तक पहुँचा। दूसरी योजना के अन्त में २.४ प्रतिशत हो गया और तीसरी योजना के अन्त में भी २.४ प्रतिशत हो गया। इस प्रकार पन्द्रह वर्षों की अवधि में १४२ प्रतिशत की वृद्धि हुई। इस दृष्टि से अन्य उन्नत देशों की तुलना में हमारे यहाँ शिक्षा पर किया जाने वाला खर्चा राष्ट्रीय आय का बहुत थोड़ा भाग है। जापान, रूस और अमरीका अपने कुल राष्ट्रीय उत्पादन का ६ प्रतिशत से भी अधिक धन शिक्षा पर व्यय करते हैं, जो भारत के मुकाबले में दो गुना से भी अधिक पड़ता है। अमरीका जैसे बड़े औद्योगीकृत देश की

तुलना में हमारे यहाँ शिक्षा पर प्रति व्यक्ति खर्च की जाने वाली निरपेक्ष रकम लगभग १/१०० आती है, इससे शिक्षा के स्तर और औद्योगीकरण के स्तर में घनिष्ठ अन्योन्य क्रिया और अन्तर्ग्रथन का पता लगता है।

शिक्षा आयोग ने इस बात का अध्ययन किया कि अन्य देशों में शिक्षा पर कितना व्यय किया जाता है। यूनेस्को द्वारा उपलब्ध दस्तावेजों से विभिन्न देशों में शिक्षा पर व्यय किये जाने वाले प्रतिशत की जानकारी निम्नलिखित तालिका से होती है, जिसमें शिक्षक-प्रशिक्षण पर खर्च की जाने वाली राशि का ज्ञान होता है :—

तालिका

शिक्षा के स्तर और प्रकार के अनुसार शिक्षा के आवर्ती व्यय का प्रतिशत विवरण

देश	केन्द्रीय शासन	पूर्व प्राथमिक और पहला स्तर	दूसरा स्तर कुल	सामान्य	व्यावसायिक और शिक्षक प्रशिक्षण	तीसरा स्तर	अन्य प्रकार की शिक्षा	कुल
ब्राजील	१०.१	३३.४	१९.५	—	—	२०.०	१७.०	१००.०
फ्रांस	१.९	४८.३	२०.२	१८.०	११.२	८.३	१२.३	१००.०
घाना	१३.२	२६.७	३३.१	१८.७	१४.४	१७.२	९.८	१००.०
नाइजीरिया	९.४	५३.८	२९.०	१२.६	१६.४	५.१	२.७	१००.०
पाकिस्तान	५.५	४२.९	२३.८	१९.१	४.७	१९.६	८.२	१००.०
तुर्की	—	६१.३	३२.४	१३.४	१९.०	१.४	४.९	१००.०
यू. के.	४.१	२७.१	३८.८	३१.५	७.३	१४.१	१५.९	१००.०
अमरीका	—	७२.४	.....	—	—	२७.६	—	१००.०
रूस	०.५	७१.२	—	—	—	१३.३	१५.०	१००.०

शिक्षक-प्रशिक्षण पर व्यय

भारत में शिक्षा पर किए जाने वाले व्यय का तुलनात्मक अध्ययन पिछले पृष्ठों में किया गया है। अब इस बात का अध्ययन किया जाएगा कि शिक्षक-प्रशिक्षण कार्यक्रम पर शिक्षा पर होने वाले कुल व्यय का कितना अंश खर्च किया

जाता है। सुविधा की दृष्टि से शिक्षक प्रशिक्षण पर होने वाले व्यय को दो भागों में बाँटा गया है— १) प्राथमिक शिक्षक-प्रशिक्षण कार्यक्रम एवं (२) माध्यमिक शिक्षक-प्रशिक्षण कार्यक्रम।

प्रशिक्षण शालाएं

निम्नलिखित तालिका से प्रशिक्षण शालाओं पर (सन् १८८१–८२ से १९६०–६१ तक) होने वाले प्रत्यक्ष व्यय का विवरण प्राप्त होता है :—

तालिका

सन् १८८१–८२ से १९६०–६१ तक विभिन्न स्रोतों से होने वाले प्रत्यक्ष व्यय के आँकड़े रु० –००० में)

वर्ष	राजकीय कोष	स्वायत्त कोष संस्था	शुल्क	अन्य स्रोत
१८८१–८२	४००	उपलब्ध नहीं।	—	—
१९०१–०२	४७२	११५	९	११६
	(६६.३)	(१६.१)	(१.३)	(१६.३)
१९०१–२२	५,०९६	४४३	४५	२८०
	(८६.९)	(७.५)	(०.८)	(४.८)
१९४६–४७	८,००५	१६४	२६६	६६६
	(८८.००)	(१.८)	(२.९)	(७.३)
१९५०–५१	१२,८७३	२६७	७१४	१३७६
	(८४.५)	(१.८)	(४.७)	(९.०)
१९५५–५६	१६,७२६	९६९	१,२२१	१,७१२
	(८४.७)	(०.५)	(६.२)	(८.६)
१९६०–६१	३१,२३४	१०९	१,७८७	१,३०९
	(९०.७)	(०.३)	(५.२)	(३.८)

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट होता है कि प्राथमिक प्रशिक्षण शालाओं को चलाने का उत्तरदायित्व मुख्यतः राज्य सरकार पर है। सन् १९०१–०२ तक स्वायत्त शासी संस्थाओं का भी प्राथमिक शिक्षक-प्रशिक्षण में एक महत्त्वपूर्ण योगदान था, लेकिन शनैः शनैः उन्होंने इस उत्तरदायित्व से अपने आपको हटा लिया। इसका यह प्रभाव पड़ा कि राज्य सरकारों पर आर्थिक भार बढ़

गया। सन् १९०१–२ में राज्य सरकारें ६६.३ प्रतिशत आर्थिक अनुदान देती थी, जो सन् १९६०–६१ में बढ़ कर ९०.७ प्रतिशत हो गया। संस्थाओं का आर्थिक योगदान इस अवधि में १६.१ प्रतिशत से कम होकर ० ३ रह गया। केवल गुजरात, महाराष्ट्र, पंजाब और पश्चिम बंगाल ऐसे प्रदेश हैं जहाँ एक अथवा दो प्रशिक्षण शालाओं को स्वायत्त संस्थाओं से आर्थिक अनुदान प्राप्त होता है। राज्य सरकार के आर्थिक भार को कुछ सीमा तक गैर-सरकारी संस्थाएँ वहन करती है। गैर-सरकारी प्रशिक्षण शालाएँ शुल्क और प्रबन्धक समितियों से आर्थिक सहायता प्राप्त करती है। लेकिन यह राशि बहुत कम है, क्योंकि सन् १९६०–६१ मे केवल ९ प्रतिशत धन शुल्क से प्राप्त किया गया था विभिन्न प्रदेशों में विभिन्न स्रोतों से प्राप्त होने वाली राशि को निम्नलिखित तालिका मे दर्शाया गया है :—

तालिका

कुछ प्रदेशों में प्राथमिक प्रशिक्षण शालाओं की आय के विभिन्न स्रोत (रु० ०००) में

प्रदेश	राजकीय कोष	स्वायत्त संस्था (ग्रामीण)	स्वायत्त संस्था (नगर)	शुल्क	अन्य साधन	योग
आन्ध्र प्रदेश	२६८२	—	—	८९	१६३	२९३४
गुजरात	१६६३	१०	—	१८०	१४१	१९९४
महाराष्ट्र	३९१३	—	५२	६६९	५०३	५१३७
मैसूर	१५५८	—	—	६९	४१	१६६८
राजस्थान	३०३१	—	—	१७२	३२	३२३५
उत्तर-प्रदेश	५१०३	—	१२	२१२	७९	५४०६
पश्चिमी बंगाल	६०२	—	३५	१६	२४	६७७

प्राथमिक शिक्षक-प्रशिक्षण में राज्य सरकार का वित्तीय उत्तरदायित्व दिन-प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है, क्यों कि अब यह मान्यता बढ़ती जा रही है कि प्रशिक्षार्थियों पर प्रशिक्षण का अधिक आर्थिक भार नहीं पड़ना चाहिए। अतः चतुर्थ योजना में केन्द्र और राज्य सरकारों ने प्राथमिक शिक्षक प्रशिक्षण के लिए अधिक आर्थिक अनुदान की व्यवस्था की है, जो निम्न लिखित तालिका से स्पष्ट होती है :—

तालिका

प्रशिक्षण शालाओं पर किए जाने वाले व्यय का विस्तृत विवरण

(करोड़ रुपयों में)

(१) प्रशिक्षण सुविधाओं का विस्तार	
(१) २.४० लाख अतिरिक्त शिक्षकों के प्रशिक्षण के लिए सुविधा, १००० रु० प्रति विद्यार्थी की दर से	२४.०
(२) १.२ लाख विद्यार्थियों के लिए प्रत्येक विद्यार्थी के लिए २०००.०० रुपये की दर से अनावर्तक व्यय	२४.०
(२) पत्राचार पाठ्यक्रम	
(१) १.५ लाख शिक्षकों के लिए प्रति विद्यार्थी ४०० रुपये की दर से आवर्तक व्यय	६.००
(२) १० केन्द्रों को ५ लाख प्रति केन्द्र की दर से अनावर्तक अनुदान	०.५०
(३) अन्तःसेवाकालीन प्रशिक्षण	
(१) ४ लाख शिक्षकों (१ लाख विज्ञान शिक्षकों सहित) के लिए प्रति प्रशिक्षार्थी १५० रुपये की दर से आवर्तक अनुदान	६.०
(२) अनावर्तक अनुदान	१.५०
(४) विद्यमान संस्थाओं का विकास कार्यक्रम	
(१) १२०० प्राथमिक प्रशिक्षण शालाओं के लिए प्रत्येक संस्था को एक लाख रुपये की दर से अनावर्तक अनुदान।	१२.००
(२) छात्रवृत्तियाँ, वेतन वृद्धि के लिए आवर्तक अनुदान	१२.००

विभिन्न मदों पर व्यय

शिक्षक-प्रशिक्षण पर व्यय के अनेक मद होते हैं, जिनमें से कुछ प्रत्यक्ष और कुछ परोक्ष होते हैं। दोनों प्रकार के खर्च शिक्षक-प्रशिक्षण कार्यक्रम को सफल बनाने के लिए महत्त्वपूर्ण हैं। लेकिन दुर्भाग्य से इस प्रकार के व्यय के

आँकड़े सरलता से उपलब्ध नहीं हो पाते है, विशेष रूप से सन् १९४७ के पूर्व इस प्रकार के आँकड़ों का संकलन नहीं किया गया। सन् १९४९–५० से शिक्षक प्रशिक्षण शालाओं में पढ़ाने वाले शिक्षक-प्रशिक्षकों के वेतन पर किये जाने वाले व्यय के आँकड़े उपलब्ध हैं। असम, गुजरात, जम्मू-कश्मीर व मध्यप्रदेश के १९६४–६५ के बजट अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि बजट का ८५–९० प्रतिशत व्यय शिक्षकों के वेतन पर खर्च किया जाता है। उड़ीसा में शिक्षक प्रशिक्षकों के वेतन पर लगभग ८० प्रतिशत व्यय किया जाता है। इन आँकड़ों से यह बात स्पष्ट होती है कि प्रशिक्षण शालाओं के व्यय का अधिक प्रतिशत शिक्षक प्रशिक्षकों के वेतन पर खर्च किया जाता है। इसके अतिरिक्त अन्य मदों पर व्यय का अनुपात विभिन्न प्रशिक्षण शालाओं में भिन्न-भिन्न है। खेल के मैदान, प्रयोगशालाओं, भवन, पुस्तकालय एवं वाचनालय, श्रव्य-दृश्य सामग्री आदि पर प्रशिक्षण शालाएँ अपनी-अपनी आवश्यकतानुसार व्यय करती हैं, लेकिन इन मदों के लिए अधिक धनराशि उपलब्ध नहीं हो पाती है।

माध्यमिक शिक्षक महाविद्यालयों की वित्तीय अवस्था

शिक्षक महाविद्यालयों के वित्त सम्बन्धी आँकड़े व्यवस्थित रूप से उपलब्ध नहीं हैं। प्राथमिक प्रशिक्षण शालाओं और प्रशिक्षण महाविद्यालयों की वित्तीय स्थिति के सम्बन्ध में एक बात विशेष रूप से स्पष्ट होती है कि प्रशिक्षण शालाओं का अधिकांश आर्थिक भार राज्य सरकार वहन करती है जबकि माध्यमिक शिक्षक महाविद्यालयों में ५४·५ प्रतिशत संस्थाएँ गैर-सरकारी प्रबन्ध समितियों के अन्तर्गत है। इन गैर-सरकारी संस्थाओं में से केवल ३८ प्रतिशत संस्थाओं को सरकारी अनुदान प्राप्त होता है और १६·५ प्रतिशत संस्थाएँ ऐसी हैं जिनको सरकार से अनुदान प्राप्त नहीं होता है। माध्यमिक शिक्षक महाविद्यालयों को न केवल प्रदेश सरकारों से ही आर्थिक अनुदान प्राप्त होता है, बल्कि इनको केन्द्र सरकार, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद्, विश्वविद्यालय एवं विश्वविद्यालय अनुदान आयोग से भी वित्तीय सहायता प्राप्त होती है।

बिहार और उड़ीसा को छोड़कर सभी प्रदेशों में गैर-सरकारी शिक्षक महाविद्यालय स्थित हैं। अधिकांश प्रदेशों में गैर-सरकारी प्रशिक्षण महाविद्यालय राज्य सरकारों से आर्थिक अनुदान प्राप्त करते हैं। लेकिन केरल, राजस्थान, उत्तरप्रदेश और पश्चिमी बंगाल में ऐसी भी संस्थाएँ हैं, जिनको राज्य सरकार से अनुदान प्राप्त नहीं होता। ये संस्थाएँ अधिकांशतः अपनी वित्तीय

आवश्यकताओं के लिए विद्यार्थियों के शुल्क एवं प्रबन्ध समितियों के आर्थिक अनुदान पर निर्भर रहती है। सभी प्रदेशों एवं केन्द्र-शासित क्षेत्रों में राजक प्रशिक्षण संस्थाएँ हैं। सात प्रदेशों में राजकीय संस्थाओं का बाहुल्य (५० से १०० प्रतिशत) है। उड़ीसा में सभी प्रशिक्षण महाविद्यालय राजकीय हैं और एक महाविद्यालय राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद् द्वारा चलाया जाता है। उत्तरप्रदेश मे राजकीय प्रशिक्षण महाविद्यालयों का प्रतिशत (४%) न्यूनतम है। उड़ीसा और राजस्थान को छोड़कर अन्य प्रदेशों में विश्व-विद्यालयों के अन्तर्गत शिक्षा विभाग अथवा शिक्षा संकाय है। वित्तीय दृष्टि से ये शिक्षा संकाय अथवा विभाग आर्थिक अनुदान के लिए विश्वविद्यालयों पर निर्भर रहते हैं। विभिन्न प्रदेशों में जो व्यय राज्य अथवा गैर-सरकारी प्रबन्ध समितियों द्वारा प्रशिक्षण महाविद्यालयों पर किया जाता है, उसका विवरण निम्नलिखित तालिका से स्पष्ट होता है :—

तालिका

कुल व्यय (१९६३–६४) (००–रुपयों में)

प्रदेश	कुल व्यय ×			योग का औसत व्यय
	गैर-सरकारी	सरकारी	कुल	
आन्ध्र प्रदेश	१६८६(३)	७७२२(६)	९४०८(९)	१०४५
असम	२३४(२)	८५४(२)	१०८८(४)	२७२
बिहार	—	५३६२(७)	५३६२(७)	७६६
गुजरात	४०७२(८)	३३२० ५)	७३९२(३)	५६९
जम्मू-कश्मीर	५४२(१)	२२८२(२)	२७७०(३)	९२३
केरल	४७४०(१५)	१५९०(५)	६३३०(२०)	३१२
मध्यप्रदेश	२६०(१)	५८४४(१२)	९१०४(१३)	७००
तमिलनाडु	२१८९(११)	४४३२(८)	६६२१(१९)	३४८
महाराष्ट्र	६५२६(१३)	५५८४(८)	१२११०(२१)	५७७
मैसूर	३२६९ ७)	४३५२(८)	७६२१(१५)	५०८
उड़ीसा	—	३०००(४)	३०००(४)	७५०
पंजाब	५८५२ १४)	१०५८४(८)	१६४३६(२२)	७४७
राजस्थान	३७३०(५)	७७२८(३)	११४५८(८)	१४३२
उत्तरप्रदेश	१५००४(४४)	९२२५(९)	२४२२९(५३)	४५७
पश्चिमी बंगाल	२०८६(७)	१९२७९(१३)	२१३६५(२०)	१०६८
केन्द्र-शासित प्रदेश	६७६(२)	४५९०(५)	५२६६(७)	७५२

× महाविद्यालयों का योग कोष्ठक में दिखलाया गया है।

उपर्युक्त आँकड़ों से स्पष्ट होता है कि माध्यमिक शिक्षक-प्रशिक्षण कार्यक्रम में गैर-सरकारी प्रबन्ध समितियों का काफी सीमा तक आर्थिक योगदान है। माध्यमिक स्तर के शिक्षक-प्रशिक्षण का उत्तरदायित्व राज्य सरकारों ने पूर्ण रूप से वहन करना स्वीकार नहीं किया है लेकिन धीरे-धीरे राज्य सरकारों की गैर-सरकारी संस्थाओं के लिए आर्थिक अनुदान की नीति काफी उदार होती जा रही है। उत्तरप्रदेश सरकार ने गैर-सरकारी प्रशिक्षण महाविद्यालयों को अपनी अनुदान देने की सूची में सम्मिलित कर लिया है, जिससे उनकी स्थिति में सुधार हुआ है और कार्य करने की दशा अधिक अनुकूल हुई है। चतुर्थ योजना में अधिक वित्तीय सहायता देने के लिए विशेष रूप से शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालयों के लिए प्रावधान किया गया है, जो निम्नलिखित तालिका से स्पष्ट होता है :—

तालिका

माध्यमिक शिक्षक-प्रशिक्षण के लिए वित्त

	करोड़ रु०
(१) प्रशिक्षण सुविधाओं का विस्तार	
(१) ६७,००० अतिरिक्त शिक्षकों की प्रशिक्षण सुविधाओं के लिए आवर्तक व्यय (१५०० रु० प्रति छात्र)	१०.५०
(२) ४०,००० शिक्षकों के प्रशिक्षण सुविधाओं के लिए अनावर्तक व्यय (४००० प्रतिछात्र)	१६.००
(२) पत्राचार पाठ्यक्रम	
(१) ५०,००० अप्रशिक्षित अध्यापकों के लिए आवर्तक व्यय (७०० प्रति शिक्षक)	३.५०
(२) अनावर्तक व्यय	०.२५
(३) अन्तः सेवाकालीन प्रशिक्षण	
(१) १ लाख अध्यापकों के लिए वित्त (४०० रु० प्रति अध्यापक की दर)	४.००
(२) अनावर्तक व्यय	१.००
(४) विद्यमान संस्थाओं का विकास	
(१) १५० शिक्षक महाविद्यालयों का विकास २ लाख प्रति संस्था की दर से	३.००
(२) छात्रवृत्तियों एवं वेतनमानों की वृद्धि के लिए	४.४०

उपर्युक्त वित्तीय व्यवस्था चतुर्थ योजना में शिक्षक-प्रशिक्षण के विकास के लिए की गयी है। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग ने चतुर्थ योजना की अवधि के लिये शिक्षक महाविद्यालयों के भवन, पुस्तकालय, छात्रावास, श्रव्य-दृश्य सामग्री आदि के विकास एवं संकलन के लिए उदार होकर अनुदान दिया है। राजस्थान, कुरुक्षेत्र, इलाहाबाद, अलीगढ़, बनारस आदि विश्वविद्यालयों को एम. ए. (शिक्षा) के पाठ्यक्रम चलाने के लिए अनुदान दिये गये है। शोध एवं क्रियात्मक अनुसंधानों के लिए संस्थाओं को वित्तीय सहायता प्रदान की है जिसका विवरण अध्याय २१ में दिया गया है। कॉप (COPP) समिति ने यह सुझाव दिया है कि सरकार को नियमित रूप से आवर्तक एवं अनावर्तक व्यय के लिए अनुदान देना चाहिए, अन्यथा सस्थाओं का विकास सभव नहीं है। इस समिति के अनुसार १०० विद्यार्थियों वाला एक संस्था में १० शिक्षक प्रशिक्षक होने चाहिए। इस सस्था को ३.६० लाख आवर्तक और १.१६ अनावर्तक अनुदान प्रति वर्ष दिया जाना चाहिए। एक सामान्य प्रशिक्षण महाविद्यालय के पास एक भवन, एक स्कूल और तीन एकड़ भूमि होना आवश्यक है। इन न्यूनतम आवश्यकताओं को ध्यान में रख कर और बढती हुई कीमतों को आधार मानकर वित्तीय सहायता की व्यवस्था करनी चाहिए।

प्रति विद्यार्थी व्यय

अब हम इस बात का अध्ययन करेंगे कि प्रशिक्षण संस्थाओं में प्रति छात्र व्यय कितना होता है प्रति छात्र व्यय तीन बातों पर निर्भर करता है–एक शिक्षक का औसत वार्षिक वेतन (a), छात्र-शिक्षक अनुपात (t), और समस्त शिक्षकेतर लागतों की मद में किया गया खर्च जो एक शिक्षक के औसत वेतन के प्रतिशत के रूप में व्यक्त किया जा सके (r)। प्रतीकों की सहायता से हम इसको निम्न लिखित रूप से व्यक्त कर सकते है :—

$$\text{प्रति छात्र लागत} = \frac{a\,(l+r)}{t}$$

इसमे

a = एक शिक्षक का औसत वार्षिक वेतन

r = शिक्षक के वेतन की तुलना में शिक्षकेतर लागतों का अनुपात।

t = छात्र–शिक्षक अनुपात।

प्रशिक्षण शालाएँ

प्रति छात्र लागत के आँकड़े पूर्णतया उपलब्ध नहीं हैं और जो प्राप्त हैं वे भी अधिक विश्वसनीय नहीं हैं। निम्नलिखित तालिका से प्राथमिक स्तर पर प्रति प्रशिक्षार्थी लागत का बोध होता है :—

तालिका

प्राथमिक शिक्षक-प्रशिक्षण की प्रति छात्र लागत

प्रदेश	१९६३–६४	१९६४–६५
दिल्ली	उपलब्ध नहीं	४११.८०
पांडीचेरी	१४८.५०	५७३.५०
त्रिपुरा	१००३.१७	९७५.२३
हिमाचल प्रदेश	६१.५४	२३७.२८
तमिलनाडु	१४३.९१	२७९.१२
मध्यप्रदेश	२२५.००	२५७.००
राजस्थान	उपलब्ध नहीं	उपलब्ध नहीं
जम्मू-कश्मीर	४०६.४०	४३१.००

अन्य प्रदेशों से प्रति छात्र लागत व्यय उपलब्ध नहीं है। त्रिपुरा में प्रति छात्र लागत सबसे अधिक है। इस लागत के अधिक होने के अनेक कारण हैं। व्यय का अधिकांश भाग शिक्षकों के वेतन पर किया जाता है। केन्द्र-शासित प्रदेशों में प्रशिक्षार्थियों से शुल्क नहीं लिया जाता है। श्रव्य-दृश्य सामग्री, वाचनालय, पुस्तकालय, प्रयोगशालाएँ, क्रीड़ा, शिल्पकला आदि भी व्यय के मद हैं जिनके कारण प्रतिछात्र लागत व्यय बढ़ जाती है।

माध्यमिक प्रशिक्षण महाविद्यालय

गैर-सरकारी और सरकारी प्रशिक्षण महाविद्यालय दोनों एक दूसरे से काफी सीमा तक अन्तर रखते हैं, क्योंकि दोनों प्रकार की संस्थाओं में शिक्षकों की संख्या, उनके वेतन, भौतिक साधनों आदि में काफी भिन्नता होती है। यूँ इन दोनों प्रकार की संस्थाओं में औसत लागत में भी अन्तर होता है अतः माध्यमिक शिक्षक-प्रशिक्षण के द्वितीय राष्ट्रीय सर्वेक्षण ने इन दोनो प्रकार के महाविद्यालयों में प्रति छात्र लागत निकालते समय दोनों के औसत व्यय के योग को प्रत्येक संस्था की औसत प्रशिक्षार्थियों की संख्या से भाग देकर

निकाला। इस सर्वेक्षण के अनुसार विभिन्न प्रदेशों में प्रतिछात्र लागत निम्नलिखित तालिका में प्रस्तुत की गई है :—

तालिका

प्रति छात्र लागत (१९६४–६५)

प्रदेश	प्रति छात्र लागत
आन्ध्र प्रदेश	६१७
असम	३७४
बिहार	४४३
गुजरात	७१२
जम्मू-कश्मीर	८६७
केरल	२१७
मध्यप्रदेश	४८७
तमिलनाडु	४३३
महाराष्ट्र	६१९
मैसूर	६४९
उड़ीसा	८४४
पंजाब	४७१
राजस्थान	१०४२
उत्तरप्रदेश	४५९
पश्चिमी बंगाल	८५५
केन्द्र-शासित प्रदेश	९२८
कुल औसत	५५९

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट होता है कि राजस्थान मे प्रति छात्र लागत व्यय सबसे अधिक है। दूसरे नम्बर पर केन्द्र-शासित प्रदेश है। सबसे कम लागत व्यय केरल में है।

शिक्षक-प्रशिक्षण कार्यक्रम की वित्तीय व्यवस्था पर यदि एक विहंगम दृष्टि डाली जाए तो यह स्पष्ट होगा कि शिक्षक-प्रशिक्षण संस्थाओं की आर्थिक स्थिति संतोषजनक नही है। माध्यमिक प्रशिक्षण महाविद्यालयों की स्थिति आर्थिक दृष्टि से अधिक दयनीय है। लेकिन इस अध्ययन से यह भी स्पष्ट

होता है कि शिक्षक-प्रशिक्षण के महत्त्व को अब धीरे-धीरे स्वीकार किया जा रहा है। प्रारम्भिक वर्षों से ही शिक्षक-प्रशिक्षण के लिये योजनाओं में अलग से वित्तीय व्यवस्था नही की जाती थी, बल्कि इसको प्राथमिक एवं माध्यमिक शिक्षा के साथ ही संयुक्त कर दिया जाता था, जो निम्नलिखित तालिका से स्पष्ट होता है :—

तालिका

योजनाओं में शिक्षक-प्रशिक्षण के लिए वित्तीय व्यवस्था

मद	प्रथम योजना	द्वितीय योजना	तृतीय योजना	एकवर्षीय योजनाएँ (१९६६–६९)	चतुर्थ योजना (१९६९–७४)	पाँचवीं योजना (१९७४–७९)
१	२	३	४	५	६	७
शिक्षक-प्रशिक्षण	a	a	२३ (४)	९ ४ (३)	२१.१७ (२.६)	१४५ (४.६)

a. यह प्राथमिक एवं माध्यमिक वित्त के अन्तर्गत सम्मिलित किया गया।

उपर्युक्त विभाजन से अब शिक्षक-प्रशिक्षण कार्यक्रम के विकास के लिए धनराशि निश्चित हो गई है और तदनुसार प्रशिक्षण संस्थाओं को विकसित किया जा सकता है। यह भी संतोषजनक है कि शिक्षक-प्रशिक्षण कार्यक्रम के लिए अधिक धन का प्रावधान किया जा रहा है जो शिक्षक-प्रशिक्षण की बढ़ती हुई मांगों के लिए आवश्यक भी है।

वित्तीय व्यवस्था को समुचित एवं अधिक वैज्ञानिक बनाने को दृष्टि से यह आवश्यक है कि सर्वप्रथम इस बात का सर्वेक्षण किया जाए कि विद्यमान संस्थाओं के विकास के लिए कितनी न्यूनतम आवश्यकता है और प्रत्येक संस्था के लिए कम से कम कितने भौतिक साधनों की मांग है। इस मांग के आधार पर वित्तीय व्यवस्था करनी पड़ेगी। इसी के साथ-साथ दूसरा महत्त्वपूर्ण पक्ष यह भी है कि जो वित्तीय व्यवस्था इन संस्थाओं के भावी विकास के लिए की जाए उसका आधार देश में बढ़ती हुई कीमतों पर होना चाहिए क्योंकि वस्तुओं के मूल्यों में विगत दस वर्षों में बहुत वृद्धि हुई है। अतः शिक्षक

प्रशिक्षण की योजना बनाने से पूर्व सर्वेक्षण आवश्यक है। वस्तुओं के मूल्यों के सूचकांक के सकलन की अनिवार्यता को भी स्वीकार करना पड़ेगा। इस समय सर्वेक्षण के आधार पर जो प्रशिक्षण संस्थाओं के आँकड़े उपलब्ध हैं, वे लगभग दस वर्ष पुराने है जो अधिक विश्वसनीय नहीं कहे जा सकते हैं। प्रशिक्षण संस्थाओं के वित्त सम्बन्धी आँकड़ों का भी अभाव है। प्रति छात्र लागत निकालने का कार्य अभी अधिक नहीं हुआ है। देश में अवमूल्यन से वस्तुओं की कीमतों में बहुत वृद्धि हुई है। अब इस बात की आवश्यकता है कि इन मूल्यों की वृद्धि से प्रशिक्षण संस्थाओं को भौतिक साधनों को खरीदने के लिए कितनी धनराशि की अधिक जरुरत पड़ेगी। शिक्षक प्रशिक्षकों के वेतनमानों में निरन्तर वृद्धि हो रही है। इस बात के आँकड़े निकालने पड़ेंगे कि शिक्षकों के वेतन पर कुल लागत का कितना प्रतिशत व्यय होता है? अगर यह प्रतिशत अधिक है तो प्रशिक्षण संस्थाओं को अन्य कार्यक्रमों के लिए अधिक वित्तीय व्यवस्था करने की आवश्यकता पड़ेगी। ये प्रश्न आपस में इतने मिलेजुले हैं कि इन सब के संदर्भ में धन की व्यवस्था करनी पड़ेगी इन विभिन्न मदों पर व्यय निरन्तर बढ़ता जा रहा है और साथ ही यह भी अनुभव किया जा रहा है कि शिक्षक प्रशिक्षण के गुणात्मक विकास के लिए अधिक साधन सुविधाओं की आवश्यकता दिन प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। अतः जिस प्रकार से शिक्षा के अन्य क्षेत्र अधिक धन की माँग कर रहे हैं उसी प्रकार शिक्षक-प्रशिक्षण कार्यक्रम के अधिक अर्थ की माँग की अवहेलना नहीं की जा सकती। अच्छी शालाओं को चलाने के लिए सुयोग्य शिक्षक चाहिए और सुयोग्य शिक्षक भौतिक एवं मानवीय साधनों से सम्पन्न प्रशिक्षण संस्थाओं में ही प्रशिक्षित किए जा सकते हैं।

शिक्षा आयोग ने लिखा है कि सभी प्रकार की शिक्षा के स्तरों को ऊँचा उठाने के लिए अध्यापक-शिक्षण का बड़ा महत्व है, अतः अध्यापक शिक्षण को सुधारने का विशेष दायित्व केन्द्र को सम्भाल लेना चाहिए और इसके लिए केन्द्रीय और केन्द्र-प्रेरित दोनों प्रकार के क्षेत्रकों के लिए उदारता पूर्वक अर्थराशि की व्यवस्था करनी चाहिए। केन्द्रीय क्षेत्रक का विस्तार विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के माध्यम से किया जा सकता है। शिक्षा आयोग ने सिफारिश की है कि चौथी पंचवर्षीय आयोजना में अध्यापक-शिक्षा के लिए यथेष्ट वित्त-विनिधान किया जाना चाहिए और वह अर्थराशि विश्वविद्यालय अनुदान आयोग को सौंप दी जानी चाहिए। भावी आयोजनाओं

में इस प्रकार का राशि विनिधान जारी तो रखना ही होगा, साथ ही बढ़ाना भी पड़ेगा।

भारतीय शिक्षक प्रशिक्षक संघ एवं शिक्षा आयोग ने एक महत्त्वपूर्ण सुझाव यह दिया है कि वित्तीय दायित्व का समुचित पालन करने के लिए विश्वविद्यालय अनुदान आयोग और राष्ट्रीय शिक्षा अनुसंधान तथा प्रशिक्षण परिषद् के सहयोग से एक सम्मिलित स्थायी अध्यापक शिक्षा समिति बनानी चाहिए। इस समिति के सदस्य इस प्रकार हों—

१. विश्वविद्यालय अनुदान आयोग एवं राष्ट्रीय शिक्षा अनुसंधान तथा प्रशिक्षण परिषद् के प्रतिनिधि;

२. विश्वविद्यालयों के प्रतिनिधि;

३. राज्य अध्यापक-शिक्षक मंडलों के प्रतिनिधि (बारी-बारी से,)

४. स्कूल अध्यापक जिनमें कम-से-कम एक प्राथमिक अध्यापक हों;

५. अध्यापकों के संगठनों के प्रतिनिधि।

६. शिक्षाविद, और,

७. राष्ट्रीय अध्यापक-शिक्षक संघ का एक प्रतिनिधि।

अध्यापक शिक्षण की स्थायी समिति के पास अध्यापक शिक्षा के सभी पक्षों, जैसे पूर्व-स्नातक और स्नातकोत्तर दोनों ही स्तरों की सामान्य शिक्षा या वृत्तिक शिक्षा का काम होना चाहिए। इनके पास शिक्षक-प्रशिक्षण के स्तरों का विकास करना, अन्तः सेवाकालीन प्रशिक्षण की व्यवस्था, प्रशिक्षण संस्थाओं में आवधिक निरीक्षणों की व्यवस्था करना और सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य यह है कि विश्वविद्यालयों के शिक्षा सकायों, शिक्षा महाविद्यालयों एवं शालाओं के लिए अर्थराशि मंजूर करना।

इसी प्रकार प्रत्येक प्रदेश में राज्य अध्यापक शिक्षण मंडलों की स्थापना की उपयोगिता को भी स्वीकार किया गया है। इस समिति में निम्नलिखित सदस्य होते हैं—

१. प्रदेश के सभी विश्वविद्यालयों के एक-एक प्रतिनिधि;

२. प्रशिक्षण संस्थाओं के प्राचार्यों के प्रतिनिधि;

३. शिक्षक संघों के प्रतिनिधि;

४. शालाओं के प्रधानाध्यापकों के प्रतिनिधि;

५. शिक्षा विभाग के प्रतिनिधि; और

६. शिक्षा-विद,

राज्य अध्यापक शिक्षण मंडलों का कार्य सभी स्तर की प्रशिक्षण संस्थाओं मे समन्वय करना, उनके स्तरों में विकास करना, निरीक्षण की व्यवस्था करना, नई संस्थाओं को खोलने की स्वीकृति देना और प्रशिक्षण संस्थाओं के लिए वित्त की व्यवस्था और धनराशि मंजूर करना है। कुछ प्रदेशों मे राज्य अध्यापक शिक्षण मंडलों की स्थापना हो चुकी है। राजस्थान में भी एक ऐसा ही मडल स्थापित हो चुका है, जो शिक्षक-प्रशिक्षण कार्यक्रम में समन्वय करता है। लेकिन अभी इन मंडलों का कार्य-क्षेत्र अधिक स्पष्ट नही हो पाया है। भविष्य मे यह उचित होगा कि राज्य अध्यापक शिक्षण मंडलो को धनराशि स्वीकृत करने का उत्तरदायित्व सौंप दिया जाए और ये मंडल प्रत्येक संस्था की आवश्यकताओं का विश्लेषण करके तद्नुसार आर्थिक अनुदान प्रदान करें।

———

१६

शिक्षक-प्रशिक्षण संस्थाओं में अन्त:सेवा प्रशिक्षण कार्यक्रम

अन्त:सेवा प्रशिक्षण कार्यक्रम का जन्म हुए बहुत अधिक समय व्यतीत नहीं हुआ है। इसकी आवश्यकता इसलिए अनुभव हुई है कि मानवीय प्रयत्नों और ज्ञान के क्षेत्र में एक विस्फोट हुआ है जिसके कारण कार्यकर्ताओं के के लिये अपने व्यवसाय में आधुनिकतम विज्ञान से व्यावसायिक कुशलता बनाए रखना आवश्यक हो गया है। प्रगतिशील कार्यकर्ताओं को अपनी व्यावसायिक कुशलता की वृद्धि के लिए नई विधियों का सहारा लेना पड़ता है। परम्परागत स्वाध्याय मात्र के माध्यम से ही अब वे ज्ञान–विज्ञान में होने वाले निरन्तर और द्रुत परिवर्तन से परिचित नहीं हो सकते हैं। इस कारण अन्त.सेवा प्रशिक्षण की नवीन तकनीकों का जन्म हुआ है। शिक्षा में अन्त:सेवा प्रशिक्षण की उपयोगिता का अनुभव बाद में हुआ है, क्योंकि उद्योग, कृषि, आयुर्विज्ञान आदि में व्यावसायिक दृष्टि से नवीनतम सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिक परिवर्तनों से अवगत होने की अनिवार्यता बहुत पहले अनुभव की गई। यह अनुभव किया गया कि जो भी व्यक्ति अथवा संस्था, कृषि, आयुर्विज्ञान अथवा उद्योग के क्षेत्र में नई तकनीकों और ज्ञान से अवगत नही हो सका वह व्यावसायिक होड़ में अन्य प्रगतिशील संस्थाओं अथवा व्यक्तियों से पिछड़ गया है। इसी प्रकार आज शिक्षा में भी अन्त: सेवा कालीन प्रशिक्षण की आवश्यकता अनुभव की जाने लगी है।

अन्त:सेवा प्रशिक्षण की आवश्यकता

प्रश्न यह उठता है कि शिक्षक–प्रशिक्षण संस्थाओं को अन्त:सेवा प्रशिक्षण कार्यक्रम की व्यवस्था की क्यों आवश्यकता है? इस प्रश्न के अनेक

उत्तर हैं। यह एक निर्विवाद सत्य है कि शिक्षा एक सतत और जीवन पर्यन्त प्रक्रिया है, क्योंकि ज्ञान–विज्ञान का भण्डार अनन्त है। अतः शिक्षक–प्रशिक्षण संस्थाओं में प्राप्त एकवर्षीय अथवा द्विवर्षीय पूर्व–सेवा कालीन प्रशिक्षण जीवन भर के लिए पूर्ण नहीं कहा जा सकता है। यह पूर्व–सेवा कालीन प्रशिक्षण शिक्षक को व्यवसाय सम्बन्धी एक दृष्टिकोण और अन्तर्दृष्टि प्रदान करता है। शिक्षक अपने ज्ञान का अर्जन और अनुभव व्यवहार में रह कर ही करता है। उसको व्यवसाय की समस्याएँ कार्य करते हुए ही अनुभव होती है, जिनका वह निराकरण करना चाहता है। इस समय शिक्षक को उस ज्ञान की आवश्यकता होती है जिसके आधार पर वह अपनी शैक्षिक समस्याओं का समाधान कर सके।

आज के युग में ज्ञान–विज्ञान में द्रुत परिवर्तन हो रहे हैं। शिक्षक का कार्य है कि वह आज के बालक को भविष्य के लिए तैयार करे। वह भविष्य अस्पष्ट और परिवर्तनशील है। अतः उसके भावी जीवन की तैयारी के लिए शिक्षक को बालक को न केवल सैद्धान्तिक ज्ञान की शिक्षा ही देना चाहिए बल्कि इस प्रकार की क्षमताओं और योग्यताओं को उत्पन्न करना चाहिए जिससे वह स्वयं ज्ञान का अन्वेषण करने के योग्य बन सके। इस प्रकार की शिक्षा देने के लिए शिक्षक को परम्परागत ज्ञान और शिक्षण विधियों का आसरा लेने से काम नहीं चल सकता है। उसे नए विचारों और अभिनव परिवर्तनों को स्वीकार करना पड़ेगा। कुछ विषयों में शोध और अन्वेषण के आधार पर द्रुतगामी परिवर्तन हो रहे हैं। विज्ञान, गणित, अर्थशास्त्र, राजनीति-शास्त्र, अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध, भूगोल आदि विषयों में निरन्तर नए विचार, नई परिभाषाएँ और अवधारणाएँ उत्पन्न हो रही हैं। जिनके फलस्वरूप सामाजिक और आर्थिक ढाँचे में महान परिवर्तन हो रहे हैं। आधुनिकीकरण की प्रक्रिया से कोई भी समाज अछूता नहीं है। इसी प्रकार मनोविज्ञान के क्षेत्र में भी नई खोजे हो रही हैं। सीखने के नवीन सिद्धान्त प्रतिपादित किये जा रहे हैं और इनके आधार पर नवीन शिक्षण सामग्री का उत्पादन हो रहा है। इन नवीन परिस्थितियों में नई शिक्षण विधियाँ जन्म ले रही हैं। इन विधियों से शिक्षक को परिचित होना चाहिए। इसी के साथ-साथ जीवविज्ञान में मानव विकास के सम्बन्ध में अनेक प्रयोग और परीक्षण किए जा रहे हैं और मानव के विकास से सम्बन्धित नए तथ्यों का पता लग रहा है। जीव विज्ञान की इन खोजों का प्रभाव अन्य क्षेत्रों पर पड़ना अवश्यम्भावी है। अतः शिक्षक को इन नवीन अन्वेषणों के परिणामों से अवगत होते रहना चाहिए।

सामान्यतः मानव में एक यह प्रवृत्ति दृष्टिगत होती है कि वह अपने परम्परागत अनुभवों और विधियों को ही सत्य मान लेता है। वह शिक्षण में उन विधियों को ही स्वीकार करता है जिनके माध्यम से उसने शिक्षा प्राप्त की है या जिनका वह स्वयं अभ्यस्त हो गया है। यह परिस्थिति किसी भी प्रगतिशील संस्था और व्यक्ति की दृष्टि से उपयोगी और वांछनीय नहीं है। इससे न शिक्षण संस्थाओं को और न बालकों को ही लाभ है। ये प्रगति के पथ की बाधाएँ हैं, जिनका निराकरण अत्यावश्यक है। इन परम्परागत और रूढ़िगत विधियों को दूर करने के लिए शिक्षक को अन्तःसेवाकालीन प्रशिक्षण देना चाहिए।

हमारे देश में विशेष रूप से सेवाकालीन प्रशिक्षण की सर्वाधिक आवश्यकता है, क्योंकि यहाँ शिक्षा के विकास और प्रसार का एक विस्तृत कार्यक्रम लागू किया गया है। शिक्षा को सामाजिक परिवर्तन का एक महान् माध्यम स्वीकार किया गया है। शिक्षा को ही सामाजिक क्रान्ति का अग्रदूत माना गया है। शिक्षा से जो बड़ी-बड़ी आकांक्षाएँ और आशाएँ की जा रही है उनकी पूर्ति के लिए शिक्षकों, प्रशासकों ओर शिक्षाशास्त्रियों के योगदान की आवश्यकता है। इनको शिक्षा में मार्गदर्शन और नेतृत्व करना पड़ेगा। इन सदस्यों को अपने दायित्वों को पूर्ण करने की दीक्षा देनी पड़ेगी और शिक्षा में होने वाले नवीन चिंतन का बोध कराना पड़ेगा। अन्तः सेवाकालीन प्रशिक्षण की आवश्यकता सर्वदा बनी रहेगी।

अन्तःसेवाकालीन प्रशिक्षण के आशय

भारतवर्ष में अन्तःसेवाकालीन प्रशिक्षण की विचारधारा बिल्कुल नई है, विगत कुछ वर्षों से इस प्रशिक्षण के कार्यक्रम और धारणा के स्पष्टीकरण के सम्बन्ध में कुछ प्रयत्न किए गए हैं। इसके अर्थ को अधिक स्पष्ट करने की दृष्टि से अन्तः सेबाकालीन प्रशिक्षण को परिभाषित किया गया है। सर्वप्रथम दवे ने इसकी परिभाषा प्रस्तुत की :

"अन्तः सेवाकालीन प्रशिक्षण के अर्थ से तात्पर्य उस सतत शिक्षा पाठ्यक्रम से है जिसके अन्तर्गत शिक्षक को प्रथम प्रशिक्षण डिग्री अथवा डिप्लोमा के पश्चात् सम्पूर्ण सेवाकाल में अपनी व्यावसायिक योग्यता एवं क्षमता वृद्धि का प्रशिक्षण दिया जाता है।"

दवे ने अपनी परिभाषा का विस्तार करते हुए लिखा कि एक शिक्षक जो बी. एड. की परीक्षा के बाद अपने सेवाकाल में एम. एड. की परीक्षा

उत्तीर्ण करता हैं, उसका एम. एड. का अध्ययन अन्तः सेवाकालीन प्रशिक्षण के अन्तर्गत शामिल नहीं करना चाहिए। इस लेखक के अनुसार वे सब परीक्षाएँ जो एक अध्यापक किसी डिग्री प्राप्त करने के लिए उत्तीर्ण करता है अन्तः सेवाकालीन प्रशिक्षण की परिधि में नहीं आती है, क्योंकि इन एम.ए. अथवा एम.एड. की डिग्री से शिक्षक की उस व्यावसायिक योग्यता में वृद्धि नहीं होती है जिसकी शालाओं को आवश्यकता है। दवे की परिभाषा का विश्लेषण करने से स्पष्ट होता है कि इस परिभाषा के दो आधारबिन्दु हैं—

(१) कि प्रत्येक शिक्षक अन्तः सेवाकालीन प्रशिक्षण अपनी पूर्व-सेवा कालीन प्रशिक्षण की डिग्री अथवा डिप्लोमा उत्तीर्ण करने के पश्चात् प्राप्त करता है, और (२) कि अन्तःसेवाकालीन प्रशिक्षण के माध्यम से शिक्षक कोई डिग्री अथवा डिप्लोमा नहीं अर्जित करता है। यदि ध्यान दिया जाय तो यह परिभाषा कुछ आधारभूत तथ्यों की अवहेलना करती है। एक सत्य तो यह है कि भारतवर्ष में अभी भी शिक्षकों की बड़ी संख्या ऐसी है जो अप्रशिक्षित है, जिनके पास बी. एड. अथवा प्राथमिक स्तर अध्यापन का कोई डिप्लोमा नही है। प्रश्न यह है कि किसी भी अन्तःकालीन प्रशिक्षण कार्यक्रम में क्या इन शिक्षकों की अवहेलना की जा सकती है? दूसरा तथ्य यह है कि अन्तः सेवाकालीन प्रशिक्षण का उद्देश्य शिक्षक में व्यावसायिक विकास और परिवर्तन उत्पन्न करता है। ये परिवर्तन उसके ज्ञान, क्षमताओं, रुचियों, अभिरुचियों और अन्तर्दृष्टियों के क्षेत्र में किए जाते हैं। ज्ञानार्जन अन्तःसेवाकालीन प्रशिक्षण का मुख्य उद्देश्य है। यदि इस दृष्टि से दवे की परिभाषा की समालोचना की जाए तो स्पष्ट होगा कि इनसे अन्तः सेवाकालीन प्रशिक्षण के सम्पूर्ण उद्देश्य पूर्ण नहीं होते हैं। एम. ए., एम. एड. अथवा अन्य समकक्ष परीक्षाओं को उत्तीर्ण करने से शिक्षक का ज्ञान बढ़ रहा है और वह अधिक विषय-सामग्री से परिचित हो रहा है। इस ज्ञानवृद्धि का लाभ प्रत्यक्ष रूप से कक्षाओं पर पड़ता है उससे छात्र लाभान्वित होते हैं। अतः दवे का यह कथन कि अन्तःसेवाकालीन प्रशिक्षण का उद्देश्य केवल उस सीमित व्यावसायिक प्रशिक्षण, संगोष्ठी, सेमिनार अथवा अन्य कार्यक्रमों तक ही है और इससे किसी डिग्री या सर्टिफिकेट की प्राप्ति नहीं होनी चाहिए, देश की आवश्यकताओं को देखते हुए पूर्ण नहीं है। सम्भवतः यह परिभाषा किसी भी देश के संदर्भ से पूर्ण नहीं है, क्योंकि अमेरिका जैसे उन्नत देश में, जहाँ सभी शिक्षक

सेवाकार्य में प्रवेश करने से पूर्व प्रशिक्षण की डिग्री भी रखते हैं, शिक्षकों को अपने सेवाकाल में उस प्रकार के पाठ्यक्रम, कोर्स अथवा परीक्षाएँ उत्तीर्ण करनी पड़ती है जिनको व्यावसायिक योग्यता की दृष्टि से आवश्यक समझा जाता है।

भारतवर्ष में अन्तःसेवाकालीन प्रशिक्षण की परिभाषा शिक्षकों की वर्तमान अवस्था को देखते हुए करनी चाहिए। आज देश में ऐसे शिक्षक हैं जो शालाओं में निर्धारित न्यूनतम योग्यता नहीं रखते हैं। वे विषय-ज्ञान में अपूर्ण हैं और किसी भी प्रकार के पूर्व-सेवाकालीन प्रशिक्षण की डिग्री अथवा डिप्लोमा नहीं रखते हैं। ये शिक्षक अपने सेवाकाल में बी. ए., एम. ए., बी.एड. अथवा एम. एड. की डिग्रियाँ प्राप्त करते हैं और अपनी व्यावसायिक योग्यता को बढ़ाते हैं। इन शिक्षकों को ध्यान में रखते हुए अन्तःसेवाकालीन प्रशिक्षण की परिभाषा देने की आवश्यकता है। बुच ने अपनी परिभाषा में इसके अर्थ को व्यापक बनाया है। उसने लिखा है—

अन्तःसेवाकालीन प्रशिक्षण उन सभी क्रिया-कलापों को सम्मिलित करता है जिनमें शिक्षक अपने सेवाकाल में अपनी व्यावसायिक योग्यता को बढ़ाने के लिए प्रयत्न करता है। इस प्रकार की सम्पूर्ण क्रियाएँ जिनके द्वारा अन्तर्दृष्टि, शिक्षण में परिवर्तन, पाठ्यक्रम सामग्री में उन्नयन, कार्यपद्धति में सहयोग की वृद्धि और शैक्षिक समस्या को समझने में सहायता मिले, अन्तः सेवाकालीन प्रशिक्षण की परिभाषा की परिधि में संयुक्त किए जा सकते हैं।

बुच की परिभाषा अधिक व्यापक है। लेकिन उपर्युक्त परिभाषा से यह स्पष्ट नहीं होता है कि इसमें सभी प्रकार के शिक्षकों—प्रशिक्षित और अप्रशिक्षित शिक्षकों को शामिल कर लिया गया है। इससे यह भी स्पष्ट नहीं होता है कि इसमें उन पाठ्यक्रमों को शामिल कर लिया गया है जो डिग्री अथवा डिप्लोमा की दृष्टि से शिक्षक अपने सेवाकाल में उत्तीर्ण करते हैं। इन तथ्यों को ध्यान में रखते हुए लेखक ने अन्तःकालीन प्रशिक्षण की परिभाषा दी है—

अन्तः सेवाकालीन प्रशिक्षण एक सतत प्रक्रिया है जिसके द्वारा सभी स्तर के अध्यापकों—प्रशिक्षित अथवा अप्रशिक्षित में व्यवहार परिवर्तन होता है। इस कार्यक्रम से चाहे वह केवल व्यावसायिक योग्यता प्राप्त करने की उत्प्रेरणा से या किसी डिग्री या डिप्लोमा प्राप्ति के उद्देश्य से प्रशिक्षण

प्राप्त किया जाए, नवीन अन्तर्दृष्टि एवं विचार शक्ति प्राप्त होती है और व्यावसायिक योग्यता में वृद्धि होती है।

उपर्युक्त परिभाषा के क्षेत्र में लगभग ८४,३२७ अथवा ३०.४ प्रतिशत माध्यमिक शिक्षक भी सम्मिलित हो जाते हैं जो प्रशिक्षित नहीं हैं। इनके अतिरिक्त देश में ऐसे अध्यापक भी हैं जो विषय पढ़ाने की न्यूनतम योग्यता नहीं रखते हैं। द्वितीय अखिल भारतीय शैक्षिक सर्वेक्षण के अनुसार देश में केवल ६५.१ प्रतिशत विज्ञान के अध्यापक न्यूनतम निर्धारित योग्यता रखते हैं। शेष अध्यापक अयोग्य हैं। इस सर्वेक्षण के अनुसार माध्यमिक शालाओं में २२.६ प्रतिशत विज्ञान शिक्षक हैं जो केवल हाई स्कूल अथवा इन्टर-मीडिएट परीक्षा उत्तीर्ण किए हुए हैं। इन कम शिक्षित और प्रशिक्षित अध्यापकों को सेवाकालीन प्रशिक्षण की आवश्यकता है। इनको अपने विषय ज्ञान की वृद्धि करना भी नितांत आवश्यक है और साथ ही प्रशिक्षण की डिग्री अथवा डिप्लोमा भी अर्जित करने की जरूरत है। अतः किसी भी अन्त: सेवाकालीन प्रशिक्षण कार्यक्रम के अन्तर्गत इन शिक्षकों की उपेक्षा नहीं की जा सकती। उनकी आवश्यकताओं के अनुरूप शिक्षक–प्रशिक्षण संस्थाओं को ऐसे पाठ्यक्रम निर्धारित करने पड़ेंगे जिससे ऐसे शिक्षक अपनी व्यावसायिक योग्यता बढ़ा सकें।

अन्त:सेवाकालीन प्रशिक्षण का विकास

भारतवर्ष में सुनियोजित अन्त:सेवाकालीन प्रशिक्षण का इतिहास बहुत पुराना नहीं है। कुछ प्रयास इधर-उधर व्यक्तिगत अथवा संस्थागत स्तर पर कुछ क्षेत्रों में किये गए थे। इस कार्य में अग्रणी प्रारम्भिक मिशनरी थे, जिन्होंने उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य में अन्त: सेवाकालीन प्रशिक्षण का कार्यक्रम चलाया था। इनमें पादरी डफ और लांग का नाम उल्लेखनीय है। सन् १८४६ में बंगाल में काउन्सिल ऑफ एज्युकेशन ने सर्वप्रथम एक नार्मल स्कूल की स्थापना की जिसमें प्राथमिक शालाओं के अध्यापकों के प्रशिक्षण की व्यवस्था की गई। लेकिन धनाभाव के कारण कुछ समय बाद काउन्सिल को इस कार्यक्रम का परित्याग करना पड़ा।

सन् १८५४ के विख्यात वुड–डिस्पेच में अन्त:सेवाकालीन शिक्षक–प्रशिक्षण की दिशा में कुछ निर्देश दिए गए—

हमारा वर्तमान उद्देश्य सेवारत शिक्षकों के स्तर में सुधार करना है... इन शिक्षकों को नार्मल स्कूल और उन विशिष्ट कक्षाओं में जो उनके

लिए आयोजित की जाए, उपस्थित होने के लिए प्रेरित किया जाए. . हम भारत की प्रत्येक प्रेसीडेन्सी में यथाशीघ्र इन सेवारत अध्यापकों के लिए नार्मल स्कूलों और इस प्रकार की कक्षाओं की स्थापना करना चाहते है।

वुड-डिस्पेच के पश्चात् देश में कुछ नार्मल स्कूलों की स्थापना की गई। सन् १८५६ में माध्यमिक शालाओं के लिए शिक्षक-प्रशिक्षण के लिए मद्रास मे एक शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालय खोला गया। लगभग पचास वर्ष तक देश भर में केवल यही एक महाविद्यालय विद्यमान था।

सन् १८८२ में भारत सरकार ने एक भारतीय शिक्षा आयोग की स्थापना की। इस आयोग ने शिक्षक-प्रशिक्षण के सम्बन्ध में निम्नलिखित सुझाव दिये—

(१) शिक्षा के सिद्धान्त और अध्यापनाभ्यास की परीक्षाए प्रारम्भ की जाएँ, और इन परीक्षाओं में उत्तीर्ण होना, राजकीय अथवा अनुदान प्राप्त माध्यमिक शालाओं के प्रत्येक प्रत्याशी अध्यापक के लिए एक अनिवार्य शर्त रखी जाए।

(२) एक ग्रेज्युएट अध्यापक के लिए नार्मल स्कूलों में कम अवधि का शिक्षा सिद्धान्त और अध्यापाभ्यास पाठ्यक्रम प्रारम्भ किया जाए।

उपर्युक्त दोनों प्रकार के सुझावों का अध्ययन करने से ज्ञात होगा कि तत्कालीन सरकार शिक्षकों के व्यावसायिक प्रशिक्षण कार्यक्रम को देश मे प्रारम्भ करना चाहती थी, क्योंकि उस समय स्कूलों में शिक्षक अप्रशिक्षित थे। इन दोनों आयोगों के सुझाव वस्तुत: अन्त.सेवाकालीन प्रशिक्षण से सम्बन्धित न होकर पूर्व-सेवाकालीन प्रशिक्षण के सम्बन्ध में थे। उस काल में जब पूर्व-सेवाकालीन प्रशिक्षण की ही व्यवस्था नही थी, उस समय अन्त: सेवाकालीन प्रशिक्षण के प्रावधान की बात सोचना ही निरर्थक था। जब सन् १८५४ के पश्चात् पूर्व-सेवाकालीन शिक्षक प्रशिक्षण संस्थाओं का जन्म हो गया और प्रशिक्षित शिक्षक शालाओं में उपलब्ध होने लगे, तब लार्ड कर्जन के सन् १९०४ के शिक्षानीति-प्रस्ताव में अन्त:सेवाकालीन प्रशिक्षण की चर्चा की गई। इसमें लिखा था—

इस बात की सावधानी बरतनी चाहिए कि शिक्षक-प्रशिक्षण संस्थाओं और शालाओं में सम्बन्ध रहे। यह न हो कि शिक्षक शाला में सेवा प्राप्त करने के पश्चात् उन शिक्षाविधियों को भूल जाएँ जो उसने शिक्षक प्रशिक्षण महा-महाविद्यालय में सीखी थी। उसको इस बात से भी बचाना है कि वह शाला में

रूढिवादी अध्यापकों के समान ही परम्परागत विधियों से न पढाने लगे, क्योंकि ऐसा बहुधा देखने में आया है। इस प्रकार की व्यवस्था की जानी चाहिए कि शालाओं से प्रशिक्षित शिक्षकों को कभी-कभी एकत्रित किया जाए ताकि महाविद्यालयों का प्रभाव शालाओं तक प्रवाहित होता रहे। शाला निरीक्षकों को शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालयों को इस कार्य में सहायता देनी चाहिए।

वास्तव में अन्तःसेवाकालीन प्रशिक्षण की चर्चा कर्जन के प्रस्ताव में सर्वप्रथम की गई थी। इसी बात को भारत सरकार के सन् १९१३ के शिक्षा प्रस्ताव में दोहराया गया। इस प्रस्ताव में पुनः कहा गया—

उन विद्यार्थियों को जिनको शिक्षक प्रशिक्षक महाविद्यालयों ने प्रशिक्षित किया, कभी-कभी महाविद्यालयों में आमंत्रित किया जाए। उनको एकत्रित करने में शाला निरीक्षकों को सहयोग देना चाहिए। इस प्रकार के सम्मेलनों से महाविद्यालयों की शिक्षण विधियाँ शालाओं को प्रभावित करेंगी। यदि शिक्षक को उसके ऊपर ही छोड़ दिया जाए तो भय है कि कहीं उसका विकास कुंठित हो जाए। अतः शाला अवकाश में पुनश्चर्या और उच्चस्तरीय प्रशिक्षण कार्यक्रम शिक्षकों के लिए चलाने चाहिए।

अन्तःसेवाकालीन प्रशिक्षण के महत्त्व को कर्जन-प्रस्ताव के बाद सभी भारत सरकार के प्रस्तावों, समितियों अथवा आयोगों ने स्वीकार किया। १९२९ के सर हर्टाग समिति ने अन्तःसेवाकालीन प्रशिक्षण के सम्बन्ध में लिखा—

उन परिस्थितियों में भी जहाँ पर सुशिक्षित एवं सुयोग्य शिक्षकों का चयन किया जाता है, शिक्षक अलग और एकान्त में पड़ जाता है और उसको अनेक बार प्रेरणा और मार्गदर्शन की आवश्यकता पड़ती है। शिक्षकों के विकास में पत्र-पत्रिकाएँ, पुनश्चर्या, पाठ्यक्रम सम्मेलन आदि बड़ा योगदान देते है।

हर्टाग समिति के सुझावों के पश्चात् अन्तःसेवाकालीन प्रशिक्षण के लिए यत्र-तत्र कुछ प्रयत्न किए गये। तत्कालीन उत्तरप्रदेश सरकार ने शालाओं के सेवारत शिक्षकों के लिए एक पुनश्चर्या पाठ्यक्रम की योजना तैयार की और विश्वविद्यालयों में ये पठ्यक्रम आयोजित किये गये। विश्वविद्यालयों के अध्यापकों ने इस कार्यक्रम के अन्तर्गत पढ़ाने में योगदान दिया। कुछ समय के पश्चात् अर्थाभाव के कारण इस योजना को समाप्त करना पड़ा। इसी प्रकार मद्रास

सरकार ने अवकाश के लिए कुछ पाठ्यक्रम आयोजित किये, लेकिन इस योजना को भी त्यागना पडा। हर्टाग समिति की सिफारिशों के बाद भी अन्त:सेवा-कालीन प्रशिक्षण का कोई योजनाबद्ध कार्यक्रम न बन सका।

सन् १९३७ में ऐबट और वुड का व्यावसायिक शिक्षा पर प्रतिवेदन प्रकाशित हुआ। इस प्रतिवेदन में प्रशिक्षण के दो भागों पर विशद रूप से उल्लेख किया गया, प्रथम, पूर्व-सेवाकालीन प्रशिक्षण और द्वितीय, अन्त:सेवा-कालीन प्रशिक्षण। इनके सम्बन्ध में प्रतिवेदन मे लिखा था—

हम इस राय के है कि शिक्षकों के प्रशिक्षण को दो भागों मे विभाजित किया जाए। प्रथम, पूर्व-सेवाकालीन प्रशिक्षण जो नार्मल स्कूलों में प्राप्त किया जाए। इसके बाद पुनश्चर्या कार्यक्रम शालाओ में कार्य करने वाले अध्यापको के लिये आयोजित किए जाएँ। द्वितीय प्रकार के प्रशिक्षण की व्यवस्था, देश की स्थिति और विशेष रूप से ग्रामीण शिक्षकों की दृष्टि से, अभी विकसित नही हुई है। यदि शिक्षको में सेवा में प्रवेश होने से पूर्व ज्ञान को अक्षुण्ण बनाए रखना है, यदि उनकी शिक्षण क्षमता का विकास करना है तो यह आवश्यक है कि उनको पुनश्चर्या पाठ्यक्रमों में सम्मिलित होने के अवसर प्रदान किए जाएँ। इन दोनों प्रकार के पाठ्यक्रमों को व्यावहारिक रूप देने का समय नहीं आया है। लेकिन कुछ समय पश्चात् प्रत्येक प्रदेश में एक राजकीय शिक्षक प्रशिक्षण संस्था होनी चाहिए जिसके पास भवन, साज-सज्जा और सुयोग्य शिक्षक प्रशिक्षकों की सुविधा हो। इन महाविद्यालयों वर्ष भर एक अथवा दो माह के अन्त:सेवाकालीन प्रशिक्षण कार्यक्रम चलते रहने चाहिए।

सन् १९४४ के भारत सरकार के "पोस्टवार एज्युकेशनल डेवलपमेन्ट इन इण्डिया" प्रतिवेदन में भी अन्त:सेवाकालीन प्रशिक्षण की उपादेयता पर प्रकाश डाला गया। इसमें लिखा है—

शिक्षकों को पूर्व सेवा प्रशिक्षण के साथ साथ अन्त: सेवाकालीन प्रशिक्षण भी समय-समय पर प्रदान करना चाहिए। इस प्रकार के पुनश्चर्या पाठ्यक्रमों में शाला पाठ्यक्रम के सभी विषयों का समावेश किया जाना चाहिए और साथ में उन रुचिकर तथा प्रगतिशील विचारों, तकनीक अथवा सामग्री से परिचित कराना चाहिए जो शिक्षक के व्यावसायिक विकास के लिए आवश्यक है। इस प्रकार का प्रशिक्षण भारत जैसे देश के लिए अत्यावश्यक है क्योंकि यहाँ एक बड़ी सख्या में अध्यापक एकान्त ग्रामीण शालाओं मे कार्य करते है।

सन् १९४४ से १९४८ के मध्य कुछ प्रदेशों में अन्तःसेवाकालीन प्रशिक्षण कार्यक्रम प्रारम्भ किये गये। सन् १९३३ से मद्रास प्रदेश में अंग्रेजी के अध्यापकों के लिए पुनश्चर्या कार्यक्रम आरम्भ हुये। मद्रास में ही सायंकालीन कक्षाएँ शुरू की गई। उत्तरप्रदेश में सामान्य विज्ञान के पुनश्चर्या कार्यक्रम आयोजित किये गये। सन् १९५० में मैसूर विश्वविद्यालय ने प्राध्यापकों के लिये ग्रीष्मकालीन पाठ्यक्रम चलाये। बम्बई के हैडमास्टर्स एसोसियेशन ने पुनश्चर्या पाठ्यक्रम आयोजित किया। राजस्थान में विद्याभवन शिक्षक महाविद्यालय ने सी. टी. विद्यार्थियों के लिए एक अन्तःसेवाकालीन प्रशिक्षण की व्यवस्था की। जो विद्यार्थी सी. टी. की परीक्षा उत्तीर्ण कर लेते थे, उनको परीक्षा के बाद एक वर्ष महाविद्यालय के प्राध्यापकों के पर्यवेक्षण में कक्षाध्यापन करना पड़ता था। प्रशिक्षार्थियों के लिये व्याख्यान मालाएँ आयोजित की जाती थीं और उनके लिए महाविद्यालय के पुस्तकालय की सुविधाएँ उपलब्ध थी।

सन् १९५३-५४ के माध्यमिक शिक्षा आयोग के प्रतिवेदन में अन्तःसेवा-कालीन प्रशिक्षण के महत्त्व को दोहराया गया। आयोग ने लिखा—

शिक्षक—प्रशिक्षण कार्यक्रम चाहे कितना ही अच्छा हो उससे सर्वश्रेष्ठ अध्यापक उत्पन्न नहीं किए जा सकते हैं....कार्यक्षमता में वृद्धि तभी हो सकती है जबकि इसके सुधार के लिए व्यक्तिगत और सामूहिक रूप से प्रयत्न किये जाएँ। शिक्षक-प्रशिक्षण संस्थाओं को अन्तःसेवाकालीन प्रशिक्षण का उत्तरदायित्व वहन करना चाहिए। इन संस्थाओं को पुनश्चर्या पाठ्यक्रम, अंशकालीन विभिन्न विषयों में प्रशिक्षण, संगोष्ठी, सम्मेलन तथा सेमिनार आयोजन का कार्य करना चाहिए। इन संस्थाओं के प्राध्यापकों को किसी स्कूल अथवा स्कूलों के समूहों के साथ परामर्शक के रूप में कार्य करना चाहिए।

माध्यमिक शिक्षा आयोग की सिफारिशों को क्रियान्वित करने की संभावनाओं का अध्ययन करने के लिए भारत सरकार ने एक अन्तर्राष्ट्रीय टीम का गठन किया। इस टीम ने भी सिफारिश की कि सेवारत शिक्षकों की व्यावसायिक प्रशिक्षण की व्यवस्था तुरन्त की जानी चाहिए। इसी वर्ष शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालयों के प्रधानाचार्य सम्मेलन ने भी अन्तःसेवाकालीन प्रशिक्षण की प्रगति के सम्बन्ध में विवेचना की।

इन विभिन्न आयोगों और समितियों और व्यावसायिक संगठनों की सिफारिशों का यह प्रभाव पड़ा कि भारत सरकार ने अन्तःसेवाकालीन प्रशिक्षण

कार्यक्रम की एक योजना बनाई। इस योजना के अन्तर्गत एक अखिल भारतीय काउन्सिल फार सेकन्डरी एजूकेशन की स्थापना सन् १९५५ में की गई। इस काउन्सिल को माध्यमिक शिक्षा के विकास का उत्तरदायित्व सौंपा गया। इसने सन् १९५५ में २४ माध्यमिक शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालयों में सेवा प्रसार विभागों की स्थापना की। सन् १९६५ तक इन सेवा प्रसार विभागों की संख्या में उत्तरोत्तर वृद्धि होती गई और इस वर्ष के अन्त तक देश में ९६ सेवा प्रसार विभाग स्थापित हो चुके थे।

इन दस वर्षों में केन्द्रीय शिक्षा प्रशासन में कुछ प्रशासनिक परिवर्तन हुये। सन् १९५९ में काउन्सिल का कार्य केवल केन्द्रीय शिक्षा मंत्रालय को सलाह देना हो गया। इसके स्थान पर डाइरेक्टरेट आफ एक्सटेन्शन प्रोग्राम फार सेकण्डरी एजूकेशन ने जन्म लिया और सेवा प्रसार का प्रशासन इस संस्था को सौंप दिया गया। इस संगठन में शीघ्र परिवर्तन हुआ और सन् १९६१ में राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् का गठन हुआ। सेवा प्रसार विभाग को इस परिषद् को सौंप दिया गया। इस परिषद ने प्राथमिक स्तर के शिक्षकों के लिए भी अन्त:सेवाकालीन प्रशिक्षण की आवश्यकता को अनुभव किया और सन् १९६२-६३ में तीस सेवा प्रसार विभाग प्राथमिक शिक्षक-प्रशिक्षण संस्थाओं में खोले गये। धीरे-धीरे इन प्राथमिक सेवा प्रसार विभागों की संख्या बढ़कर ४६ हो गई। इस प्रशासनिक प्रबन्ध में पुनः परिवर्तन किया गया। भारत सरकार ने इन माध्यमिक एवं प्राथमिक सेवा प्रसार विभागों का प्रशासन राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद् से लेकर विभिन्न प्रदेशों के शिक्षा विभागों को पहली अप्रैल, १९७१ को सौंप दिया। अब केन्द्र सरकार द्वारा चलाये गये देश के सम्पूर्ण सेवा प्रसार विभाग जो विभिन्न प्रदेशों में स्थित थे, प्रदेश सरकार के नियंत्रण और शासन के अन्तर्गत आ गये हैं। चतुर्थ पंचवर्षीय योजना के अन्त तक भारत सरकार ने इन सेवा प्रसार विभागों के चलाने के लिए आर्थिक अनुदान देने का आश्वासन दिया, लेकिन सन् १९७४ के बाद इनका व्यय प्रदेश सरकारों को वहन करना पड़ेगा। अधिकांश प्रदेशों ने इन सेवा प्रसार विभागों को भविष्य में चलाने का उत्तरदायित्व ले लिया है, लेकिन कुछ प्रदेश इनको चलाने के लिए हिचकिचा रहे हैं।

माध्यमिक शालाओं के अध्यापकों के लिए सेवा प्रसार विभाग माध्यमिक शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालयों के साथ संयुक्त किये गये हैं। एक

सेवा प्रसार विभाग का अधिकारी समन्वयक कहलाता है। प्रशासनिक दृष्टि से समन्वयक महाविद्यालय के प्रधानाचार्य के अधीन कार्य करता है। इन सेवा प्रसार विभागों को कार्य सुचारु रूप से चलाने के लिए एक लिपिक, एक जीप एवं ड्राईवर की सेवाएँ उपलब्ध हैं। इसके पास एक अपना पुस्तकालय होता है। इस पुस्तकालय की सेवाओं का उपयोग अध्यापक उठाते हैं। श्रव्य-दृश्य सामग्री भी इनके पास होती है, जिनका उपयोग शिक्षक लेते हैं। यह विभाग महाविद्यालय के प्राध्यापकों, शाला निरीक्षकों एवं अनुभवी प्रधानाध्यापकों और शिक्षकों की मदद से शालाओं को शैक्षणिक प्रयोग करने और प्रायोजना बनाने में सहयोग देते हैं। एक माध्यमिक सेवा प्रसार विभाग के साथ २५० से ३०० तक माध्यमिक शालाएँ संयुक्त होती हैं।

प्राथमिक शालाओं के लिए भी सेवा प्रसार विभागों के संगठन का आधार माध्यमिक सेवा प्रसार विभागों के अनुरूप है। केवल अन्तर यह है कि एक प्राथमिक सेवा प्रसार विभाग के साथ लगभग ५० प्राथमिक शालाएँ संयुक्त होती हैं। ये विभाग प्राथमिक शिक्षक-प्रशिक्षण संस्थाओं के साथ जुड़े हुए हैं।

प्रशिक्षण कार्यक्रम—उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि शिक्षक प्रशिक्षण संस्थाओं के कार्य का विस्तार हुआ है। अब तक ये संस्थाएँ पूर्व-सेवाकालीन प्रशिक्षण ही अपना उत्तरदायित्व समझती रही, लेकिन अन्त:सेवाकालीन प्रशिक्षण की जिम्मेदारी भी इनको सौंपी गई है। शिक्षक–प्रशिक्षण की परिभाषा में परिवर्तन हुआ है। इसका उद्देश्य शिक्षक के व्यावसायिक विकास को जीवन पर्यन्त विकासोन्मुख करना है। अब पूर्व–सेवाकालीन प्रशिक्षण ही शिक्षक के लिए पर्याप्त नहीं समझा जाता है। उसको भी सतत शिक्षा की आवश्यकता है। उसको शिक्षा में होने वाले परिवर्तनों से अवगत होना चाहिए। समाज की भावी आवश्यकताओं को ध्यान में रख कर शिक्षा के क्षेत्र में परिवर्तन की दिशा में अपना योगदान देना चाहिए। कक्षा में नई शिक्षा विधियों को प्रयोग करके छात्रों को सीखने की प्रक्रिया में अधिक मदद देनी चाहिए। इस प्रकार के कार्य को सेवा प्रसार विभाग करते हैं। पूर्व–सेवाकालीन प्रशिक्षण में प्राप्त ज्ञान को पुनश्चर्या कार्यक्रम द्वारा पुन: दुहराया जाता है। नई अन्तर्दृष्टि और नवीन परीक्षणों और प्रयोगों को शिक्षकों को बतलाने के लिए सेवा प्रसार विभाग अनेक प्रकार के कार्यक्रम आयोजित करते हैं जिनका संक्षिप्त वर्णन यहाँ पर किया गया है।

व्यावसायिक संगठन—सेवा प्रसार विभाग का प्रमुख उद्देश्य यह है वह शिक्षकों को अपने व्यावसायिक विकास के लिए प्रेरणा प्रदान करे । ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न की जाएँ जिनसे शिक्षक अपनी व्यावसायिक समस्याओं पर स्वयं विचार करें और उनको सुधारने का निर्णय भी स्वयं लें । इस दृष्टि से अनेक स्थानों में शिक्षकों के व्यावसायिक संगठन बने हैं जैसे विज्ञान शिक्षक संघ, प्रधानाध्यापक फोरम, अंग्रेजी शिक्षक संगठन आदि । इन प्रकार के संगठन अपने विषय से सम्बन्धित अथवा शाला सम्बन्धी शैक्षिक समस्याओं का समाधान करते हैं ।

कुछ संगठनों ने प्रकाशन का भी कार्य किया है । अपनी शैक्षिक समस्याओं तथा उनके उपचार पर जो विचार-विमर्श होता है उनका प्रतिवेदन प्रकाशित करते है अथवा शिक्षण की नवीन विधियों पर निर्देश पुस्तिकाएँ प्रकाशित करते हैं ।

इन व्यावसायिक संगठनों के सदस्यों का ज्ञान बढ़ाने की दृष्टि से इन सदस्यों को प्रगतिशील शिक्षा संस्थाओं के कार्य का अध्ययन करने के लिए भेजने की सुविधा भी दी जाती है । इस प्रकार के व्यय सेवा प्रसार विभाग वहन करता है ।

पुनश्चर्या पाठ्यक्रम—इस प्रकार के कार्यक्रम के अन्तर्गत विभिन्न सेवा प्रसार विभाग भिन्न-भिन्न प्रकार के क्रिया-कलापों का आयोजन करते है . ये स्थानीय आवश्यकताओं पर अधिक आश्रित होते हैं । कुछ सेवा प्रसार विभाग नये पदोन्नत प्रधानाध्यापकों के लिए कार्यगोष्ठियाँ आयोजित करते हैं जिनमें इन नये प्रधानाध्यापकों को उनके कार्य से सम्बन्धित ज्ञान और प्रशिक्षण दिया जाता है ।

शाला–विषयों की विषयवस्तु और उसके पढ़ाने की नवीन विधियों पर संगोष्ठियाँ, शिक्षकों के लिए आयोजित की जाती हैं । नवीन गणित, भौतिक शास्त्र, सामान्य विज्ञान, सामाजिक अध्ययन आदि अनेक नये विषयों के शाला पाठ्यक्रम में समावेश होने के कारण शिक्षकों को इनके अध्ययन–अध्यापन के लिए प्रशिक्षण की आवश्यकता पड़ी और सेवा प्रसार विभागों ने इस कार्यक्रम में शालाओं को मदद दी । मूल्यांकन की नवीन विधियों, अंग्रेजी अध्यापन में नवीन पद्धतियों आदि पर प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित किये जाते हैं ।

सघन शाला कार्यक्रम—कुछ सेवा प्रसार विभाग अपने अपने क्षेत्र के एक या दो स्कूलों का चयन करके उनके विकास के लिए कार्यक्रम सुनियोजित

तरीके से चलाते हैं। उनकी आवश्यकताओं का अध्ययन करके, शालाओं के प्रधानाचार्य एवं शिक्षकों से मिलकर शाला के विकास के लिए एक, दो या तीन वर्ष के लिये योजना बनाते हैं, और सामूहिक रूप से विकास कार्यक्रम को हाथ में लेते हैं। स्कूलों की शैक्षिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए सेवा प्रसार विभाग कार्य करते हैं, शालाओं में अच्छे पाठों का निर्देशन, श्रव्य–दृश्य उपकरणों की सुविधाओं को शाला तक पहुँचाना, शिक्षकों का नवीन विधियों से अध्यापन में मदद देना, पुस्तकालय से पुस्तकों की सेवा स्कूल को देना आदि कार्यक्रम द्वारा सघन रूप से शालाओं के विकास में योग दिया जाता है।

पुनश्चर्या प्रशिक्षण केन्द्र—राजस्थान शिक्षा विभाग ने अन्तःसेवा-कालीन प्रशिक्षण की दिशा में एक नवीन प्रयोग किया है। कुछ प्राथमिक शिक्षक प्रशिक्षण संस्थाओं से पूर्व सेवाकालीन प्रशिक्षण कार्यक्रम हटा दिया है। ये केन्द्र केवल अन्तःसेवाकालीन प्रशिक्षण कार्यक्रम प्राथमिक शिक्षकों के लिए आयोजित करते हैं। प्राथमिक स्कूलों के शिक्षक एक माह के लिए इस केन्द्र में उपस्थित होकर प्रशिक्षण लेते हैं। यह केन्द्र वर्ष भर इस प्रकार के अन्तःसेवाकालीन प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित करते हैं। अब तक इन केन्द्रों ने बड़ी संख्या में प्राथमिक शालाओं के शिक्षकों को नवीन विधियों, नये पाठ्य-क्रम और नवीन विषयवस्तु पर प्रशिक्षित कर दिया है।

पत्राचार द्वारा प्रशिक्षण—एक अथवा दो सेवा प्रसार विभागों ने पत्राचार विधि द्वारा अन्तःसेवाकालीन प्रशिक्षण का प्रयोग भी किया है। इसके माध्यम से प्रतिमास शिक्षकों को अध्ययन सामग्री प्रकाशित करके डाक द्वारा समय-समय पर भेजी जाती है। यह विधि इस प्रकार के प्रशिक्षण के लिए विदेशों में बहुत उपयोगी पाई गई लेकिन भारतवर्ष में इस विधि का अन्तःसेवाकालीन प्रशिक्षण के क्षेत्र में अधिक उपयोग नहीं हो पाया है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि अन्तःसेवाकालीन प्रशिक्षण का कोई लिखित पाठ्यक्रम नहीं है, और न इसकी कोई सीमा ही है। यह पाठ्य-क्रम दूसरे शब्दों मे, लचीला और अलिखित है। विभिन्न सेवा प्रसार विभाग शिक्षकों के प्रशिक्षण के लिए अपने साधनों, स्थानीय आवश्यकताओं और शिक्षकों की माँग को ध्यान में रख कर अन्तःसेवाकालीन प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित करते हैं। इन कार्यक्रमों में बहुत विविधता है। यह कार्यक्रम शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालयों की सूझ-बूझ और क्षमता पर निर्भर करता है।

प्रगतिशील संस्थाओं ने इस क्षेत्र में नये आयाम प्रस्तुत किये हैं और नई दिशा दी है। अब इस बात की आवश्यकता अधिक प्रतीत होती है कि सेवा प्रसार कार्यक्रम में शोध और अन्वेषण किये जाएँ और नई विधियों पर प्रयोग और परीक्षण किये जाएँ।

अन्य संस्थाओं का सहयोग

शिक्षक-प्रशिक्षण संस्थाओं, शिक्षकों और शिक्षक-प्रशिक्षकों को अन्त सेवाकालीन प्रशिक्षण कार्यक्रम में अन्य संस्थाएँ भी सहायता देती हैं। इनमें राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद और राज्य शिक्षा संस्थान उल्लेखनीय हैं।

जैसा कि पहले लिखा जा चुका है कि राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद की स्थापना भारत सरकार के शिक्षा मंत्रालय ने सन् १९६१ में की थी। इसका उद्देश्य शिक्षा में अनुसंधान और प्रशिक्षण करना है। इसके द्वारा शिक्षा की समस्याओं पर शोधकार्य किया जाता है और इन शोध और अन्वेषणों के परिणामों से अन्य शिक्षण संस्थाओं को परिचित करने के लिए प्रसार और प्रशिक्षण किया जाता है।

शाला स्तर के पाठ्यक्रम, पुस्तकों, शिक्षण विधियों एवं मूल्यांकन पर विचार-विनिमय किया जाता है। शालाओं के लिए विभिन्न विषयों पर आदर्श पाठ्यक्रम और आदर्श पाठ्यपुस्तकें लिखी जाती हैं। पाठ्यक्रम निर्माण और पाठ्यपुस्तकें लिखने के लिए शिक्षकों को प्रशिक्षित किया जाता है। शालाओं में परम्परागत मूल्यांकन पद्धतियों का सर्वेक्षण किया गया है। नवीन विधियों पर विचार किया गया और इस नई पद्धति का व्यापक रूप से देश में प्रचार किया गया है। इन सब कार्यों का उद्देश्य शाला-शिक्षा में विकास करना है।

शालाओं में शैक्षिक प्रयोग की प्रवृत्ति बढ़ाने के लिए परिषद् बहुत प्रयत्नशील है। शालाओं को शिक्षा में अन्वेषण एवं शोधकार्य के लिए आर्थिक रूप से अनुदान देने की योजना भी बनाई गई है। शिक्षकों को अपने विचारों और प्रयोगों की अभिव्यक्ति के लिए लेख लिखने के लिए परिषद् प्रोत्साहित करती है। इस कार्यक्रम को 'सेमीनार रीडिंग' प्रोग्राम कहते हैं। अच्छे स्तर के लेखों पर पुरस्कार देने की योजना है। इस सेमीनार रीडिंग कार्यक्रम में प्रत्येक वर्ष हजारों की संख्या में शिक्षक भाग लेते हैं।

परिषद ने शिक्षकों के अतिरिक्त महाविद्यालयों के प्राध्यापकों एवं समन्वयकों के लिए अन्तःसेवाकालीन प्रशिक्षण की व्यवस्था की है, प्रत्येक वर्ष ग्रीष्मकालीन शिविर पाँच सप्ताह के लिए आयोजित किये जाते हैं और उनमें शिक्षक प्रशिक्षकों को हिन्दी, शोध विधियों, शिक्षा में सामयिक समस्याएँ, नवीन मूल्यांकन आदि विषयों में प्रशिक्षण दिया जाता है । परिषद् द्वारा समन्वयकों के लिए विशिष्ट प्रकार का प्रशिक्षण कार्यक्रम भी आयोजित किया जाता है जिससे उनको अपने कार्य से सम्बन्धित नवीन विधाओं और तकनीकों का ज्ञान होता है । सन् १९६३ में भारत सरकार के शिक्षा मंत्रालय ने देश के प्रत्येक प्रदेश में राज्य शिक्षा संस्थान स्थापित करने की एक योजना बनाई। सन् १९६० में असम, मद्रास और केरल प्रदेशों को छोड़ कर अन्य सभी प्रदेशों में राज्य शिक्षा संस्थान खोले गए, इसके बाद इन तीन बचे हुए प्रदेशों में भी संस्थान खुल गए हैं । इन संस्थानों का कार्य भी प्रदेश स्तर पर उसी प्रकार के कार्यक्रम आयोजित करना है, जैसा कि केन्द्र में राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् करती है । राज्य शिक्षा संस्थान शोध, प्रशिक्षण, सेवा प्रसार और प्रकाशन के कार्यक्रम आयोजित करता है । अधिकांशतः इन संस्थाओं में प्राथमिक शालाओं और प्राथमिक शिक्षक–प्रशिक्षण संस्थाओं की शैक्षिक समस्याओं पर कार्य हो रहा है । ये प्राथमिक स्तर के शिक्षकों के लिए सेवा प्रसार का कार्य भी करते हैं । इन प्राथमिक शिक्षक–प्रशिक्षण संस्थाओं के पाठ्यक्रम, शिक्षण विधाओं और मूल्यांकन के विकास के लिए विचार–विमर्श होता है । शिक्षक प्रशिक्षकों के अन्तःसेवाकालीन प्रशिक्षण के लिए सेमीनार, संगोष्ठियाँ आदि आयोजित की जाती हैं और साहित्य प्रकाशित किया जाता है । राज्य शिक्षा संस्थान अपने प्रदेश के सभी प्रसार विभागों का मार्गदर्शन, परामर्श और समन्वय करते हैं ।

शनैः शनैः अन्तःसेवाकालीन प्रशिक्षण के महत्त्व को सर्वत्र स्वीकार किया जाने लगा । सेवाकालीन प्रशिक्षण देने के लिए अन्य प्रकार की संस्थाएँ अनेक प्रदेशों में खोली गईं । इनमें से प्रमुख राज्य विज्ञान शिक्षा संस्थान हैं, जिनका प्रमुख कार्य विज्ञान के क्षेत्र में शोध, प्रशिक्षण, सेवा प्रसार और प्रकाशन है । कुछ प्रदेशों में अंग्रेजी भाषा संस्थानों की स्थापना की गई है । इनका कार्य अंग्रेजी शिक्षण में विकास करना है । कुछ प्रदेश सरकारों ने मूल्यांकन विभाग भी खोले हैं । ये विभाग शालाओं में परीक्षा प्रणाली में सुधार लाने के लिये प्रयत्नशील हैं ।

प्रदेश के शिक्षा विभाग शिक्षकों की अन्त:सेवाकालीन प्रशिक्षण में अब बहुत रुचि लेने लगे हैं। उदाहरण के तौर पर राजस्थान के शिक्षा विभाग ने विगत वर्षों में नए पदोन्नत प्रधानाध्यापकों के लिए संगोष्ठियाँ आयोजित की। शालाओं में पढ़ाये जाने वाले विषय पर शिक्षकों के लिए ग्रीष्मकालीन शिविर आयोजित किए हैं।

राजस्थान के माध्यमिक बोर्ड ने शिक्षकों के अन्त:सेवाकालीन प्रशिक्षण के लिए एक वृहद कार्यक्रम आयोजित किया है। इस कार्यक्रम के अन्तर्गत मूल्यांकन पद्धति में सुधार, शिक्षण सामग्री का प्रकाशन, अच्छी पाठ्यपुस्तकों को लिखने की कला और विभिन्न विषयों के पाठ्यक्रम में सुधार आदि पर एक बड़ी संख्या में कार्यगोष्ठियाँ, सेमिनार अथवा ग्रीष्मकालीन शिविर आयोजित किए हैं। इस प्रकार माध्यमिक शिक्षा बोर्ड भी अन्त:सेवाकालीन प्रशिक्षण की एक सशक्त एजेन्सी बन गई।

एक अच्छे अन्त:सेवाकालीन प्रशिक्षण की विशेषताएँ:—उपर्युक्त विवेचन से अन्त:सेवाकालीन प्रशिक्षण के विविध प्रकार के कार्यकलापों का आभास मिलता है। कुछ सबल कार्यक्रम सतत रूप से चलाए जाते हैं। उनकी पुनरावृत्ति होती है और ऐसे कार्यक्रमों की माँग बनी रहती है। कुछ प्रयोग, शिक्षकों के आकर्षण के केन्द्र नहीं बनते हैं। ऐसे क्रियाकलाप स्वत: नष्ट हो जाते हैं। अत: प्रगतिशील सेवा प्रसार उस प्रकार के कार्यक्रम चलाने की इच्छा रखते हैं जिनको शिक्षक चाहते हैं। वे ऐसी क्रियाओं को विभाग का अंग बनाना चाहते है जो शालाओं की आवश्यकता की पूर्ति करते हैं और शिक्षकों को उपयोगी लगते है। इस सम्बन्ध में एक सर्वेक्षण किया गया और इस सर्वेक्षण से ज्ञात हुआ कि शिक्षक उन कार्यक्रमों को अधिक पसंद करते है जिनमें निम्नलिखित विशेषताएँ और सुविधाएँ होती हैं—

(१) शिक्षा निरीक्षक जिन अन्त:सेवाकालीन प्रशिक्षण में अधिक रुचि लेते है।

(२) कार्यक्रम सतत रूप से चलते रहते हैं।

(३) जहाँ शिक्षक यह अनुभव करते हैं कि यह उनका अपना कार्यक्रम है।

(४) जहाँ शिक्षा निरीक्षक शोध और शैक्षिक प्रयोग के लिए शिक्षकों को प्रेरित करते हैं।

(५) सामूहिक कार्य करने की सुविधाएँ प्राप्त होती हैं।

(६) प्रधानाध्यापक द्वारा शिक्षकों को अभिनव परिवर्तन के लिए प्रेरणा प्राप्त होती है।

(७) प्रधानाध्यापक शिक्षकों के शाला उन्नयन के सुझावों को सुनता है।

(८) जहाँ प्रधानाध्यापक सेवा प्रसार के कार्यों में मदद देता है।

प्रगतिशील समन्वयक हमेशा इस ओर प्रयत्नशील रहते हैं कि उनके सेवा प्रसार के कार्यक्रमों में शिक्षक अधिक योजना बनाते समय शिक्षकों और शाला निरीक्षकों की राय लेते हैं। मद्रास में स्थित एक सेवा प्रसार विभाग ने एक प्रश्नावली के माध्यम से सेवा प्रसार विभाग के कार्यक्रमों को सुधारने की दृष्टि से सुझाव माँगे। लगभग ३५० शिक्षकों ने प्रश्नावली के उत्तर दिए और इन उत्तरों के आधार पर उनके सुझावों को निम्नलिखित रूप से तालिकाबद्ध किया जा सकता है—

तालिका

सेवा प्रसार विभाग के कार्यक्रम के लिए शिक्षकों के सुझाव

सुझाव		प्रतिशत
(१)	अधिक निदर्शन पाठों की व्यवस्था	१९.४
(२)	क्षेत्रीय भाषा में पुस्तकों का वितरण	१६.६
(३)	श्रव्य-दृश्य सामग्री का अधिक उपयोग	१५.००
(४)	यात्रा भत्ते के वितरण की समुचित व्यवस्था	१४.५
(५)	सेवा प्रसार विभागों और राज्य शिक्षा विभाग में अधिक सहयोग	१३.१
(६)	सेवा प्रसार विभाग के कार्यक्रमों में वृद्धि	९.४
(७)	सघन कार्यक्रमों को अधिक महत्त्व	९.३
(८)	अधिक प्रोत्साहन	२.४

शिक्षकों ने प्रोत्साहन देने के लिए दो सुझाव दिए। प्रथम तो यह कि प्रत्येक अध्यापक की पाँच वर्ष की सेवा के बाद इस प्रकार के अन्तःसेवा-कालीन प्रशिक्षण में उपस्थिति अनिवार्य कर दी जाए। दूसरा सुझाव था कि इस प्रकार के प्रशिक्षण के बाद शिक्षकों के वेतन में वृद्धि की जाए।

अन्तः सेवाकालीन प्रशिक्षण का मूल्यांकन—किसी भी शैक्षिक कार्य का मूल्यांकन समय-समय पर करना चाहिए। इससे कार्य परम्परागत और

रूढ़िगत होने से बच जाता है। कार्य के मूल्यांकन से जो परिवर्तन और संशोधन किए जाते हैं उनसे कार्य में अधिक स्पष्टता और ताजगी उत्पन्न होती है। आज हमारे देश में सेवा प्रसार विभागों की स्थापना हुए लगभग बीस वर्ष हो जाएँगे। इसी अवधि में अनेक अन्य संस्थाओं ने भी अन्त: सेवाकालीन प्रशिक्षण का कार्यक्रम अपने हाथ में ले लिया है। अब वह समय है जबकि इस अन्त:सेवाकालीन प्रशिक्षण के आन्दोलन का परीक्षण और मूल्यांकन किया जाय। इस बात का सर्वेक्षण किया जाना चाहिए कि इस आंदोलन ने कितनी प्रगति की है। इस बात पर शोध किया जाए कि इसको किस प्रकार अधिक उपयोगी बनाया जाय और स्थायित्व दिया जाय। इस उद्देश्य से सर्वेक्षण दो दृष्टियों से किया जाना चाहिए। प्रथम तो अन्त:सेवाकालीन प्रशिक्षण संस्थाएँ ही स्वयं अपने कार्य का परीक्षण और मूल्यांकन करें। दूसरे, प्रदेश के राज्य शिक्षा संस्थान, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद और विश्व-विद्यालय प्रदेश अथवा राष्ट्रीय स्तर के अन्त:सेवा प्रशिक्षण कार्यक्रम का सर्वेक्षण करें। विदेशों में इस प्रकार के अध्ययन किए गये हैं और इन अध्ययनों से यह ज्ञात हुआ है कि सेवाकालीन प्रशिक्षण का अनुकूल प्रभाव शिक्षकों के व्याव-सायिक कार्य पर पड़ा है। हमारे देश भी एम.एड. और पीएच.डी. स्तर के कुछ शोधग्रन्थ अन्त:सेवाकालीन प्रशिक्षण कार्यक्रम से सम्बन्धित लिखे गये हैं। राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद् ने सन् १९६४ में कुछ सेवा प्रसार विभागों के कार्य का सर्वेक्षण किमा। इन विभिन्न सर्वेक्षणों से ज्ञात होता है कि शिक्षकों की अभिवृत्ति में सेवा प्रसार विभाग के कार्यक्रमों के फलस्वरूप कुछ परिवर्तन आया है। कुछ शालाओं में प्रत्यक्ष प्रभाव देखने के लिए मिलता अवश्य है। लेकिन इस प्रकार के मूल्यांकन की कुछ कठिनाइयाँ हैं। इन कठिनाइयों के कारण अन्त: सेवाकालीन प्रशिक्षण के प्रभाव को आँकना कठिन है। ऐसी ही कठिनाइयाँ राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद् के सर्वेक्षण दल ने अनुभव की जिनको संक्षेप में यहाँ उद्धृत किया गया है—

(१) शाला में सेवा प्रसार विभाग के कार्यक्रमों के प्रभाव का अध्ययन थोड़ी देर के निरीक्षण से नहीं किया जा सकता है,

(२) शालाओं के विकास में सेवा प्रसार विभाग ही प्रभाव नहीं डालता है बल्कि अनेक बाह्य परिस्थितियाँ शाला को प्रभावित करती है। अतः सेवा प्रसार विभाग के प्रभाव का मूल्यांकन कठिन है।

सर्वेक्षण की उपर्युक्त कठिनाइयों के होते हुए भी अन्तः सेवाकालीन प्रशिक्षण के कार्यक्रम के समय-समय पर मूल्यांकन के महत्त्व को स्वीकार करना चाहिए। इस मूल्यांकन के आधार पर अन्तः सेवाकालीन प्रशिक्षण कार्यक्रम, तकनीक, कार्यविधि, स्वरूप आदि में परिवर्तन लाना चाहिए। अतः अन्तः सेवाकालीन प्रशिक्षण एक सतत कार्यक्रम है और इसी के साथ इस कार्यक्रम का मूल्यांकन भी एक अनवरत प्रक्रिया है।

उपसंहार

सन् १९५५ में चौबीस सेवा प्रसार केन्द्रों की स्थापना एक ऐतिहासिक घटना थी। इसके बाद देश में एक सुनियोजित अन्तः सेवाकालीन प्रशिक्षण कार्यक्रम की स्थापना हुई थी। इस आन्दोलन ने शिक्षक–प्रशिक्षण की धारणा में परिवर्तन उत्पन्न किया। अब शिक्षक प्रशिक्षण संस्थाओं का कार्यकाल पूर्व सेवाकालीन प्रशिक्षण तक ही सीमित नहीं रहा बल्कि इसके साथ अन्तः सेवाकालीन प्रशिक्षण कार्यक्रम भी संयुक्त कर दिया गया है।

इस विचारधारा का कुछ क्षेत्रों में विरोध किया गया है। कुछ व्यक्तियों की यह धारणा है कि शिक्षक प्रशिक्षण संस्थाएँ पूर्व सेवा प्रशिक्षण कार्यक्रम को सुचारु रूप से नही चला पाती हैं। इन संस्थाओं में अभी भी परम्परागत अध्ययन–अध्यापन होता है अतः ये नई विधियों एवं तकनीकी के प्रशिक्षण देने के लिए समर्थ नहीं है। अतः अन्तः सेवाकालीन प्रशिक्षण कार्यक्रम शिक्षा विभाग का प्रत्यक्ष उत्तरदायित्व होना चाहिए और इसके लिए अन्य संस्थाओं की स्थापना की जानी चाहिए।

इस समय देश में सेवा प्रसार विभागों के अतिरिक्त राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद्, राज्य शिक्षा संस्थान, राज्य विज्ञान शिक्षा संस्थान, शिक्षा विभाग, माध्यमिक शिक्षा बोर्ड आदि अनेक संस्थाएँ अन्तः सेवाकालीन प्रशिक्षण क्षेत्र में कार्य कर रही है। अभी इस कार्यक्रम को अधिक सबल बनाने की आवश्यकता है और शिक्षकों को इन कार्यक्रमों में भाग लेने के लिए प्रेरणा की जरूरत है। इस दृष्टि से सेवाकालीन व्यावसायिक डिग्री प्राप्त करने की सुविधाएँ प्रदान करनी चाहिए। ऐसे पाठ्यक्रम ग्रीष्मावकाश, सायकालीन कक्षाओं अथवा अवकाश के दिनों में शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालयों को चलाने चाहिए जिनमें शिक्षकों को अध्ययन करने के पश्चात्

बी. एड., एम. एड. तथा अन्य समकक्ष डिग्री प्राप्त हो सके। इस प्रकार के प्रशिक्षण कार्यक्रमों के प्रति शिक्षक अधिक आकर्षित होते है।

समय-समय पर अन्त सेवाकालीन प्रशिक्षण कार्यक्रम पर पुनर्विचार किया जाना चाहिए। देश में चल रही गतिविधियों का मूल्यांकन करके कार्यक्रम मे सशोधन और परिवर्तन किया जाना चाहिए। शालाओं और शिक्षकों की माँगों को ध्यान मे रखकर जो कार्यक्रम निर्धारित किया जाएगा, वह अधिक उपयोगी और स्थायी हो सकता है। कार्यक्रम को स्थायित्व देने के लिए अनुवर्ती क्रिया—कलाप प्रणाली अपनानी चाहिए। इस अनुवर्तन कार्य-क्रम के लिए प्रधानाध्यापकों, व्यावसायिक संगठनों और शाला निरीक्षको का सहयोग प्राप्त करना चाहिए। अन्त: सेवाकालीन प्रशिक्षण को सबल बनाने के लिए चतुर्मुखी सहयोग की आवश्यकता है। इसमें शिक्षक—प्रशिक्षण संस्थाओं, केन्द्र और राज्य के विभिन्न शैक्षिक संगठनों, शिक्षा विभाग, प्रधानाध्यापक एवं शिक्षकों के सक्रिय सहयोग की आवश्यकता है।

२०

पंचवर्षीय योजनाओं में शिक्षक-प्रशिक्षण

भारत मे आयोजन का केन्द्रीय उद्देश्य जनता के जीवन स्तर को ऊँचा उठाना और उनके लिए एक अधिक समृद्धिशाली और विविधता पूर्ण जीवन के अवसर प्रदान करना है। इसलिए आयोजन का लक्ष्य एक ओर तो समाज मे प्राप्त जन और सम्पत्ति साधनों का अधिक प्रभावशाली ढंग से उपयोग करना है, दूसरी ओर आमदनी, धन और अवसर मे समानताएँ प्रदान करना है। इस आयोजन के अन्तर्गत सामाजिक ढाँचे का पुनर्निर्माण करना है जिससे कि समाज के सभी लोगो के लिए क्रमशः रोजगार, शिक्षा, बीमारी तथा अन्य असमर्थताओ के विरुद्ध सुरक्षा और समुचित आमदनी का पूरा-पूरा प्रबन्ध किया जाये। इन्ही उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए देश में योजनाबद्ध कार्य किया जा रहा है। पिछली चार योजनाओं की सफलताओं और असफलताओं को ध्यान में रखकर पाँचवीं पंचवर्षीय योजना की रूपरेखा तैयार की गई है।

योजनाओ के अन्तर्गत शिक्षा को सैद्धान्तिक रूप से एक महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया है। योजनाओं के निर्माताओं ने यह स्वीकार किया है कि देशवासियों की सहयोग भावना, व्यवस्थित नागरिक जीवन तथा आम जनता के सामाजिक कार्यो में बुद्धिमत्ता के साथ भाग लेने की योग्यता पर ही लोक-तन्त्र राज्य की सफलता निर्भर है। इसलिए यह बहुत आवश्यक है कि शिक्षा ऐसी हो कि प्रत्येक व्यक्ति अपने कर्तव्य को अधिकारों से अधिक महत्त्व देने लगे और समीक्षात्मक आकलन करने तथा ठीक तरह से सोचने-विचारने की उसकी आदत पड जाये। शिक्षा का उद्देश्य न केवल जागरूक नागरिक बनाना है बल्कि उससे भी अधिक महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करना है। शिक्षा देश की उत्पादनशीलता को बढ़ाने का प्रमुख यन्त्र है। शिक्षित समुदाय देश में अधिक वैज्ञानिक रीति से कार्य कर सकेगा। उत्पादन के विभिन्न साधनों का समुचित उपयोग कर सकेगा और देश मे उत्पादन के क्षेत्र में क्रान्ति ला

सकेगा जिसके लिए देशवासी कटिबद्ध हैं। इस तथ्य को शिक्षा आयोग ने विशेष महत्त्व देते हुए लिखा है—

भारत के भाग्य का निर्माण इस समय उसकी कक्षाओं में हो रहा है। हमारा विश्वास है कि यह कोई चमत्कारोक्ति नहीं है। विज्ञान और शिल्प विज्ञान पर आधारित इस दुनियां में, शिक्षा ही लोगों की खुशहाली, कल्याण और सुरक्षा के स्तर का निर्धारण करती है। हमारे कालेजों से निकलने वाले विद्यार्थियों की योग्यता और संस्था पर ही राष्ट्रीय पुर्ननिर्माण के उस महत्त्वपूर्ण कार्य की सफलता निर्भर करेगी जिसका प्रमुख लक्ष्य हमारे रहन-सहन का स्तर ऊँचा उठाना है। यह कार्य न तो अपनी तरह का अकेला ही है और न बिल्कुल नया ही। किन्तु स्वतन्त्रता की प्राप्ति के बाद से तथा राष्ट्रीय अर्थ-व्यवस्था के योजनाबद्ध विकास के तरीकों के अपनाये जाने के बाद से उसकी विशालता, गम्भीरता और शीघ्र ही उसे पूरा करने की आवश्यकता बढ गई है, उसमें एक नया अर्थ भी आ गया है तथा उसका एक नया महत्त्व भी हो गया है। यदि हमें राष्ट्रीय विकास की गति तेज करनी है तो शिक्षा सम्बन्धी एक सुलझी हुई दृढ़ और कल्पनापूर्ण नीति तथा शिक्षा मे प्राण डालने, उसमे सुधार करने तथा उसका विस्तार करने के लिए दृढ सकल्पपूर्ण एवं प्राणमय कार्यवाही करने की इस समय बड़ी आवश्यकता है।

शिक्षा के गुणात्मक सुधार में शिक्षकों का एक महत्त्वपूर्ण योगदान है। राष्ट्र की शिक्षा व्यवस्था में शाला भवन, साज-सामग्री, पाठ्यचर्या, पुस्तकें आदि बहुत महत्त्व रखती हैं लेकिन इन सब मे सर्वोपरि शिक्षक है। शिक्षक की सूझबूझ, योग्यता और कार्यक्षमता से ही भवन, पाठ्यचर्या और उपकरणों का समुचित उपयोग कक्षाओं के अन्दर हो सकता है। शिक्षक ही शाला के कार्यक्रम को प्राणवान् बना सकते है और विद्यार्थियों में एक नया जीवन फूँक सकते है। अतः शिक्षा में गुणात्मक सुधार के लिए यह अनिवार्य है कि शिक्षकों के लिये वृत्तिक शिक्षण का एक समुचित कार्यक्रम हो। अध्यापकों के प्रशिक्षण पर किये गये व्यय का प्रतिफल सचमुच काफी मूल्यवान होगा क्योंकि उसके परिणामस्वरूप लाखों छात्रों की शिक्षा में जितना सुधार होगा उसकी तुलना में आर्थिक व्यय की मात्रा बहुत कम होगी। शिक्षा के विकास में उत्कृष्ट कोटि की शिक्षक-प्रशिक्षण शालाएँ बहुत बड़ा सहयोग दे सकती है।

शिक्षक-प्रशिक्षण की चुनौतियाँ

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि यदि शालाओं में सुधार लाना

है तो शिक्षक-प्रशिक्षण कार्यक्रम में क्रांतिकारी सुधार होना चाहिए। इसके लिए योजनाओं में अधिक धनराशि का प्रावधान किया जाना आवश्यक है जिससे भावी विकास की नींव ठीक से डाली जा सके। शिक्षक-प्रशिक्षण की योजना बनाते समय इसकी विशेष आवश्यकताओं की ओर ध्यान दिया जाना चाहिए क्योंकि शिक्षा-जगत् में शिक्षक-प्रशिक्षण एक विशिष्ट स्थान रखता है। इसकी भावी समाज के लिए विशेष चुनौतियाँ और समस्याएँ हैं। शिक्षक प्रशिक्षण आयोजन में इन विशिष्ट समस्याओं एवं चुनौतियों के समाधान के लिए प्रावधान किया जाना चाहिए। विशेष रूप से भावी योजनाओं में शिक्षक प्रशिक्षण की निम्नलिखित आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए आयोजना बनानी चाहिए—

१. शालाओं की बढ़ती हुई संख्या और शाला में बढ़ती हुई छात्र-छात्राओं की संख्या को ध्यान में रखते हुये शिक्षक-प्रशिक्षण की आयोजना बनाई जाए, इसी के अनुपात में शिक्षक-प्रशिक्षण संस्थाओं की संख्या में वृद्धि की जानी चाहिए।

२. इसी के साथ-साथ शालाओं में वर्तमान अप्रशिक्षित अध्यापकों की संख्या को ध्यान में रखते हुए उनके प्रशिक्षण के कार्यक्रम निर्धारित किये जाएँ।

३. विज्ञान के शिक्षकों की कमी और मानविकी विषयों के अध्यापकों के बाहुल्य को ध्यान में रखकर आयोजन किया जाये। जन-शक्ति नियोजन को आधार मानकर शिक्षक-प्रशिक्षण संस्थाओं की संख्या निर्धारित की जानी चाहिए।

४. शिक्षक-प्रशिक्षण कार्यक्रम के गुणात्मक विकास की ओर ध्यान दिया जाना चाहिए। इस दृष्टि से पाठ्यचर्या, प्रशिक्षकों की योग्यता, शैक्षिक उपकरणों एवं अन्तःसेवाकालीन प्रशिक्षण के विकास कार्यक्रमों का प्रावधान किया जाना चाहिए। गुणात्मक विकास की दृष्टि से यह भी आवश्यक है कि प्रशिक्षार्थियों की प्रवेश के समय न्यूनतम योग्यता का स्तर बढ़ा देना चाहिए। तृतीय श्रेणी के स्नातकों के प्रवेश पर प्रतिबन्ध लगाना चाहिए।

५. शिक्षक-प्रशिक्षण के क्षेत्र में शोधकार्य को प्रोत्साहित किया जाना चाहिए और उच्चस्तरीय शोध अध्ययन केन्द्रों की स्थापना के लिए योजनाओं में प्रावधान किया जाना चाहिए।

६. शिक्षक प्रशिक्षण संस्थाओं में अपव्यय और अवरोधन को रोकने के उपाय किये जाने चाहिए।

७. शिक्षक-प्रशिक्षण संस्थाओं के भवन तथा अन्य उपकरणों के लिए अधिक प्रावधान किया जाना चाहिए।

८. विश्वविद्यालय अनुदान आयोग, विश्वविद्यालयों और राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसधान एवं प्रशिक्षण परिषद के कार्यो को समन्वित करके उनको शिक्षक-प्रशिक्षण के विकास के लिए अधिक क्रियाशील बनाने की योजना बनानी चाहिए।

९. शिक्षक-प्रशिक्षण के सर्वांगीण विकास के लिए अधिक वित्तीय साधनों का प्रावधान करने की नितांत आवश्यकता है।

शिक्षक-प्रशिक्षण की उपर्युक्त समस्याओं में से कुछ का निराकरण करने का प्रयत्न पिछली योजनाओं में किया गया है। इन प्रयत्नों का संक्षिप्त अध्ययन इस अध्याय में किया जाएगा और भावी आवश्यकताओं को ध्यान में रख कर योजना सम्बन्धी कुछ सुझाव दिये जायेंगे।

प्रथम योजना में शिक्षक प्रशिक्षण—

पहली पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत केन्द्रीय और राज्य सरकारों द्वारा शिक्षा विकास के लिए सन् १९५१–५६ की अवधि में २,०६९ करोड़ रुपये के खर्च की व्यवस्था की गई थी। यह सम्पूर्ण राशि ही देश की असीमित माँगों को देखते हुए बहुत कम थी, लेकिन यह योजना देश के सीमित साधनों को ही ध्यान में रख कर बनाई गई। अकेले शिक्षा के क्षेत्र में ही अपार धन राशि की आवश्यकता थी, क्योंकि उस समय शिक्षा सम्बन्धी सुविधाएँ पर्याप्त नहीं थी। योजना से पूर्व की स्थिति में ६–११ वर्ष की आयु के कुल ४० प्रतिशत, ११-१७ वर्ष की आयु के कुल १० प्रतिशत और १७-२३ वर्ष की आयु के ०·९ प्रतिशत व्यक्तियों को ही शिक्षा की सुविधाएँ मिल पाती थी जबकि विधान की यह माँग है कि इसके लागू होने के दस वर्ष के अन्दर ही प्रत्येक बच्चे को चौदह वर्ष की आयु तक निःशुल्क अनिवार्य शिक्षा की सुविधाएँ प्राप्त होनी चाहिए। भारत में शिक्षा विकास के लिए आर्थिक पूर्ति के उपाय और साधन बताने वाली कमेटी ने इस योजना में प्रति वर्ष लगभग चार सौ करोड़ रुपयों के खर्च का अनुमान लगाया था ताकि राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली में ६ से १४ वर्ष की आयु के शत-प्रतिशत बच्चों को शिक्षा की सुविधाएँ उपलब्ध हो सकें। इसके अतिरिक्त दो सौ करोड़ रुपया बेसिक और हाईस्कूल के अध्यापकों के

प्रशिक्षण देने के लिए आवश्यक माना गया। लगभग दो सौ बहत्तर करोड़ रुपया स्कूल के भवन निर्माण के लिए चाहिए था, जबकि १९४९–५० में शिक्षा पर कुल १०० करोड़ रुपया ही खर्च किया गया था। अतः साधनों की कमी को देखते हुए प्रथम योजना में इसके लिए १५६ करोड़ रुपये (३९ करोड़ केन्द्र और ११७ करोड़ राज्यों के लिए) का ही प्रावधान किया गया।

प्रथम योजना प्रारम्भ होने से पूर्व प्राथमिक शिक्षा के क्षेत्र में ६ से १४ वर्ष की आयु के विद्यार्थियों के लिए बेसिक शिक्षा प्रणाली आदर्श मान ली गई थी। बेसिक शिक्षा पद्धति को सफलता पूर्वक लागू करने के लिए योजना में विशेष प्रावधान किया गया। इसके लिए सबसे पहले इस बात की आवश्यकता अनुभव की गई कि बेसिक शिक्षा के तरीकों और शिक्षण प्रणाली का ऐसा विकास हो कि अधिकांश अल्प शिक्षित अध्यापक इसे अपना सकें। इसके लिए यह स्वीकार किया गया कि प्रत्येक प्रदेश मे एक ग्रुप बेसिक स्कूल का खोला जाय। प्रत्येक ग्रुप में अनेक बेसिक से पहले के स्कूल, एक पोस्ट बेसिक स्कूल, एक टीचर्स ट्रेनिग स्कूल और टीचर्स ट्रेनिग कालेज होना चाहिए। यह भी योजना बनाई गई कि परीक्षण के तौर पर कुछ बेसिक स्कूल शहरों में भी खोले जाएँ।

बेसिक शिक्षा पद्धति की नवीन योजना को सफल बनाने की दृष्टि से योजना में यह स्वीकार किया गया कि इसके लिए उपयुक्त प्रशिक्षित शिक्षक होना नितात आवश्यक है। योजना मे शिक्षक-प्रशिक्षण के विभिन्न पक्षों पर विचार किया गया। इसका उत्तरदायित्व केन्द्रीय सरकार, राज्य सरकार और गैर-सरकारी सस्थाओं पर छोड़ा गया। यह भी अनुभव किया गया कि बेसिक शिक्षा में विशेषज्ञों की सेवाओं के अतिरिक्त अन्य सहकारी समितियों के सहयोग की भी आवश्यकता है। प्रशिक्षण का कार्य दो भागों में बाँट दिया जाए और दोनों के कार्य एक साथ चलाये जाएँ। पहले भाग का यह काम हो कि वह शिक्षा प्रणाली की उन्नति करे, यह धीरे-धीरे ही सम्भव है। दूसरे भाग के ऊपर यह उत्तरदायित्व सौपा गया कि वह प्रादेशिक क्षेत्रो में अधिक संख्या मे लोगो की बुनियादी शिक्षा मे दक्षता और जानकारी बढाने की उन्नति का अवसर प्रदान करे। प्रशिक्षित अध्यापको को कार्य मे मदद देने के लिए पुस्तकें और सुझाव बराबर देते रहना चाहिए। इसी के साथ-साथ शिल्प में दक्ष अध्यापकों के प्रशिक्षण का प्रबन्ध करने की योजना पर भी जोर दिया

गया ताकि अधिक से अधिक स्कूलों में शिल्प सिखाने की व्यवस्था भी की जाय। १९४६–४७ में शिक्षक-प्रशिक्षण शालाओं का व्यय ९१ लाख था जो सन् १९५८ तक २५५.७ लाख रुपया हो गया।

माध्यमिक शिक्षा के स्तर पर पहली योजना में विकास के लिए पर्याप्त प्रावधान रखा गया। योजना में इस बात पर जोर दिया गया कि माध्यमिक शिक्षा की आधारशिला बुनियादी शिक्षा ही होनी चाहिए अर्थात् उसका बेसिक शिक्षा से घनिष्ठ सम्बन्ध होना चाहिये और जब कोई बच्चा बेसिक स्कूल से माध्यमिक स्कूल में आए तो उसे यह अनुभव न हो कि दोनों स्कूलों के पाठ्य-क्रम एवं शिक्षा प्रणाली में आकाश-पाताल का अन्तर है।

प्रथम योजनाकाल में माध्यमिक शिक्षक-प्रशिक्षण के क्षेत्र में काफी प्रगति हुई। सन् १९४६–४७ में शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालयों की संख्या केवल ४१ थी जा बढ़कर १०२ हो गई। इस अवधि में छात्रों की संख्या में बहुत अभिवृद्धि हुई। सन् १९४७–४८ में ३,२९२ विद्यार्थियों की संख्या थी, जो बढ़कर सन् १९५२–५३ में ७,९३१ और सन् १९५७–५८ में १७,२२९ हो गई। इस काल में कुछ महत्त्वपूर्ण कार्य शिक्षक-प्रशिक्षण के क्षेत्र में हुए। आल इंडिया कौंसिल फार सैकण्डरी एज्युकेशन की स्थापना की गई जिसने गुणात्मक विकास के लिए योजनाएँ तैयार की और अनुदान दिया। अठारह शिक्षक-प्रशिक्षण महाविद्यालयों ने इससे आर्थिक सहायता प्राप्त करके अठारह शोध और अन्वेषण कार्यों को अपने हाथों में लिया। काउन्सिल ने सर्वप्रथम चौबीस शिक्षा प्रसार केन्द्रों की स्थापना शिक्षक प्रशिक्षण महा-विद्यालयों में की। पाठ्यक्रम-सुधार के लिए समितियों की स्थापना की गई। लेकिन इस सम्पूर्ण अवधि में शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालयों पर कुल व्यय का एक छोटा प्रतिशत ही खर्च किया गया।

द्वितीय पंचवर्षीय योजना

इस योजनाकाल मे प्रथम योजना की शिक्षा-नीति के आधार पर शिक्षा में प्रगति को बनाये रखा। प्राथमिक शिक्षा स्तर पर गैर-बेसिक स्कूलों को बेसिक पद्धति पर ढालने का कार्य चलता रहा। गैर-बेसिक पद्धति के अध्यापकों के लिए प्रत्यास्मरण पाठ्यचर्याएँ (रिफ्रेशर-कोर्स) प्रारम्भ की गई। जिला स्तर पर इन सेवारत शिक्षकों के लिए बुनियादी शिक्षा पर कार्यगोष्ठियाँ अथवा व्याख्यानमालाएँ आयोजित की गई। राष्ट्रीय बेसिक शिक्षा संस्थान

(नेशनल इंस्टीट्यूट ग्राफ बेसिक एजुकेशन) ने बेसिक शिक्षा से सम्बन्धित शोध, प्रशिक्षण और साहित्य के प्रकाशन में अभूतपूर्व कार्य किया। इस संस्थान ने अल्पकालीन प्रशिक्षण कार्यक्रम प्रारम्भ किये। शिल्प और उद्योग शिक्षण के लिए सस्ते प्रकार की वस्तुओं के इस्तेमाल पर परीक्षण कार्य किये गये।

सरकार ने प्रशिक्षित अध्यापकों को व्यवसाय देने की योजना बनाई और ६०,००० अध्यापकों को नौकरी देने का प्रावधान किया। १५,००० को १९५८–५९ में, २०,००० को १९५९–६० में और २५,००० को १९६०–६१ मे कार्य दिलाने की एक क्रमबद्ध योजना बनाई गई।

इस योजनाकाल में बालिकाओं की शिक्षा पर विशेष ध्यान दिया गया। ग्रामीण क्षेत्रों में अध्यापिकाओं की कमी को दूर करने के लिए उनके लिए मकान बनवाने की योजना स्वीकार की गई। अध्यापिकाओं की संख्या बढ़ाने की दृष्टि से शिक्षक–प्रशिक्षण संस्थाओं में महिला प्रशिक्षणार्थियों के लिए छात्रवृत्तियों का प्रावधान किया गया।

माध्यमिक शिक्षक–प्रशिक्षण के क्षेत्र में विकास कार्यक्रम चलाए गए और द्वितीय योजना के अन्त तक माध्यमिक स्तर के प्रशिक्षित शिक्षकों की सख्या में ६८ प्रतिशत की वृद्धि हुई। केन्द्रीय शिक्षा मंत्रालय ने पाँच सौ स्नातक शिक्षकों और एक हजार डिप्लोमा प्राप्त शिक्षकों के प्रशिक्षण की योजना बनाई। ये शिक्षक विशेष रूप से बहुउद्देशीय विद्यालयों और टेक्निकल संस्थाओं की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये प्रशिक्षित किये गये। केन्द्रीय शिक्षा मंत्रालय ने आल इंडिया काउन्सिल फार सेकण्डरी एज्यूकेशन का पुनर्गठन किया और इसका नाम बदलकर डाइरेक्टरेट आफ एक्सटेन्सन प्रोग्राम इन सैकण्डरी स्कूल रखा गया। इस सस्था ने शिक्षा में गुणात्मक विकास के कार्यक्रम को आगे बढाया। इसके तत्वावधान में शिक्षकों के लिए अन्तःसेवा-कालीन प्रशिक्षण कार्यक्रम पर विशेष आग्रह दिया; परीक्षा पद्धति के सुधार पर कार्य किया गया; शालाओं मे क्रियात्मक अनुसंधान और शिक्षा में प्रयोग करने के लिए शिक्षकों के विकास के लिए अनेक योजनाएँ बनाई गई। १९५८-५९ तक माध्यमिक शिक्षा की समस्याओं पर लगभग २९ शोध कार्यों के लिए आर्थिक अनुदान दिया गया। अंग्रेजी शिक्षण के विकास के लिए हैदराबाद में सेन्ट्रल इस्टीट्यूट आफ इंगलिश की स्थापना की गई।

तृतीय योजना

तृतीय योजना में भी प्राथमिक एवं माध्यमिक शालाओं की संख्या में अभिवृद्धि हुई। इस काल में प्राथमिक बेसिक स्कूलों की संख्या में ३० प्रतिशत की वृद्धि हुई। गैर–बुनियादी शालाओं के अध्यापकों को बुनियादी शिक्षा पद्धति में प्रशिक्षित करने का कार्य तृतीय योजना में भी चलाया गया। सन् १९६१-६२ में ११११ शिक्षक प्रशिक्षण शालाओं में से ८५३ अर्थात् लगभग ७५ प्रतिशत शिक्षण शालाओं को बुनियादी प्रशिक्षण शालाओं में बदल दिया गया।

माध्यमिक शिक्षा के क्षेत्र में माध्यमिक एवं उच्च माध्यमिक शालाओं की संख्या में आशातीत वृद्धि हुई। अनेक माध्यमिक शालाओं को बहुउद्देशीय उच्च माध्यमिक शालाओं मे परिणत किया गया। बहुउद्देशीय शालाओं के लिए अध्यापकों को प्रशिक्षित करने के लिए चार क्षेत्रीय शिक्षा महाविद्यालय खोले गये। शिक्षक–प्रशिक्षण के अन्य क्षेत्रों में भी विकास कार्यक्रम चलाये गये और प्रशिक्षित शिक्षकों की संख्या में आशातीत वृद्धि हुई जो निम्नलिखित तालिका से सिद्ध होता है—

तालिका

प्राथमिक एवं माध्यमिक शालाओं के प्रशिक्षित अध्यापक
(लाखों में)

मद	१९६०-६१	१९६१-६२	१९६२-६३	१९६५-६६
(१) प्राथमिक शाला—				
अध्यापक	७.४०	८.२२	८.६०	१२.६६
प्रशिक्षित अध्यापकों का प्रतिशत	६४.१	६६.५	६.७५	७५.००
(२) मिडिल स्कूल अध्यापक	३.४४	३.६५	३.८४	३.६०
प्रशिक्षित अध्यापकों का प्रतिशत	६६.६	६९.६	६८.८	७५.००
(३) माध्यमिक/उच्च माध्यमिक स्कूल				
अध्यापक	२.९४	३.२७	३.४३	२.९०
प्रशिक्षित अध्यापकों का प्रतिशत	६४.३	६६.१	६६.२	७५.००

संख्यात्मक विकास के साथ–साथ इस काल में शिक्षक–प्रशिक्षण के गुणात्मक विकास की ओर भी ध्यान दिया गया, जैसा कि द्वितीय अध्याय में वर्णित है। केन्द्रीय शिक्षा मंत्रालय ने राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद् की स्थापना की। इस परिषद् ने शिक्षक–प्रशिक्षण में शोध, प्रशिक्षण, मूल्यांकन, पाठ्यपुस्तक, पाठ्यचर्या आदि पर वृहत् योजनाएँ बनाईं। इससे भी महत्त्वपूर्ण कार्य इस परिषद् का यह रहा कि इसने शिक्षकों और शिक्षक प्रशिक्षकों के लिए अन्तः सेवाकालीन प्रशिक्षण की व्यवस्था की।

गुणात्मक विकास की दृष्टि से दूसरा महत्त्वपूर्ण कार्य राज्य शिक्षा संस्थानों की स्थापना थी। सन् १९६३ में केन्द्रीय शिक्षा मंत्रालय ने प्रत्येक प्रदेश में राज्य शिक्षा संस्थान की स्थापना करने का निर्णय लिया। केरल, असम और तमिलनाडु को छोड़कर अन्य सभी प्रदेशों में सन् १९६३ में राज्य शिक्षा संस्थानों की स्थापना की गई और एक वर्ष के पश्चात् उपर्युक्त तीनों प्रदेशों में भी संस्थानों की स्थापना हो गई। इन संस्थानों का कार्य प्रदेश स्तर पर शोध, प्रशिक्षण, प्रसार एवं प्रकाशन करना है। यह संस्थान प्रदेश सरकार के शिक्षा विभाग को उसके शैक्षिक उत्तरदायित्वों में सहायता देता है, शिक्षा विभाग के लिए शैक्षिक योजनाएँ तैयार करता है और उन योजनाओं के क्रियान्वयन एवं मूल्यांकन में सहयोग देता है। राज्य शिक्षा संस्थान शिक्षा विभाग को शालाओं एवं शिक्षक प्रशिक्षण शालाओं की पाठ्यचर्या, पाठ्य-पुस्तकों, मूल्यांकन विधियों, श्रव्य–दृश्य सामग्री आदि के सुधार के लिए मार्ग-दर्शन एवं सहयोग देता है। प्रदेश की भावी शिक्षा योजना बनाने, शैक्षिक आँकड़ों को एकत्रित करने, शिक्षा में शोधकार्य करने एवं अन्य विकासात्मक कार्यों के लिए राज्य शिक्षा संस्थान का बड़ा योगदान हो सकता है।

चतुर्थ योजना

सन् १९६९ से १९७४ के चतुर्थ योजनाकाल के लिए शिक्षा और शिक्षक–प्रशिक्षण के विकास के लिए एक बृहद् योजना बनाई गई है। इस योजना की विशेषता यह है कि इसमे शिक्षक-प्रशिक्षण के लिए अलग से धनराशि निर्धारित की गई है, जब कि इससे पूर्व की योजनाओं में शिक्षक प्रशिक्षण को प्राथमिक एवं माध्यमिक शाला के अन्तर्गत ही रखा गया और इसके लिए कोई अलग धन का प्रावधान नहीं था। दूसरी विशेषता इस योजना की यह है कि इसको बनाते समय द्वितीय अखिल भारतीय शैक्षिक सर्वेक्षण

द्वारा प्रस्तुत आँकड़ों से देश की वस्तुस्थिति का ज्ञान होगया । चतुर्थ योजना में भावी आवश्यकताओं की जानकारी इस सर्वेक्षण से सुलभ होगई और इनका ध्यान योजना बनाते समय रखा गया । योजना आयोग के शिक्षा खंड की २३ जुलाई सन् १९६८ की एक बैठक में शिक्षक–प्रशिक्षण के चतुर्थ योजना के अन्तर्गत विकास कार्यक्रम की योजना तैयार की गई । इस योजना का विस्तृत वर्णन आगे के पृष्ठों में किया गया है ।

चतुर्थ आयोजना में शिक्षक–प्रशिक्षण के विकास के लिए निम्नलिखित उद्देश्य स्वीकार किये गए—

(१) जहाँ पर विकास की आवश्यकता है वहाँ वर्तमान शिक्षक-प्रशिक्षण संस्थाओं को ही विकसित किया जाए, नई संस्थाओं को खोलने का प्रयास नहीं किया जाए । कहीं-कहीं पर यह भी आवश्यक होगा कि छोटी-छोटी संस्थाओं को संयुक्त करके एक बड़ी शिक्षक–प्रशिक्षण संस्था बनाई जाए ।

(२) शिक्षक–प्रशिक्षण संस्थाओं के गुणात्मक विकास की ओर ध्यान दिया जाए । एक क्रमबद्ध योजना बनाकर विद्यमान संस्थाओं के भवन, छात्रावास, उपकरण आदि के लिए आर्थिक सहायता दी जाए । राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद् को क्षेत्रीय भाषाओं में साहित्य का सृजन करने के लिए प्रोत्साहित किया जाए ।

(३) अन्तःसेवाकालीन प्रशिक्षण के लिए एक विस्तृत योजना बनाई जाए और इसके लिए प्रत्येक शिक्षण–प्रशिक्षण संस्था के साथ एक सेवा प्रसार विभाग की स्थापना की जाए ।

(४) विश्वविद्यालयों का शिक्षक प्रशिक्षण कार्यक्रम में, विशेष रूप से विज्ञान और गणित शिक्षण मे अधिक योग लिया जाए ।

(५) विद्यमान अप्रशिक्षित शिक्षकों की संख्या कम करने के लिए पत्राचार पाठ्यक्रम तथा ग्रीष्मकालीन शिक्षण शिविरो का अधिक प्रावधान किया जाए ।

(६) शिक्षक प्रशिक्षकों के अन्तःसेवाकालीन प्रशिक्षण की अधिक व्यवस्था की जाए ।

(७) शिक्षा आयोग (१९६४–६६) द्वारा प्रस्तावित टीचर एज्यूकेशन बोर्ड की स्थापना से शिक्षक–प्रशिक्षण की योजना बनाने तथा उसके क्रियान्वयन में बड़ी मदद मिल सकेगी । इस प्रकार के बोर्ड स्थापित किए जाएँ ।

चौथी योजना में शालाओं का विस्तार

शिक्षक-प्रशिक्षण की योजना बनाने से पूर्व प्राथमिक एवं माध्यमिक शालाओं की सम्भावित संख्या-वृद्धि पर विचार किया गया। इस योजना काल में निम्नलिखित तालिका के अनुसार शालाओं में प्रवेश का लक्ष्य रखा गया—

तालिका

विभिन्न कक्षाओं में विद्यार्थियों की संख्या (लाखों में)

कक्षाएँ	१९६८-६९ की स्थिदि	१९६९-७४ में अतिरिक्त विद्यार्थी संख्या	१९७३-७४ में कुल संख्या
१	२	३	५
पहली से पाँचवीं	५६७	१८०	७४७
छठी से आठवीं	१२०	७०	१९०
नवीं से ग्यारहवीं	६४	३३	९७
योग	७५१	२८३	१०३४

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट होता है कि इन पाँच वर्षों में विभिन्न कक्षाओं में २८३ लाख छात्र-छात्राओं की वृद्धि होगी और इन पाँच वर्षों के अन्त में कुल विद्यार्थियों की संख्या १०३४ लाख हो जाएगी।

योजना में अतिरिक्त शिक्षकों की आवश्यकता

यह स्वीकार किया गया कि १९७३-७४ के अन्त तक प्राथमिक कक्षाओं के लिए शिक्षक और विद्यार्थी का अनुपात १ : ४५ होना चाहिए, मिडिल कक्षाओं के लिए यह अनुपात १ : ३० होना चाहिए और माध्यमिक कक्षाओं का अनुपात १-२५ होना चाहिए। इस अनुपात को ध्यान में रखते हुए चतुर्थ योजना में बढ़ती हुई शालाओं और विद्यार्थियों के लिए अधिक शिक्षकों की आवश्यकता होगी। इस अवधि में कुछ शिक्षक वृद्धावस्था के कारण कार्य से अवकाश प्राप्त कर लेंगे और इन सेवानिवृत्त शिक्षकों की पूर्ति की भी आवश्यकता पड़ेगी। इनके आधार पर चतुर्थ योजना के लिए जितने अतिरिक्त

शिक्षकों की आवश्यकता होगी उसका अनुमान योजना आयोग ने लगाया जो निम्नलिखित तालिका से स्पष्ट होता है—

तालिका

शिक्षकों की संख्या १९६८-६९ और १९७३-७४ (लाखों में)

कक्षाएँ	१९६५–६६ द्वितीय अ. भा. शैक्षिक सर्वेक्षण के आधार पर	१९६८-६९	१९७३-७४	१९६९-७४ अतिरिक्त अध्यापक खण्ड ४–५	१९६९-७४ अतिरिक्त अध्यापक जो अवकाश प्राप्त शिक्षकों की पूर्ति के लिए चाहिए	कुल अतिरिक्त अध्यापकों की संख्या खंड ५ एवं ६
१	२	३	४	५	६	७
प्राथमिक	११.९६	१४.२०	१६.६०	२.४०	२.३०	४.७०
मिडिल	४.३६	५.२०	६.००	०.८०	०.९०	१.७०
माध्यमिक	२.७७	२.९०	३.९०	१.००	०.६०	१.६०
योग	१९.९	२२.३०	२६.५०	४.२०	३.८०	८.००

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट होता है कि चतुर्थ योजना काल में आठ लाख अतिरिक्त शिक्षकों की आवश्यकता पड़ेगी। इस संख्या में विज्ञान शिक्षकों की कमी का विशेष ध्यान रखना पड़ेगा। इस समय शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालयों में अध्ययन करने वाले प्रशिक्षणार्थियों की कुल संख्या में से केवल २१ प्रतिशत प्रशिक्षार्थी बी. एससी. डिग्री वाले हैं। इससे आशय है कि प्रतिवर्ष ४,२०० बी. एससी. बी. एड. प्रशिक्षण महाविद्यालयों में प्रशिक्षित होकर निकलते हैं। पाँच वर्ष की अवधि में केवल २१,००० विज्ञान शिक्षक तैयार होकर निकल पाएँगे, जबकि इस अवधि में ६०,००० विज्ञान शिक्षकों की आवश्यकता होगी। आयोजना के समय विज्ञान शिक्षकों की इस कमी को भी ध्यान में रखना पड़ेगा।

प्रशिक्षण की सुविधाएँ

शिक्षक–प्रशिक्षण की आयोजना के लिए देश में उपलब्ध शिक्षक प्रशिक्षण की सुविधाओं का भी ध्यान रखना पड़ेगा। उपलब्ध आँकडों के अनुसार सन् १९६७–६८ में शिक्षक महाविद्यालयों और शिक्षक प्रशिक्षण शालाओं में ३४,३२० और १,२१,०२० प्रशिक्षार्थियों के प्रवेश के लिए क्रमशः सुविधाएँ थी। सन् १९६७-६८ मे यह अनुमान लगाया गया कि २४,००० बी.एड. डिग्री प्राप्त और ९०,००० डिप्लोमा/सर्टिफिकेट शिक्षक निकलेंगे। सन् १९६८-६९ वर्ष के लिए यह अनुमान लगाया गया कि प्रशिक्षित शिक्षकों की संख्या २०,००० डिग्री प्राप्त और ८०,००० डिप्लोमा/सर्टिफिकेट प्राप्त हो जाएगी, क्योंकि अनेक प्रदेश सरकारों ने शिक्षक-प्रशिक्षण संस्थाओं को रोजगार के अभाव में बन्द कर दिया है। इस संख्या को ध्यान मे रखकर अनुमान लगाया गया कि चतुर्थ पंचवर्षीय योजना की अवधि मे एक लाख डिग्री प्राप्त और चार लाख डिप्लोमा/सर्टिफिकेट प्राप्त शिक्षक उपलब्ध हो सकेंगे।

प्रदत्त आंकड़ों के अनुसार चतुर्थ योजना काल में लगभग ६ : ४० लाख शिक्षकों की आवश्यकता प्राथमिक शालाओं के लिए होगी। लगभग ४ लाख प्रशिक्षित अध्यापक इस अवधि में वर्तमान शिक्षण संस्थाओं से उपलब्ध होंगे। अतः लगभग २.४० लाख अधिक अध्यापकों के प्रशिक्षण की व्यवस्था इन पाँच वर्षों में करनी पड़ेगी।

माध्यमिक शालाओं के लिए लगभग १.६० लाख अधिक अध्यापक चतुर्थ योजना में चाहिए, वर्तमान शिक्षक–प्रशिक्षण महाविद्यालयों से लगभग एक लाख अध्यापक प्रशिक्षित होकर निकलेंगे अतः ६०,००० अधिक शिक्षकों के लिए प्रशिक्षण व्यवस्था करनी पड़ेगी। लेकिन विभिन्न प्रदेशों में प्रशिक्षित अध्यापकों की आवश्यकता भिन्न-भिन्न है। कुछ प्रदेशों में प्रशिक्षित शिक्षकों की संख्या माँग के अनुपात में अधिक है, जबकि कुछ प्रदेशों में प्रशिक्षित अध्यापक कम हैं। इसलिए प्रदेशों की आवश्यकतानुसार प्रशिक्षण व्यवस्था वांछनीय है।

अध्यापकों की वर्तमान स्थिति

उपलब्ध प्रशिक्षित अध्यापकों की संख्या का यदि विश्लेषण किया जाए तो स्पष्ट होगा कि विभिन्न प्रदेशों में प्रशिक्षित अध्यापकों की सख्या में एक बड़ा भेद है। द्वितीय अखिल भारतीय शैक्षिक सर्वेक्षण के अनुसार प्राथमिक

शालाओं में एक ओर तो पश्चिमी बंगाल में प्रशिक्षित अध्यापकों का प्रतिशत केवल ४३.८० है, जबकि पजाव में यह प्रतिशत ९७.९१ है। इसी प्रकार भारतीय औसत से असम, गुजरात, जम्मू-कश्मीर, मैसूर, उड़ीसा, राजस्थान एवं उत्तरप्रदेश में भी प्रशिक्षित अध्यापकों का प्रतिशत कम है। प्राथमिक शिक्षा के क्षेत्र में पुरुषों एवं महिलाओं के प्रतिशत में भी अन्तर है। प्रशिक्षित पुरुषों का प्रतिशत ७३.०२ और प्रशिक्षित महिलाओं का प्रतिशत ७६.०२ है। यदि हम एक शिक्षक की न्यूनतम योग्यता हाई स्कूल और शिक्षक-प्रशिक्षण का डिप्लोमा स्वीकार करे तो इस दृष्टि से न्यूनतम योग्यता वाले अध्यापकों का प्रतिशत केवल ३२.७० है।

मिडिल स्कूलों में प्रशिक्षित अध्यापकों का प्रतिशत ७५.२५ है। प्रशिक्षित पुरुषों का प्रतिशत ७३.२३ है और महिलाओं का ७८ ७५। यदि मिडिल कक्षाओं के लिए बी. ए. और बी. एड. न्यूनतम योग्यता स्वीकार की जाए तो इस योग्यता वाले शिक्षकों का प्रतिशत १०.८० है।

माध्यमिक शालाओं में शिक्षकों की कुल सख्या २,७७,१३७ है। इसमें से २,२६,३५८ (८१.६८ प्रतिशत) पुरुष हैं और ५०,७७९ (१८.३२ प्रतिशत) महिलाएँ है। प्रशिक्षित अध्यापकों का प्रतिशत ६९.५७ है। प्रशिक्षित पुरुषों का प्रतिशत ६७.७५ है और महिलाओं का प्रतिशत ७७.६८ है। विभिन्न प्रदेशों में प्रशिक्षित अध्यापकों का प्रतिशत निम्न प्रकार है—

असम २०.१७, पंजाब ९५.४५, बिहार ४३.१८, मध्यप्रदेश ६१.२८, मैसूर ५९.०४, उड़ीसा ५०.१२, राजस्थान ६०.३२ और पश्चिमी बंगाल ५१.८८।

योग्यता की दृष्टि से देखें तो माध्यमिक शालाओं में स्नातक और उससे अधिक योग्यता वाले शिक्षकों का प्रतिशत ७५.४ है, इन शालाओं में हाई-स्कूल परीक्षा उत्तीर्ण अध्यापकों का प्रतिशत ८.७ है और हाई स्कूल से कम योग्यता वाले अध्यापकों का प्रतिशत ०.३ है। माध्यमिक शालाओं के लिए यदि बी. ए. बी. एड. की योग्यता न्यूनतम स्वीकार की जाए तो इस योग्यता वाले शिक्षकों का प्रतिशत ६०.६४ है।

शिक्षक प्रशिक्षण की आयोजना

उपर्युक्त आँकड़ों से प्राथमिक, मिडिल एवं माध्यमिक शालाओं में वर्तमान प्रशिक्षित और अप्रशिक्षित अध्यापकों की संख्या का भान होता है। इससे यह भी विदित होता है कि इन शालाओं में किस योग्यता के अध्यापक

कार्य करते हैं। ये आँकड़े यह भी बतलाते हैं कि विभिन्न प्रदेशों में प्रशिक्षित और अप्रशिक्षित अध्यापकों का प्रतिशत कितना है और कितने अध्यापकों के प्रशिक्षण की व्यवस्था करने की आवश्यकता है। अतः शिक्षकों की वर्तमान अवस्था और भावी आवश्यकताओं को देखते हुये चतुर्थ पंचवर्षीय योजना में शिक्षक-प्रशिक्षण के निम्नलिखित क्षेत्रों के विकास के लिए जोर दिया गया है—

(१) अप्रशिक्षित शिक्षकों की संख्या को कम करने के लिए पत्राचार पाठ्यक्रम की व्यवस्था करना,

(२) प्रशिक्षित अध्यापकों के लिए अन्त:सेवाकालीन प्रशिक्षण की सुविधाएँ प्रदान करना,

(३) प्रशिक्षण संस्थानों की संख्या में वृद्धि और विकास का कार्यक्रम बनाना और

(४) शिक्षक प्रशिक्षकों के लिए अन्तः सेवाकालीन प्रशिक्षण की ओर ध्यान देना।

पत्राचार पाठ्यक्रम— उपर्युक्त आँकड़ों से स्पष्ट होता है कि शिक्षक प्रशिक्षण सुविधाएँ बढ़ने के बाद भी प्रशिक्षित अध्यापकों की बढ़ती हुई माँग की पूर्ति सम्भव नहीं हो पाई है बल्कि अप्रशिक्षित शिक्षकों की संख्या बढ़ी है, जो निम्नलिखित तालिका से स्पष्ट होता है—

तालिका

सन् १९६७-६८ में अप्रशिक्षित अध्यापकों की संख्या (लाखों में)

अध्यापक	प्रशिक्षित शिक्षक	अप्रशिक्षित शिक्षक	योग	अप्रशिक्षित शिक्षकों का प्रतिशत
१	२	३	४	५
प्राथमिक शालाओं के शिक्षक	११.७३	३.८४	१५.५७	२५
माध्यमिक शालाओं के शिक्षक	४.९०	१.०९	५.९९	१८
	१६.६३	४.९३	२१.५६	२३

उपर्युक्त तालिका बतलाती है कि सन् १९६७-६८ के अन्त में अप्रशिक्षित अध्यापकों की संख्या ४.९३ लाख थी, जिसमें से ३.८४ लाख प्राथमिक शालाओं में और १.०९ लाख माध्यमिक शालाओं में थे। इससे पूर्व द्वितीय अखिल भारतीय शैक्षिक सर्वेक्षण के अनुसार सन् १९६५-६६ में अप्रशिक्षित शिक्षकों की कुल संख्या ५.०६ लाख थी जिनमें से ३.१५ लाख प्राथमिक शालाओं, १.०८ लाख मिडिल कक्षाओं और ८४,००० माध्यमिक कक्षाओं के शिक्षक थे।

अप्रशिक्षित अध्यापकों के अनुभव को यदि ध्यान में रखा जाए तो विदित होगा कि उपर्युक्त शिक्षकों में से शिक्षकों का एक बड़ा प्रतिशत शिक्षण का अनुभव रखता है। ३.१५ लाख अप्रशिक्षित प्राथमिक शालाओं के अध्यापकों में से २.४३ लाख अध्यापक आठ या इससे कुछ कम वर्षो का अध्यापन अनुभव रखते थे। १.०८ लाख अध्यापक लगभग ४ वर्ष का अध्यापन अनुभव रखते थे। चार वर्ष से कम अनुभव वाले शिक्षकों की संख्या ६४,००० थी। इस अवधि में ऐसा अनुमान किया जाता है कि इस स्थिति मे कुछ सुधार हुआ होगा और अप्रशिक्षित अध्यापकों की संख्या लगभग दो लाख रही होगी।

अतः इन अनुभव वाले दो लाख अप्रशिक्षित अध्यापकों के प्रशिक्षण की व्यवस्था के लिए चतुर्थ पंचवर्षीय योजना में विचार किया गया। यह निर्णय लिया गया कि इस योजना काल मे लगभग चार वर्ष अनुभव वाले दो लाख अप्रशिक्षित शिक्षकों के लिए चतुर्थ योजना में पत्राचार पाठयक्रम की व्यवस्था की जानी चाहिए। इन अप्रशिक्षित अध्यापकों की समस्या असम, पश्चिमी बंगाल, उड़ीसा, मैसूर और जम्मू–कश्मीर में सबसे अधिक है। इस पत्राचार पाठ्यक्रम को एक विस्तृत पैमाने पर चलाने का उत्तरदायित्व प्रदेशों के राज्य शिक्षा संस्थाओं को सौंप दिया गया।

द्वितीय अखिल भारतीय शैक्षिक सर्वेक्षण के अनुसार ८४३२७ अप्रशिक्षित शिक्षक माध्यमिक शालाओं मे कार्य कर रहे थे। इनमें से ६७,८१८ अध्यापक ऐसे थे जो आठ वर्ष के लगभग अध्यापन का अनुभव रखते थे और इनमें से ५२,७५० अध्यापक चार वर्ष या उससे कम का शिक्षण अनुभव रखते थे। इन अप्रशिक्षितों की संख्या असम, बिहार, जम्मू-कश्मीर, मैसूर, नागालैण्ड, उड़ीसा, राजस्थान और पश्चिमी बंगाल में अधिक थी। चतुर्थ योजना में

अप्रशिक्षित और अध्यापन अनुभव वाले शिक्षकों के प्रशिक्षण की व्यवस्था के लिए पत्राचार पाठ्यक्रम को चलाए जाने का प्रावधान किया गया। चार क्षेत्रीय शिक्षा महाविद्यालयों एवं केन्द्रीय शिक्षा संस्थानों को ५०,००० शिक्षकों को पत्राचार पाठ्यक्रम के माध्यम से प्रशिक्षित करने का उत्तरदायित्व दिया गया।

अन्तः सेवाकालीन प्रशिक्षण

चतुर्थ योजना में यह स्वीकार किया गया कि सुयोग्य एवं प्रशिक्षित अध्यापकों के लिए अन्तःसेवाकालीन प्रशिक्षण की व्यवस्था की जाए, अन्तः सेवा शिक्षा के कार्यक्रमों के बड़े पैमाने पर संगठन की आवश्यकता है ताकि प्रत्येक अध्यापक पाँच वर्ष की प्रत्येक सेवा-अवधि के बाद दो तीन महीने की अन्तः सेवा शिक्षा प्राप्त कर सकें। इसके लिए यह प्रस्तावित किया गया कि इसकी व्यवस्था पुनश्चर्या पाठ्यक्रमों, सेमीनारों, कार्य-शिविरों और ग्रीष्मावकाश कालीन शिविरों के माध्यम से किया जाए। इस वृहद् कार्यक्रम को चलाने के लिए विश्वविद्यालयों, शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालयों, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद् और राज्य शिक्षा संस्थानों को सहयोग देना चाहिए। राज्य विज्ञान शिक्षा संस्थानों को विशेष रूप में विज्ञान शिक्षकों के प्रशिक्षण की व्यवस्था का उत्तरदायित्व सौंपा गया। प्राथमिक शिक्षक प्रशिक्षण शालाओं एवं माध्यमिक शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालयों में सेवा प्रसार केन्द्रों को अधिक खोलने का प्रावधान किया गया।

शिक्षक प्रशिक्षण संस्थाओं का विकास

चतुर्थ योजना के अन्तर्गत छोटे-छोटे और व्यय की दृष्टि से अधिक खर्चीले एवं अनार्थिक संस्थाओं की संख्या में कमी करने की योजना बनाई गई। इन छोटी प्रशिक्षण संस्थाओं को अपने भवन, पुस्तकालय, छात्रावास, प्रयोगशालाओं एवं अधिक अध्यापकों की नियुक्ति के लिए अधिक अनुदान देने की व्यवस्था की गई। इस योजना की अवधि में १५० शिक्षक महाविद्यालयों को सर्वांगपूर्ण महाविद्यालयों में परिणत किया जाएगा। इन सर्वांगपूर्ण महाविद्यालयों मे विविध शिक्षण स्तरों के और विविध क्षेत्रों के अध्यापकों को तैयार किया जाएगा। इन संस्थाओं के लिए अधिक भौतिक सुविधाएँ प्रदान की जाएगी और सुयोग्य प्रशिक्षित शिक्षक प्रशिक्षकों की नियुक्ति की जाएगी। इसके अतिरिक्त सभी प्रकार की शिक्षक प्रशिक्षण संस्थाओं के अध्यापकों

की योग्यता वृद्धि के लिए उनके अन्त सेवा प्रशिक्षण की व्यवस्था की जाएगी। इन अध्यापकों के लिए अंशकालीन प्रशिक्षण की अधिक सुविधाएँ प्रदान करने की योजना बनाई गई ताकि शिक्षक प्रशिक्षक अपनी शैक्षिक योग्यता बढ़ा सकें।

इस योजना काल में शिक्षक प्रशिक्षण संस्थाओं में शोध एवं अन्वेषण कार्य के लिए विशेष प्रावधान किया गया है। शिक्षक प्रशिक्षकों को शोध कार्य के लिए प्रोत्साहित करने के लिए आर्थिक अनुदान की योजनाएँ बनाई गई हैं। एम. ए. (शिक्षा) के द्विवर्षीय पाठ्यक्रम के चलाए जाने के लिए विश्वविद्यालयों को अनुदान देने की योजना तैयार की गई। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग शिक्षक प्रशिक्षण के विकास के लिए उदार आर्थिक अनुदान की नीति को अपनाए हुए है।

विश्वविद्यालय अनुदान आयोग ने सभी संस्थाओं को समान रूप से आर्थिक सहायता देने की दृष्टि से यह निर्णय लिया कि चार अथवा पांच लाख तक एक संस्था को आर्थिक अनुदान दिया जा सकता है। इस अधिकतम आर्थिक अनुदान की सीमा सभी विश्वविद्यालयों को प्रसारित करदी गई ताकि वे शिक्षक-प्रशिक्षण कार्यक्रम के विकास की योजना तदनुसार तैयार कर लें। विगत वर्षों में विश्वविद्यालय अनुदान आयोग ने शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों के शिक्षा संकायों को विकास कार्य के लिए पर्याप्त आर्थिक सहायता प्रदान की। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग ने शिक्षक प्रशिक्षण संस्थाओं के पुस्तकालयों को सम्पन्न करने के लिए निम्नलिखित धनराशि दी :—

१. कुट्टुरस्वामी शिक्षा महाविद्यालय	६००० रु.
२. सेन्ट जेवियर प्रशिक्षण महाविद्यालय	६००० रु.
३. श्रीमती बी.सी.जे. कालिज ऑफ एज्यूकेशन	३००० रु.
४. सेकेण्डरी शिक्षा महाविद्यालय, गुजरात	२२५०० रु.
५. दरबार गोपालदास महाविद्यालय, सौराष्ट्र	३०००० रु.
६. शिक्षा विभाग सागर विश्वविद्यालय	१५००० रु.
७. महिला गुरुकुल शिक्षा महाविद्यालय	१५००० रु.
८. आन्ध्र लूथेरियन शिक्षा महाविद्यालय	१५००० रु.
९. विद्याभवन शिक्षक महाविद्यालय	४५००० रु.
१०. शिक्षा महाविद्यालय, जलगांव	३३००० रु.

विश्वविद्यालय अनुदान आयोग ने अनेक संस्थाओं को भवन निर्माण, प्रयोगशालाओं के निर्माण, श्रव्य-दृश्य सामग्री के खरीदने एवं शोधग्रन्थों के प्रकाशन के लिए निम्नलिखित शिक्षक–प्रशिक्षण संस्थाओं को अनुदान दिया—

१. सेकेण्डरी शिक्षक महाविद्यालय, गुजरात	२२,५०० रु.
२. सेन्ट एन्स ट्रेनिंग कालिज	३५,००० रु.
३. शिक्षा विभाग, सागर विश्वविद्यालय	३०,००० रु.
४. विद्याभवन शिक्षक महाविद्यालय	६६,५०० रु.
५. राजकीय शिक्षा महाविद्यालय, देवास	४,००० रु.
६. केन्द्रीय शिक्षा संस्थान	४,५०० रु.
७. शिक्षा महाविद्यालय, जलगांव	४५,७६० रु.
८. डी. ए. वी. कालिज ऑफ एज्यूकेशन	५०,००० रु.

टाटा इन्स्टीट्यूट आफ सोशल साइन्सेज को शिक्षा समाजशास्त्र के अन्तर्गत एक शोध प्रकोष्ठ खोलने के लिए ३,१६,००० रु. का अनुदान चार वर्ष के लिए प्रदान किया गया।

अलीगढ़, इलाहाबाद, बनारस, बंगलौर, कलकत्ता, गोहाटी, गोरखपुर, कर्नाटक, केरल, कुरुक्षेत्र, लखनऊ, बड़ौदा, मैसूर, पंजाब, सरदार पटेल, एस. एन. डी. टी. महिला विश्वविद्यालय और विश्वभारती विश्वविद्यालयों में से प्रत्येक को ३०,००० रु. का अनुदान पुस्तकालयों के लिए पुस्तके खरीदने के लिए दिया गया। इनके अतिरिक्त २०,००० रुपया निम्नांकित प्रत्येक विश्वविद्यालय को पुस्तकें खरीदने के लिए दिया गया—अन्नामलाई, गुजरात, इन्दौर, कश्मीर, उस्मानिया, गुजरात विद्यापीठ, रांची, कल्याणी, जामिया–मिलिया, डिब्रूग्रढ़ और वाराणसी संस्कृत विद्यालय।

विश्वविद्यालय अनुदान आयोग ने यह तय किया कि एक बी. एड. शिक्षक महाविद्यालय को १०,००० और बी. एड. एवं एम. एड. शिक्षक महाविद्यालयों को १५,००० रु. की वित्तीय सहायता प्रदान की जाए। इस योजना के अनुसार १६२ बी. एड्. और ५७ एम. एड. शिक्षक महाविद्यालयों को आर्थिक लाभ पहुँचा और इसके लिए २४,७५,००० रुपये की धनराशि निर्धारित की गई।

आर्थिक पक्ष

चतुर्थ पंचवर्षीय योजना में पहली बार शिक्षक–प्रशिक्षण के लिए अलग से धनराशि का प्रावधान किया गया है। योजना के प्रारूप में विभिन्न

मदों पर जो धनराशि निर्धारित की गई वह निम्नलिखित तालिका से स्पष्ट होती है—

तालिका

चतुर्थ योजना में शिक्षक प्रशिक्षण के लिए वित्त

क्रम संख्या	मद		धनराशि (करोड़ रुपयों में)
१.	**प्राथमिक शिक्षक प्रशिक्षण**		
	(अ) विस्तार कार्य		३५-००
	(ब) विद्यमान संस्थाओं के सुधार हेतु		१४-००
	(स) पत्राचार पाठ्यक्रम		६-००
	(द) अन्त: सेवाकालीन प्रशिक्षण		५-००
		योग	६०-००
२.	**माध्यमिक शिक्षक प्रशिक्षण**		
	(अ) विस्तार कार्य		२१-००
	(ब) विद्यमान संस्थाओं के सुधार हेतु		३-००
	(स) पत्राचार पाठ्यक्रम		२-००
		योग	२६-००
३.	राज्य शिक्षा संस्थान		२-००
४.	पूर्व प्राथमिक शिक्षक प्रशिक्षण		२-००
५.	राज्य विज्ञान शिक्षा संस्थान		२-००
		योग	६-००
		कुल योग	९२-००

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट होता है कि योजना में शिक्षक–प्रशिक्षण के विभिन्न क्षेत्रों के विकास की ओर प्रावधान किया गया है। प्राथमिक स्तर पर सुधार की अधिक आवश्यकता है इसलिए इस स्तर के लिए अधिक धनराशि का प्रावधान है जो उचित है। इस योजना में विस्तार कार्य के साथ-साथ विद्यमान प्रशिक्षण संस्थाओं के विकास की ओर भी ध्यान दिया गया है।

पाँचवीं योजना

इस समय देश में पाँचवीं योजना का प्रारूप तैयार हो रहा है। ५१,१६५ करोड़ रुपये की योजना में ३५,५६५ करोड़ रुपया सरकार वहन करेगी और शेष धनराशि गैर-सरकारी क्षेत्रों द्वारा व्यय किया जाएगा। इस आयोजन में २,२५० करोड़ रुपये का प्रावधान शिक्षा के विकास के लिए रखा गया है। शिक्षा के विभिन्न मदों पर व्यय की जाने वाली धनराशि के सम्बन्ध में अनेक शिक्षा सलाहकार समितियों में विचार किया गया है। इस सम्बन्ध में केन्द्रीय शिक्षा सलाहकार बोर्ड ने अपनी १८ और १६ सितम्बर ७२ की एक बैठक में पाँचवीं योजना के अन्तर्गत शिक्षा के विकास की एक योजना स्वीकृत की है। इस आयोजना से भावी शिक्षा पद्धति की एक रूपरेखा प्राप्त होती है। इसके अनुसार प्राथमिक एवं माध्यमिक शालाओं के स्वरूप, स्तर और मानदंडों में परिवर्तन की कल्पना की गई है और तदनुसार शिक्षक-प्रशिक्षण क्षेत्र में विकास की योजना के प्रस्ताव अनुमोदित किए गये है, संभवतः इन प्रस्तावों को कुछ हेर-फेर के साथ योजना आयोग स्वीकार कर लेगा, क्योंकि केन्द्रीय शिक्षा सलाहकार बोर्ड द्वारा प्रस्तावित सुझाव देश की सर्वोत्कृष्ट शिक्षा सलाहकार समिति से प्राप्त हुये हैं। अतः इस बोर्ड द्वारा शिक्षा के प्रस्तावों पर संक्षेप में यहाँ वर्णन किया गया है ताकि सन् १९७४ से १९७८ की अवधि में शिक्षक-प्रशिक्षण कार्यक्रम का चित्र स्पष्ट हो सके।

प्राथमिक शिक्षा

पाँचवी योजना के प्रारूप को तैयार करते समय यह स्वीकार किया गया है कि ६ से ११ वर्ष तक की आयु के विद्यार्थियों के लिये यह व्यवस्था १९८०-८१ के अन्त तक कर दी जाए। अनिवार्य शिक्षा योजना से शालाओं की संख्या में वृद्धि होगी क्योंकि विद्यार्थियों के प्रवेश की संख्या बढेगी। इस योजना के अन्तर्गत जो विद्यार्थियों की संख्या की वृद्धि का अनुमान लगाया गया है वह निम्नलिखित है—

तालिका

प्राथमिक शिक्षा-संख्यावृद्धि का लक्ष्य (लाखों में)

वर्ष	१ से ५ कक्षाएँ			६ से आठ कक्षाएँ		
	पूर्णकालीन	अंशकालीन	योग	पूर्णकालीन	अंशकालीन	योग
१९७८-७९	१४१	७	१४८	७३.०	९४.८	१६७.८

इस आयोजना में प्राथमिक शिक्षा के क्षेत्र में निम्नलिखित तीन नवीन प्रस्ताव है—

(१) यह मान्यता है कि परम्परागत प्राथमिक शिक्षा योजना बहुत व्यय साध्य है, इसके माध्यम से अनिवार्य शिक्षा योजना का लक्ष्य सीमित साधनों से संभव नहीं है। अतः प्राथमिक शिक्षा पूर्णकालीन और अंशकालीन दोनों प्रकार से चलाई जाए। यह अंशकालीन शिक्षा उन बालक-बालिकाओं के लिए होगी जो पूर्णकालीन शालाओं में अध्ययन नहीं कर सकते हैं क्योंकि उनको आजीविका के लिए कार्य करना पड़ता है अथवा अपने अभिभावकों के कार्य में योग देना पड़ता है। इस प्रकार की शिक्षा व्यवस्था को सफलतापूर्वक चलाने के लिए सेवा निवृत्त व्यक्तियों, स्वेच्छा से कार्य करने वाले स्नातकों को (जो राष्ट्रीय सेवा योजना के अन्तर्गत कार्य करना चाहते हैं) कुछ भत्ता देकर सेवाकार्य में लगाया जा सकता है।

(२) दूसरी विशेष योजना यह है कि देश में लगभग ५,००० आदर्श प्राथमिक शालाएँ खोली जाएँ।

(३) तीसरी योजना यह है कि ३०० से अधिक संख्या वाले प्राथमिक और मिडिल स्कूलों को अतिरिक्त अनुदान देकर उनके भौतिक साधनों में सुधार किया जाए।

इस बढ़ती हुई संख्या के लिए यह अनुमान लगाया गया है कि १० लाख पूर्णकालीन और ५ लाख अंशकालीन अतिरिक्त शिक्षकों की इस अवधि में आवश्यकता पड़ेगी। योजना में अन्तःसेवाकालीन प्रशिक्षण पर विशेष आग्रह दिया गया है। नई शिक्षक-प्रशिक्षण संस्थाओं के खोलने के लिए ११ करोड़ और अन्तःसेवाकालीन प्रशिक्षण के लिए ६६ करोड़ रुपयों का प्रावधान इस योजना में किया गया है।

माध्यमिक शिक्षा

यह स्वीकार किया गया है कि सारे देश के लिए १० + २ + ३ शिक्षा पद्धति को अपनाया जाए। स्कूल स्तर पर चारवर्षीय माध्यमिक (कक्षा ९ से १२) शिक्षा योजना को स्वीकार कर लेना चाहिए। अतः वर्तमान हायर सैकण्डरी कक्षाओं (कक्षा ९ से ११) के साथ एक वर्ष और जोड़ने की आवश्यकता है। विज्ञान शिक्षण कक्षा पहली से दसवीं तक अनिवार्य कर दिया जाए। इन पाँच वर्षों में विद्यार्थियों की संख्या में जो वृद्धि होगी वह अनुमानतः इस प्रकार होगी—

वर्ष	प्रवेश (लाखों में)		
	छात्र	छात्राएं	योग
१९७३-७४	७१.०	२६.०	९७.०
१९७४-७९	९६.०	४१.०	१३७.०

माध्यमिक शिक्षा के विकास के लिए दो विशेष योजनाएँ बनाई गई हैं। पहली योजना तो यह है कि प्रत्येक जिले में एक आदर्श सर्वांगीण शाला खोली जाएगी। इस प्रकार के लगभग ३२० आदर्श स्कूल खोले जाएँगे। दूसरी महत्त्वपूर्ण योजना यह है कि विद्यमान शालाओं में से १० प्रतिशत माध्यमिक शालाओं का चयन करके उनका विकास विशेष रूप से किया जाएगा और इसके लिए लगभग ३०,००० माध्यमिक शालाओं को १०,००० रुपया अतिरिक्त अनुदान दिया जाएगा।

शिक्षक प्रशिक्षण

पाँचवीं योजना में माध्यमिक शिक्षक-प्रशिक्षण के विकास के लिए विशेष योजना की आवश्यकता को अनुभव किया गया है। असम और पश्चिमी बगाल में विशेषतः वर्तमान शिक्षक-प्रशिक्षण की पिछड़ी हुई अवस्था को सुधारने के लिए दो करोड़ रुपये का प्रावधान किया गया है। वर्तमान शिक्षक महाविद्यालयों के स्तर के विकास के ६ करोड़ रुपए रखे गये हैं। इस स्तर के अध्यापकों के लिए अन्तः सेवाकालीन प्रशिक्षण के लिए २० करोड़ रुपये की व्यवस्था की गई है।

पिछली योजनाओं पर यदि हम विहंगम दृष्टि डालें तो योजनाओं के अन्तर्गत प्रथम तीन योजनाओं में शिक्षक-प्रशिक्षण कार्यक्रम के लिए कोई अलग से प्रावधान न करके इसको प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षा के मदों के साथ संयुक्त कर दिया जाता था। इसका फल यह होता था कि शिक्षक-प्रशिक्षण संस्थाओं की धनराशि अनिश्चित रहती थी और प्राथमिक तथा माध्यमिक शिक्षा की आवश्यकताओं को अधिक प्राथमिकता दिये जाने के कारण इसके लिए आर्थिक अनुदान कम कर दिया जाता था। चौथी योजना से इसके लिए पृथक् प्रावधान किया गया है। यह एक सही दिशा में कदम है। पाँचवीं योजना में वर्तमान शिक्षक प्रशिक्षण संस्थाओं के विकास और अन्तःसेवाकालीन प्रशिक्षण की ओर विशेष ध्यान दिया गया है। राष्ट्रीय शिक्षक प्रशिक्षण बोर्ड

और राज्य शिक्षक प्रशिक्षण बोर्ड के संगठनों के महत्त्व को स्वीकार किया गया। पाँचवीं योजना में अन्य विकास कार्यक्रमों की ओर भी ध्यान दिया जाना चाहिए। एक ओर जहाँ आदर्श शालाओं को खोलने का विचार किया जा रहा है, दूसरी ओर इसी प्रकार की आदर्श शिक्षक-प्रशिक्षण संस्थाओं को खोलने की ओर भी ध्यान दिया जाना चाहिए। इनसे अन्य संस्थाओं को अपना स्तर सुधारने के लिए प्रोत्साहन मिलेगा। शिक्षक प्रशिक्षण संस्थाओं मे प्रयोग एवं शोध को प्रोत्साहित करने के लिए उदार आर्थिक अनुदान नीति का पालन किया जाना चाहिए क्योंकि पाँचवी योजना के इन प्रशिक्षण संस्थाओं को अधिक विज्ञान–शिक्षक तैयार करने पड़ेंगे। साथ ही इनको आदर्श शालाओं के लिए सुयोग्य शिक्षक प्रशिक्षित करने पड़ेंगे जो नवीन प्रयोग एवं अभिनव परिवर्तन संस्थाओं में ला सकें। इसके लिये विशिष्ट प्रकार की प्रशिक्षण संस्थाओं की आवश्यकता है। चतुर्थ योजना मे सर्वांगपूर्ण शिक्षक–प्रशिक्षण संस्थाओं का समुचित विकास नहीं हो सका है। इस प्रकार की संस्थाओं की विशेष आवश्यकता है और इसका प्रावधान पंचवर्षीय योजना मे किया जाना चाहिए।

केन्द्रीय शिक्षा सलाहकार बोर्ड ने पाँचवी योजना के लिए एक महत्त्वपूर्ण सुझाव दिया है कि इसकी सफलता के लिए यह आवश्यक है कि प्रशासनिक ढाँचे में वांछनीय परिवर्तन लाया जाए। योजना के लिए शिक्षा निरीक्षक, पर्यवेक्षक एवं अन्य प्रशासनिक अधिकारियों को नवीन आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुये प्रशिक्षित किया जाए। इसके लिए नेशनल स्टाफ कालिज फार एजूकेशनल प्लानर्स एवं एडमिनिस्ट्रेटर्स (राष्ट्रीय शिक्षा योजना निर्माता एवं प्रशासक स्टाफ कालेज) की स्थापना का सुझाव दिया है। शिक्षक प्रशिक्षण के विकास के लिए राष्ट्रीय स्तर पर राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा मंडल और राज्य स्तर पर राज्य अध्यापक शिक्षा मंडल का गठन किया जाना चाहिए। योजना की इस पूर्व तैयारी के लिए यह अनुमान लगाया गया है कि सन् १९७२-७३ में ३० करोड़ और १९७३-७४ में १०० करोड़ रुपए की आवश्यकता पड़ेगी। इन प्रस्तावों के क्रियान्वयन से शिक्षा और शिक्षक-प्रशिक्षण के उद्देश्यों की उपलब्धियाँ सरलता से हो सकेंगी।

———

२१

प्रशिक्षणार्थियों के कार्य का मूल्यांकन

प्रशिक्षणार्थियों के कार्य का मूल्यांकन किस प्रकार किया जाए ? यह प्रश्न जटिल है । इसका एक उत्तर यह है कि मूल्यांकन के अन्तर्गत हम प्रशिक्षणार्थियों के उन अपेक्षित व्यवहार परिवर्तनों की परीक्षा लेते हैं जिनका निर्धारण पाठ्यक्रम के निर्माण के समय किया गया था । इस प्रकार के पाठ्यक्रम को पढ़ाने से पूर्व इससे होने वाली उपलब्धियों का निर्धारण तथा इसके उद्देश्यों का स्पष्टीकरण किया जाता है । तदनुसार अध्ययन-अध्यापन की विधाएँ निर्धारित की जाती हैं जिससे निर्धारित लक्ष्यों एवं उद्देश्यों की प्राप्ति हो सके । पाठ्यक्रम के अन्त में प्रशिक्षणार्थियों में ज्ञान कुशलताओं, क्षमताओं, एवं रुचियों में परिवर्तन की अपेक्षा की जाती है । इन्हीं व्यवहार परिवर्तनों का अंकन मूल्यांकन के अन्तर्गत किया जाता है । इन उद्देश्यों, अध्ययन-अध्यापन की विधियों एवं मूल्यांकन का अन्ततः सम्बन्ध निम्नलिखित चित्र से स्पष्ट होता है—
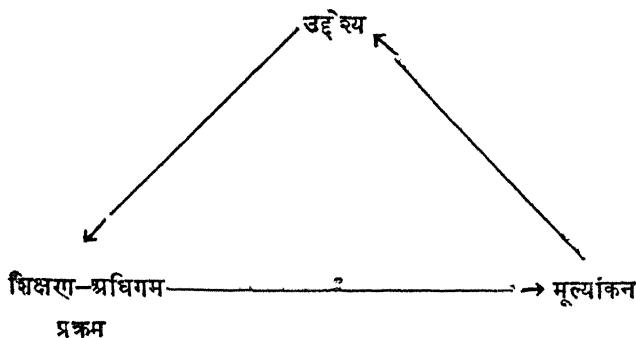
किसी प्रशिक्षणार्थी के कार्य का मूल्यांकन वर्ष के अन्त में एक बाह्य परीक्षा लेने मात्र से नहीं हो सकता है । प्रशिक्षार्थी में व्यवहार परिवर्तन

निरन्तर होता है। वर्ष के अन्त में एक परीक्षा मात्र से उसका योग्यतांकन नहीं हो सकता है। इसलिए यह आवश्यक है कि प्रशिक्षणार्थी की प्रवेश के समय योग्यता निर्धारित होनी चाहिए। प्रशिक्षण काल में समय-समय पर ज्ञानार्जन के साथ-साथ, प्रशिक्षणार्थियों का मूल्यांकन होते रहना चाहिए। उचित मूल्यांकन की दृष्टि से परीक्षक को निम्नलिखित तीन तथ्यों का बोध होना चाहिए।

(१) यह ज्ञात होना चाहिए कि प्रशिक्षार्थियों का पाठ्यक्रम से पूर्व क्या स्तर था, और उनमें पाठ्यक्रम के माध्यम से कौन से व्यवहार परिवर्तन किये गये?

(२) प्रशिक्षार्थियों के व्यवहार परिवर्तनों का लेखा रखा जाना चाहिए और इनका लेखा-जोखा उचित आलेख पत्रों में अंकित किया जाना चाहिए, और

(३) इस बात की समीक्षा की जानी चाहिए कि प्रशिक्षार्थी में होने वाले व्यवहार परिवर्तन किस सीमा तक अपेक्षित उद्देश्यों की पूर्ति करते हैं?

मूल्यांकन के उपर्युक्त सैद्धान्तिक पक्षों को ध्यान में रखते हुए इस अध्याय में इस बात का वर्णन किया जायगा कि शिक्षक प्रशिक्षण संस्थाओं में प्रशिक्षणार्थियों के कार्य का परीक्षण किस प्रकार किया जाता है। प्रशिक्षार्थी के कार्य का दो दृष्टियों से मूल्यांकन होता है—

(१) सैद्धांतिक विषयों में प्राप्त योग्यता, और

(२) अध्यापन अभ्यास और क्रियात्मक पक्ष में प्राप्त योग्यता। दोनों प्रकार के इस योग्यतांकन का विवरण आगे के पृष्ठों में दिया गया है।

सुविधा की दृष्टि से प्रशिक्षार्थियों के मूल्यांकन की विधियों का वर्णन तीन शीर्षकों के अन्तर्गत किया जाएगा—(१) शोध एवं स्नातकोत्तर पाठ्यक्रम (२) बी. एड. पाठ्यक्रम और (३) प्राथमिक अध्यापक प्रशिक्षक पाठ्यक्रम।

सैद्धान्तिक विषयों में मूल्यांकन

पीएच. डी. स्तर पर—सन् १९६६ के आँकड़ों के आधार पर सोलह विश्वविद्यालय पीएच. डी. (शिक्षा) की डिग्री प्रदान करते हैं। भारतीय विश्वविद्यालयों में पीएच. डी. शोध निबन्ध के आधार पर प्रदान की जाती है। प्रशिक्षार्थी द्वारा प्रस्तुत शोधग्रन्थ का मूल्यांकन तीन परीक्षक करते हैं। कुछ विश्वविद्यालयों में इन तीन परीक्षकों में से एक परीक्षक विदेशी विशेषज्ञ भी होता है। इन तीनों की सहमति और दो परीक्षकों के सम्मुख साक्षात्कार

(वाइवा) की रिपोर्ट पर पीएच. डी. प्रदान की जाती है। केवल मेरठ विश्व-विद्यालय में पीएच.डी. से पूर्व एम. फिल. पाठ्यक्रम पूर्ण करना पड़ता है। एम. फिल. पाठ्यक्रम में शिक्षा के कुछ सैद्धान्तिक विषयों का अध्ययन करना पड़ता है। इन विषयों में उत्तीर्ण होने के पश्चात् पीएच.डी. के लिए शोध निबन्ध लिखना पड़ता है।

एम. एड. स्तर पर मूल्यांकन

सन् १६६६ तक उपलब्ध आँकडों के आधार पर छत्तीस विश्वविद्यालयों में एम. एड. की परीक्षा होती है। इनमें से सात विश्वविद्यालयों में शिक्षा संकाय हैं जो एम. एड. की शिक्षा देते हैं और इन विश्वविद्यालयों के अन्तर्गत ६७ शिक्षक महाविद्यालयों में एम. एड. की कक्षाएँ लगती हैं।

भारत के लगभग सभी विश्वविद्यालयों में एम. एड. परीक्षा के लिए कुछ सैद्धान्तिक विषय निर्धारित होते हैं, साथ में प्रशिक्षार्थियों को एक शोध निबन्ध भी लिखना पड़ता है। अब केवल तीन अथवा चार विश्वविद्यालय ऐसे हैं जो केवल शोध निबन्ध के आधार पर एम. एड. की डिग्री प्रदान करते हैं।

एम. एड. में सैद्धान्तिक प्रश्नपत्रों की परीक्षा बाह्य परीक्षकों द्वारा ली जाती है। विश्वविद्यालय परीक्षक नियुक्त करता है और प्रश्नपत्रों का मूल्यांकन इन परीक्षकों द्वारा ही किया जाता है। लेकिन विगत कुछ वर्षों में मूल्यांकन पद्धति में परिवर्तन दृष्टिगत हो रहा है। बाह्य परीक्षण के साथ-साथ आन्तरिक मूल्यांकन पर भी विशेष बल दिया जा रहा है। आन्तरिक मूल्यांकन के लिए अंकों का प्रतिशत विभिन्न विश्वविद्यालयों में भिन्न-भिन्न है। अब सामान्यतः प्रत्येक सैद्धान्तिक प्रश्नपत्र में २५ प्रतिशत अंक आन्तरिक हैं और इन अंकों को प्राप्त करने के लिए प्रशिक्षार्थी को निबन्ध, व्यक्ति-अध्ययन अथवा शैक्षिक निबन्धों का सार लिखकर अपनी योग्यता का परिचय देना पड़ता है। शोध निबन्ध का मूल्यांकन बाह्य तथा आन्तरिक परीक्षा प्रणाली के आधार पर किया जाता है। कुछ विश्वविद्यालयों ने प्रशिक्षार्थी की योग्यता का अंकन करने के लिए साक्षात्कार विधि का प्रयोग प्रारम्भ कर दिया है।

बी. एड. के सैद्धान्तिक विषयों में मूल्यांकन

सामान्यतः सैद्धान्तिक विषयों में प्रशिक्षणार्थियों का मूल्यांकन बाह्य परीक्षा के आधार पर होता है। प्रत्येक प्रश्नपत्र के अंक निर्धारित होते हैं जिनकी सीमा प्रश्नपत्रों की संख्या के आधार पर विभिन्न विश्वविद्यालयों में

भिन्न-भिन्न होता है। सैद्धान्तिक विषयों के अंक २०० से ८०० के मध्य अलग-अलग विश्वविद्यालयों में पाये जाते है। एक ओर नागपुर विश्वविद्यालय में सैद्धान्तिक विषयों के लिए ३०० अंक हैं जबकि पंजाब में इन विषयों के लिए ८०० अंक निर्धारित किये गये हैं। सामान्यतः ४०० से ५०० अंक सैद्धान्तिक प्रश्नपत्रों के लिए विश्वविद्यालयों द्वारा निर्धारित किये जाते हैं।

एक नवीन परिवर्तन सैद्धान्तिक विषय के मूल्यांकन के क्षेत्र में कुछ विश्वविद्यालयों ने अपनाया है। अब आन्तरिक मूल्यांकन को महत्व दिया जाने लगा है और सैद्धान्तिक प्रश्नपत्रों के लिए निर्धारित अंकों का कुछ प्रतिशत आंतरिक मूल्यांकन के लिए रखा जाता है। आंतरिक मूल्यांकन का प्रतिशत अलग-अलग विश्वविद्यालयों में अलग-अलग है। एक ओर केरल राज्य के शिक्षा विभाग द्वारा १० प्रतिशत अंक आंतरिक मूल्यांकन के लिए हैं, दूसरी ओर पंजाबी और जामिया मिलिया (दिल्ली) में ५० प्रतिशत अंक आंतरिक मूल्यांकन के लिए रखे गये है। लेकिन अधिकांश विश्वविद्यालयों में २५ से ३० प्रतिशत अंक आंतरिक मूल्यांकन के लिए निर्धारित है। सन् १९६९ के आंकड़ों के अनुसार अठारह विश्वविद्यालयों में आंतरिक मूल्यांकन पद्धति को स्वीकार कर लिया गया है।

बड़ौदा विश्वविद्यालय ने बाह्य परीक्षा को पूर्ण रूप से समाप्त करके आन्तरिक मूल्यांकन पद्धति को अपनाया है। इस आन्तरिक मूल्यांकन के अन्तर्गत प्रशिक्षणार्थी का योग्यतांकन निबन्ध, गृहकार्य और कक्षा के टेस्ट्स अथवा परीक्षा में प्राप्त अंकों द्वारा किया जाता है। प्रशिक्षार्थी को कक्षा में अपने अध्ययन और योग्यता का परिचय कक्षा में आयोजित विचार-विमर्श में भाग लेकर देना पड़ता है। अध्यापन अभ्यास के लिए प्रशिक्षार्थी को ग्रामीण शालाओं में शाला-अध्यापन के लिए जाना पड़ता है। इसके अतिरिक्त सामान्य शालाओं में उनको अध्यापन अभ्यास करना पड़ता है। इस प्रकार आयोजित अध्यापन अभ्यास का मूल्यांकन भी आन्तरिक होता है। इसके लिए कोई बाह्य परीक्षक नियुक्त नहीं किया जाता है। इस मूल्यांकन में साक्षात्कार प्रणाली को बहुत महत्त्व दिया जाता है। जब प्रशिक्षार्थियों का सैद्धांतिक विषयों और अध्यापन अभ्यास का मूल्यांकन पूर्ण हो जाता है तब अन्त में उनको विश्वविद्यालय द्वारा मनोनीत पांच सदस्यों के एक बोर्ड के सम्मुख साक्षात्कार हेतु प्रस्तुत होना पड़ता है। इस बोर्ड में तीन सदस्य विश्वविद्यालय के शिक्षा संकाय के होते हैं और दो बाह्य सदस्य अन्य-विश्वविद्यालयों से आमन्त्रित किए जाते हैं। यह बोर्ड प्रशिक्षार्थियों

द्वारा किये गये सम्पूर्ण कार्य को दृष्टि में रखकर उनसे प्रश्न करके उनका मूल्यांकन करता है। बड़ौदा विश्वविद्यालय प्रशिक्षार्थियों को अंक प्रदान न करके ग्रेड प्रदान करता है। प्रशिक्षणार्थियों का मूल्यांकन ग्यारह पाइन्ट स्केल पर किया जाता है, यथा A+, A, A−, B+, B, B−, C+, C, C−, D और E. एक प्रशिक्षार्थी को उत्तीर्ण होने के लिए सैद्धांतिक विषयों में कम से कम C और अध्यापन अभ्यास में B ग्रेड प्राप्त करना पड़ता है।

आंतरिक मूल्यांकन लगभग ६१ महाविद्यालयों द्वारा स्वीकार किया गया है। इन संस्थाओं में आंतरिक मूल्यांकन की विधियाँ अलग-अलग प्रकार की है। कुछ संस्थाओं में सत्रान्त पर कक्षा में परीक्षा द्वारा योग्यतांकन किया जाता है। कुछ संस्थाओं में निबन्ध, विचार–विमर्श, पुस्तक समीक्षा, शाला अथवा छात्रों के व्यक्ति अध्ययन, किसी विशेष प्रोजेक्ट प्रतिवेदन आदि के आधार पर आंतरिक मूल्यांकन किया जाता है और अंक दिये जाते हैं। प्रशिक्षणार्थियों द्वारा लिखित कार्य, पुस्तक समीक्षा अथवा विद्यार्थियों पर लिखे गये व्यक्ति-अध्ययन का वाचन शिक्षक प्रशिक्षकों द्वारा कक्षा में करवाया जाता है ताकि उन पर विचार–विमर्श हो सके। बी. एड. प्रशिक्षणार्थियों की योग्यता को जाँचने के लिए साक्षात्कार विधि को भी उदयपुर और बड़ौदा की संस्थाओं में अपनाया गया है। शिक्षक प्रशिक्षक प्रशिक्षार्थियों को इस साक्षात्कार में पुस्तकालय में पढ़ी गई पुस्तकों का परिचय देना पड़ता है और अपने निबन्धों और व्यक्ति-अध्ययन के सम्बन्ध में प्रश्नों के उत्तर देने पडते हैं। दिल्ली और जबलपुर विश्वविद्यालयों में प्रशिक्षार्थियों को कुछ मनोवैज्ञानिक प्रयोग करने पडते हैं जिनका आंतरिक मूल्यांकन किया जाता है। कुछ अन्य विश्वविद्यालयों ने शाला के विषयों का अध्ययन प्रशिक्षार्थियों के लिए अनिवार्य कर दिया है। इनमें विषयवस्तु का परीक्षण अधिकांशतः आंतरिक मूल्यांकन पद्धति द्वारा किया जाता है।

बी. एड. अध्यापन अभ्यास मूल्यांकन

अध्यापन अभ्यास के मूल्यांकन का आधार अन्तरविज्ञानीय है। प्रशिक्षार्थी के कार्य की समीक्षा वैज्ञानिक और दार्शनिक पृष्ठभूमि पर करनी पड़ती है। इन मूल्यांकनों की विधियों में विविधता हो सकती है, लेकिन इस योग्यतांकन को कुछ सिद्धान्तों पर किया जाना चाहिए। अध्यापन अभ्यास मूल्यांकन के कुछ आधारभूत सिद्धान्त हैं। यदि इन सिद्धान्तों पर मूल्यांकन

किया जाए तो अध्यापन अभ्यास अधिक वस्तुनिष्ठ एवं सर्वांगीण हो सकता है। अध्यापन अभ्यास के कार्यक्रम को उन्नत बनाने के लिए ये सिद्धान्त मार्ग-दर्शिका के रूप में प्रयुक्त किए जा सकते हैं। अध्याय सात में कुछ सिद्धान्तों की विवेचना की गई थी, लेकिन अतिरिक्त अध्यापन अभ्यास के मूल्यांकन के निम्नलिखित सिद्धान्त भी महत्वपूर्ण हैं—

अध्यापन अभ्यास मूल्यांकन के प्रमुख सिद्धान्त

(१) अध्यापन अभ्यास का मूल्यांकन जातान्त्रिक प्रशिक्षा दर्शन के आधार पर होना चाहिये

देश ने प्रजातन्त्र को स्वीकार किया है अतः प्रशिक्षार्थी को प्रजातांत्रिक मूल्यों पर विश्वास होना चाहिए और उसको अध्यापन अभ्यास में उन गुणों को अर्जित करने का अवसर मिलना चाहिए जो उसको प्रजातांत्रिक समाज में रहने की क्षमता प्रदान करते हैं। प्रशिक्षार्थी को व्यक्ति के महत्व, मूल्य और सम्मान को स्वीकार करना चाहिए ; सामूहिक रूप से समस्या को समझने और उसके निराकरण में सहयोग देने की वृत्ति होनी चाहिए ; प्रजातान्त्रिक मूल्यों पर विश्वास होना चाहिए और प्रजातांत्रिक विधियों को शिक्षण में अपनाने की योग्यता होनी चाहिए। इन्हीं गुणों का विकास करना अध्यापन अभ्यास के प्रमुख उद्देश्य होने चाहिए और इन्हीं का मूल्यांकन इस अवधि में किया जाना चाहिए।

(२) अध्यापन अभ्यास मूल्यांकन के विशिष्ट उद्देश्यों का स्पष्टीकरण प्रशिक्षार्थियों में अपेक्षित व्यवहार परिवर्तन के संदर्भ में करना चाहिए—

शिक्षक–प्रशिक्षण के लक्ष्य स्पष्ट होने चाहिए। उन्हीं लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए अध्यापन अभ्यास के विशिष्ट उद्देश्य स्पष्ट रूप से परिभाषित होने चाहिए। अध्यापन के उद्देश्यों से यह स्पष्ट होना चाहिए कि इस कार्य–क्रम से प्रशिक्षार्थियों में कौनसे व्यवहार परिवर्तन अपेक्षित हैं। इन्हीं अपेक्षित व्यवहार परिवर्तनों का मूल्यांकन किया जाना चाहिए।

(३) अध्यापन अभ्यास में अपनाई जाने वाली विधियाँ विविध प्रविधि और प्रक्रम पर्याप्त मात्रा में निदानात्मक होनी चाहिए जिससे प्रशिक्षार्थी सीखने की प्रक्रिया की विभिन्न अवस्थाओं का ज्ञान प्राप्त कर सके

प्रशिक्षार्थी अध्यापन अभ्यास काल में पढ़ाने की कला को स्वयं सीखता

है । इस व्यवहार परिवर्तन को प्राप्त करने के लिए वह शिक्षण की कलाओं और क्षमताओं को अर्जित करने के लिए प्रयत्नशील रहता है । अतः शिक्षक प्रशिक्षक स्वय इस बात को जानने के लिए प्रयत्नशील रहता है कि प्रशिक्षार्थी में किस सीमा तक शिक्षण की वांछित क्षमताएँ उत्पन्न हो गई हैं। इसके लिए वह मूल्यांकन करता है । चूंकि यह सीखने की प्रक्रिया प्रशिक्षार्थी मे अनवरत रूप से चलती रहती है अत. अध्यापन अभ्यास के अन्तर्गत प्रशिक्षार्थी का मूल्यांकन सतत होते रहना चाहिए । शिक्षक प्रशिक्षक के मूल्यांकन की विधि निदानात्मक होनी चाहिए ताकि वह समय-समय पर प्रशिक्षार्थी के विकास में योग दे सके ।

(४) अध्यापन अभ्यास को सम्पूर्ण सीखने की प्रक्रिया का एक अभिन्न अंग मानना चाहिए और इसमें प्रशिक्षार्थी, सहयोगी अध्यापक और छात्रों का सहयोग होना चाहिए

सीखने के सिद्धान्त के आशय यह है कि सीखने वाले में व्यवहार परिवर्तन हो रहा है जो उसको नवीन परिस्थितियों मे कार्य करने के लिए योग्य बना रहा है । इस सीखने के सिद्धान्त का मूल्यांकन से घनिष्ठ सम्बन्ध है । अतः शिक्षक प्रशिक्षक को अध्यापन अभ्यास के वैज्ञानिक रीति से मूल्यांकन के लिए सर्वप्रथम सीखने के सिद्धान्तों का ज्ञान आवश्यक है ।

प्रशिक्षार्थी को ऐसे अवसर प्रदान करने चाहिए जिससे वह स्वयं सीखने की प्रक्रिया में संलग्न हो सके । उसे प्रयोग और परीक्षण के लिये प्रेरित करना चाहिए । उसे अपने प्रयोगों के परिणामों को स्वय मूल्याकन के अवसर दिये जाने चाहिए । सीखने की इस प्रक्रिया मे प्रशिक्षार्थी को शिक्षक प्रशिक्षक, शाला के अध्यापक और छात्रों का सहयोग प्राप्त होना चाहिए । इन वांछनीय अनुभवों की योजना सामूहिक रूप से तैयार की जानी चाहिए और इन अनुभवों के मूल्याकन मे भी सामूहिक योगदान होना चाहिए ।

(५) अध्यापन अभ्यास का मूल्यांकन गुणात्मक एवं संख्यात्मक दृष्टि से किया जाना चाहिए

अध्यापन अभ्यास के मूल्याकन के अन्तर्गत जिन तथ्यों के सम्बन्ध मे निर्णय लेते हैं, वे है—शैक्षणिक अनुभव किस सीमा तक उपयोगी रहे, किस सीमा तक प्रशिक्षार्थी मे व्यवहार परिवर्तन हुए और किस सीमा तक अध्यापन अभ्यास के उद्देश्यों की उपलब्धि हो सकी ? इस दृष्टि से मूल्यांकन एक व्यापक प्रक्रिया है जिसका आधार कुछ सिद्धान्त एवं उद्देश्य हैं । मूल्यांकन

की प्रक्रिया उन प्रयत्नों का एक अंग है जो शिक्षण के सुधार, लक्ष्यों की प्राप्ति अथवा योग्यतांकन के लिए किए जाते हैं। मूल्यांकन को शैक्षणिक प्रक्रिया में गुणात्मक तथा संख्यात्मक दृष्टियों से प्रयुक्त करना चाहिए।

(६) अध्यापन अभ्यास मूल्यांकन एक सतत-सर्वांगीण क्रिया है और इससे शिक्षक-प्रशिक्षण कार्यक्रम का विकास होता है

अध्यापन अभ्यास के मूल्यांकन को उस अवधि तक ही सीमित न रखा जाए जब तक कि प्रशिक्षार्थी अभ्यास पाठ दे रहा है। वास्तव में अध्यापन अभ्यास मूल्यांकन प्रशिक्षार्थी की क्षमताओं की जाँच का केवल एक तरीका है। उसकी योग्यता केवल पाठ पढ़ाने की क्षमता तक ही न आँकी जाए, बल्कि प्रशिक्षार्थी की शाला के संगठन, प्रशासन, पाठ्येतर क्रियाओं के आयोजन आदि का योग्यतांकन भी किया जाना चाहिए। इसलिए प्रशिक्षार्थी की योग्यता का मूल्यांकन अनेक परिस्थितियों में किया जाता है और अध्यापन अभ्यास का मूल्यांकन इस सम्पूर्ण क्रिया का एक अंग है।

(७) वर्तमान प्रजातांत्रिक सामाजिक ढाँचे में केवल एक अच्छे शिक्षक के गुण का वर्णन करना ही अध्यापन अभ्यास के मूल्यांकन का उद्देश्य नहीं है

प्राचीन समय में एक अच्छे अध्यापक से आशय थे कि उसको विषय सामग्री का यथेष्ट ज्ञान है, उसमें कक्षा में अनुशासन रखने की योग्यता है, प्रश्न पूछने की कला है, पाठ योजना बनाने की क्षमता है और व्याख्यान देने का कौशल है। लेकिन प्रशिक्षार्थी के मानव-तत्त्व की ओर ध्यान नहीं दिया जाता था और न उसके सामाजिक और प्रजातांत्रिक कर्तव्यों और कार्यों की ओर आग्रह दिया जाता था। आज की आधुनिकीकरण प्रक्रिया में शिक्षक के कार्यों में विशेष अन्तर है। आज के शिक्षक में शिक्षण का ज्ञान तथा कुशलताएँ तो होनी ही चाहिए लेकिन ज्ञान और क्षमताएँ ही पर्याप्त नहीं हैं। आज के शिक्षक से यह अपेक्षा है कि वह समाज में शिक्षा के कार्य को समझे, एक अच्छी शिक्षा योजना में योगदान दे सके, उसका स्वयं का एक जीवन दर्शन हो और उसमें आध्यात्मिक एवं नैतिक मूल्य हों। अध्यापन अभ्यास को इन उद्देश्यों की पूर्ति में योगदान देना चाहिए।

अध्यापन अभ्यास के कार्यक्रम में उपर्युक्त सभी सिद्धान्तों का समावेश होना आवश्यक है। इन्हीं सिद्धान्तों के आधार पर एक उपयोगी और सार-गर्भित मूल्यांकन योजना तैयार की जानी चाहिए।

अध्यापन अभ्यास के मूल्यांकन की वर्तमान अवस्था—अध्यापन का मूल्यांकन विश्वविद्यालयों में सामान्यतया दैनिक अभ्यासपाठ शिक्षण, एक या दो समालोचना पाठ और वार्षिक परीक्षा के पाठों के आधार पर किया जाता है । दैनिक पाठों का मूल्यांकन बाह्य परीक्षकों द्वारा किया जाता है । विभिन्न विश्वविद्यालयों में १०० से ४०० तक के अंक अध्यापन अभ्यास के लिए निर्धारित होते हैं। १०० अंक विश्व भारती, बनारस विश्वविद्यालयों में निर्धारित किए गए हैं, ४०० अंक जामिया मिलिया में और लगभग तीस विश्वविद्यालयों में २०० अंक अध्यापन अभ्यास के लिए रखे गए है। बम्बई विश्वविद्यालय में परीक्षा परिणाम के लिए अंक नहीं हैं, बल्कि ए, बी, सी, डी, ई ग्रेड दिये जाते है । इन ग्रेड्स द्वारा प्रशिक्षार्थी की योग्यता का अंकन किया जाता है । यह ग्रेड पद्धति महाराष्ट्र के अन्य विश्वविद्यालयों में भी प्रचलित है।

कुछ विश्वविद्यालयों में अध्यापन अभ्यास मूल्याकन मे आंतरिक और बाह्य परीक्षाओं के अंकों को जोड़ दिया जाता है । आंतरिक मूल्यांकन पद्धति में अभी बड़ी विविधता है। कुछ विश्वविद्यालयों मे आंतरिक मूल्यांकन को कम महत्त्व दिया जाता है। जबकि कुछ विश्वविद्यालयो में आंतरिक मूल्यांकन को अधिक महत्त्व दिया गया है । इसी महत्ता के आधार पर आंतरिक मूल्यांकन के लिए अंक निर्धारित किए गये है। ये अंक १३ से १०० प्रतिशत के मध्य में हैं। बर्दवान विश्वविद्यालय मे आंतरिक मूल्यांकन के लिए १३ प्रतिशत अंक हैं, जबकि दिल्ली, बड़ौदा, उस्मानिया, केरल, मद्रास आदि विश्वविद्यालयों में १०० प्रतिशत आंतरिक मूल्यांकन है। अधिकांश विश्व-विद्यालयों में ५० प्रतिशत अंक आंतरिक मूल्यांकन के लिए निर्धारित किए गए हैं। इन विश्वविद्यालयों में प्रमुखतया राजस्थान, उदयपुर, सरदार बल्लभ विद्यापीठ, कलकत्ता और कल्याणी उल्लेखनीय है । इन विश्वविद्यालयों मे आंतरिक मूल्यांकन का संशोधन बाह्य परीक्षकों द्वारा किया जाता है।

उपर्युक्त विश्वविद्यालयों के आंतरिक मूल्यांकन के आधार और तरीकों में बहुत विविधता पाई जाती है । लगभग छब्बीस महाविद्यालय आंतरिक मूल्यांकन के लिए पाठ योजनाओं, श्रव्य-दृश्य सामग्री की तैयारी और प्रयोग पर विशेष आग्रह देते है । कुछ अन्य महाविद्यालयों में आंतरिक मूल्यांकन के अन्तर्गत प्रशिक्षार्थी का पाठ्येतर क्रिया-कलापों में भाग लेना,

सहपाठियों के अभ्यास पाठों का अवलोकन करना, श्रव्य-दृश्य सामग्री तैयार करना, अनुशासन रखना, समालोचना पाठ आदि को महत्त्व देते हैं।

आंतरिक मूल्यांकन की अंतिम जांच की विधियों में काफी अन्तर है। कुछ महाविद्यालयों में पर्यवेक्षण करने वाले शिक्षक प्रशिक्षकों का निर्णय अन्तिम है। कुछ महाविद्यालयों में शिक्षक प्रशिक्षकों द्वारा दिए गए अंकों की जाँच प्रधानाचार्य या प्राध्यापकों की एक समिति करती है। उदाहरण के तौर पर दिल्ली विश्वविद्यालय के अन्तर्गत दो शिक्षक महाविद्यालय हैं। अध्यापन अभ्यास का मूल्यांकन आंतरिक रूप से सम्बन्धित शिक्षक प्रशिक्षक कर लेते हैं। लेकिन दोनों महाविद्यालयों के अंकों के मापदण्ड में एकरूपता लाने की दृष्टि से विश्वविद्यालय एक समिति या बोर्ड का गठन करता है। यह समिति जिसमें दोनों महाविद्यालयों के प्राध्यापक होते हैं, नमूने के तौर पर अभ्यास पाठों का पर्यवेक्षण करती है और दिए गए अंकों से सहमति या असहमति प्रकट करती है। कुछ महाविद्यालयों में आंतरिक मूल्यांकन के अंकों का निर्धारण बाह्य परीक्षक और आन्तरिक परीक्षक द्वारा दिए हुए अंकों के योग के औसत द्वारा होता है। इसका विशद विवरण पिछले अध्याय में दिया गया है।

(८) व्यावहारिक कार्य तथा अन्य क्षमताओं का मूल्यांकन

विश्वविद्यालयों ने व्यावहारिक कार्य को पाठ्यक्रम का अनिवार्य अंग बना दिया और इनका मूल्यांकन भी बाह्य अथवा आन्तरिक परीक्षण पद्धति पर होता है। विभिन्न विश्वविद्यालयों ने २० से लेकर ८०० अंकों के बीच अंक व्यावहारिक कार्य के लिए निर्धारित किए हैं। २० अंक बर्दवान विश्व-विद्यालय और ८०० अंक जामिया मिलिया (दिल्ली) ने निर्धारित किए हैं। लगभग १२ विश्वविद्यालयों ने २०० अंक क्रियात्मक पक्ष के तय किए हैं, लगभग आठ विश्वविद्यालयों ने ३०० और सात विश्वविद्यालयों ने १०० अंक निर्धारित किए हैं। इन अंकों को प्रशिक्षार्थी द्वारा किए गए हाथ के कार्य, दत्त कार्य अभिलेख-पत्र और दैनिक डायरी पर प्रदान किया जाता है।

पर्यवेक्षण की विधियाँ और अभ्यास पाठ का मूल्यांकन—दैनिक अभ्यास पाठ के मार्गदर्शन और पर्यवेक्षण की अनेक विधियाँ हैं। विभिन्न महाविद्यालयों ने प्रशिक्षकों के दैनिक पाठों के पर्यवेक्षण के लिए अनेक विधियाँ अपनाई हैं। अधिकांशतः शिक्षक प्रशिक्षक ही दैनिक पाठों का पर्यवेक्षण करता है, प्रशिक्षार्थी के कक्षा अध्यापन की कला का शालाओं में जाकर निरीक्षण करता है, तदनुसार अपनी सम्मति और मार्गदर्शन देता है। साथ-साथ वह

दैनिक रूप से उसका मूल्यांकन भी करता जाता है और प्रशिक्षार्थी की प्रगति से परिचित होता है। शिक्षक प्रशिक्षक दैनिक पाठों के अतिरिक्त प्रशिक्षार्थी के समालोचना पाठ का स्वयं मूल्यांकन करता है। एक या दो अन्य प्राध्यापकों के सहयोग से समालोचना पाठ का अधिक वस्तुनिष्ठ और सही मूल्यांकन करता है। अभी अधिकांश महाविद्यालयों में शाला के शिक्षकों को पर्यवेक्षण और मूल्याकन के लिए सहयोगी रूप में स्वीकार नहीं किया गया है। कुछ संस्थाओं ने सहयोगी शालाओं के प्रधानाध्यापकों को पर्यवेक्षण के कार्य में सहयोगी बनाया है, लेकिन यह अभी बहुत सीमित है।

लेकिन पर्यवेक्षण और अभ्यास पाठ के मूल्याकन की समस्या यह है कि पर्यवेक्षण को किस प्रकार अधिक वस्तुनिष्ठ बनाया जाय। इसकी यह आलोचना सामान्यतः सुप्रचलित है कि अध्यापन अभ्यास का आंतरिक मूल्यांकन शिक्षक प्रशिक्षक की स्वेच्छा और व्यक्तिगत रुचि पर अधिक निर्भर करता है। इसके लिए उसके पास ऐसे कोई प्रामाणिक साधन अथवा विधियाँ नहीं हैं जिससे पर्यवेक्षण और उसका मूल्यांकन अधिक सही और वस्तुनिष्ठ बनाया जा सके। मूल्यांकन के अंकों का आधार क्या हो ? जब तक पर्यवेक्षण किसी निश्चित आधार पर नहीं होगा और शिक्षण के विभिन्न पक्षों के लिए अंक निर्धारित नहीं होंगे तब तक अध्यापन अभ्यास का मूल्यांकन सही, वैज्ञानिक और वस्तुनिष्ठ नहीं कहलाएगा। ऐसी स्थिति में प्रशिक्षार्थी की योग्यता का सही मूल्यांकन नहीं हो सकता है।

पर्यवेक्षण को अधिक वैज्ञानिक तथा वस्तुनिष्ठ बनाने की दृष्टि से अनेक परीक्षण और प्रयोग किए गए हैं। अनेक प्रकार के प्रोफार्मा तैयार किये गये है। ऐसा ही प्रपत्र धांची और पलसाने से अनेक परीक्षण करने के पश्चात् तैयार किया है। इस प्रपत्र की को अनेक महाविद्यालयों ने अपनाया है।

इस प्रपत्र का दैनिक पाठों के पर्यवेक्षण के लिए प्रयोग किया जा सकता है। प्रशिक्षार्थी द्वारा समालोचना पाठ के परीक्षण की दृष्टि से भी इसका उपयोग महत्त्वपूर्ण है। इस प्रपत्र के विभिन्न मदों और प्रत्येक के लिए निर्धारित अंकों के सम्बन्ध मे मतभेद हो सकता है, लेकिन यह प्रपत्र इस दृष्टि से उपयोगी है कि इसके माध्यम से पर्यवेक्षण को संख्याओं में अंकित कर सकते है। इस प्रपत्र द्वारा १०० अंकों से लेकर शून्य तक प्रदान किया

जा सकता है। इस प्रकार के प्रपत्र द्वारा प्रशिक्षणार्थी के कार्य का मूल्यांकन सही हो सकेगा।

प्राथमिक अध्यापक प्रशिक्षण में मूल्यांकन

देश की विभिन्न शिक्षक प्रशिक्षण संस्थाओं में मूल्यांकन की विधियों में महान् विभिन्नता है। सैद्धान्तिक विषयों एवं अध्यापन अभ्यास में बाह्य एवं आन्तरिक दोनों पद्धतियों से मूल्यांकन किया जाता है। अधिकांश संस्थाओं में सैद्धान्तिक विषयों का मूल्यांकन बाह्य परीक्षा पद्धति पर किया जाता है लेकिन कुछ संस्थाओं में आंतरिक मूल्यांकन के लिए भी अंक निर्धारित किए गये हैं। राजस्थान की शिक्षक प्रशिक्षण संस्थाओं में प्रत्येक सैद्धान्तिक प्रश्न-पत्र के लिए २५ प्रतिशत अंक आन्तरिक मूल्यांकन के लिए निर्धारित हैं। कुल परीक्षांक १००० हैं। उनमें से ७५० बाह्य परीक्षांक हैं और आंतरिक परीक्षांक २५० हैं।

अध्यापन अभ्यास में भी बाह्य और आंतरिक मूल्यांकन पद्धतियों का सम्मिश्रण अब शिक्षक प्रशिक्षक संस्थाओं में अधिकाधिक बढ़ता जा रहा है। इसका उदाहरण राजस्थान की शिक्षक प्रशिक्षण संस्थाओं में प्रचलित मूल्यांकन पद्धति से स्पष्ट हो जाएगा जिसका विवरण पीछे दिया गया है।

कुछ सुझाव—उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट होता है कि प्रशिक्षार्थी की योग्यता के सही और वस्तुनिष्ठ मूल्यांकन के लिए निरन्तर प्रयोग हो रहे हैं। इस दिशा में जो एक सही कदम उठाया गया है वह यह है कि अब प्रशिक्षार्थी का मूल्यांकन केवल बाह्य परीक्षा के आधार पर ही नहीं किया जाता है बल्कि आंतरिक मूल्यांकन का प्रभाव दिन-प्रतिदिन बढ़ गया है। इसका कारण यह है कि प्रशिक्षार्थी अपनी प्रगति के लिए सतत चेष्टा करता है। इस प्रगति के लिए शिक्षक प्रशिक्षक का दैनिक मार्गदर्शन एवं पर्यवेक्षण बड़ा उत्तरदायी है। अतः शिक्षक प्रशिक्षक को अध्यापन अभ्यास के मूल्यांकन में एक भागीदार होना आवश्यक है। इसलिए आंतरिक मूल्यांकन का प्रशिक्षार्थी की योग्यतांकन में बड़ा महत्त्व है। प्रयत्न यह होना चाहिए कि आंतरिक मूल्यांकन का बाह्य परीक्षा के मुकाबले में अधिक प्रतिशत होना चाहिए। इसके लिए यह प्रस्तावित है कि पचास प्रतिशत अंक आंतरिक मूल्यांकन के लिए निर्धारित किए जाने चाहिए। अध्यापन अभ्यास और प्रशिक्षार्थी की क्रियात्मक योग्यताओं का अंकन शत-प्रतिशत किया जाना चाहिए। केवल

समानता, एकरूपता और मापदण्डों को अधिक उन्नत करने की दृष्टि से बाह्य परीक्षकों के नमूने के तौर पर परीक्षण करना चाहिए। इस आंशिक बाह्य परीक्षण के लिए एक विश्वविद्यालय द्वारा एक बोर्ड की नियुक्ति की जाए जो आंतरिक मूल्यांकन में दिए गए अंकों के मापदण्डों का परीक्षण करे। इससे परीक्षकों द्वारा अधिक अंक देने की प्रवृत्ति नहीं पनपेगी।

अध्यापन अभ्यास के मूल्यांकन में, विशेष रूप से, अन्य सम्बन्धित व्यक्तियों का सहयोग लेना चाहिए। प्रशिक्षार्थी के अध्यापन अभ्यास के मार्ग-दर्शन और पर्यवेक्षण में शाला के शिक्षकों और प्रधानाध्यापकों को सहयोगी बनाना चाहिए। इससे एक लाभ यह होगा कि इनका सक्रिय सहयोग शिक्षक प्रशिक्षक संस्थाओं को मिल सकेगा और इनके अध्यापन के अनुभव का लाभ भी प्रशिक्षार्थियों को उपलब्ध होगा ? यदि इनको अध्यापन अभ्यास के मार्गदर्शन और पर्यवेक्षण में सहयोगी बनाया जाए तो इनका प्रशिक्षार्थी के योग्यतांकन में भी हाथ होना चाहिए। इस प्रकार के प्रयोग विदेशों में सफलतापूर्वक हो रहे हैं। वहाँ शाला के शिक्षक अध्यापन अभ्यास के कार्यक्रम में सक्रिय भाग लेते हैं। वे प्रशिक्षार्थी को दैनिक पाठ योजना और उसके शिक्षण में मार्गदर्शन देते है और पर्यवेक्षण करते हैं। उनकी प्रशिक्षार्थियों के मूल्यांकन में भी राय होती है। इस प्रकार के प्रयोग हमारे देश की शिक्षक प्रशिक्षण संस्थाओं में भी किये जाने चाहिए।

शिक्षक प्रशिक्षक और कुछ सीमा तक सहयोगी अध्यापक प्रशिक्षार्थी का योग्यतांकन करते हैं। लेकिन इसी के साथ आज आवश्यकता इस बात की है कि प्रशिक्षार्थी स्वयं अपने कार्य का मूल्यांकन कर सकें और अपने आत्म विश्लेषण और परीक्षण के आधार पर स्वयं अपने में सुधार ला सकें। इसके लिए उनको प्रशिक्षित करने की आवश्यकता है। शिक्षक–प्रशिक्षक का यह कर्तव्य होना चाहिए कि वह प्रशिक्षार्थी को स्वयं मूल्यांकन पद्धति से परिचित कराए और अपने कार्य की स्वयं जाँच करने की क्षमता प्रदान करे। उसकी व्यावसायिक क्षमता को बढ़ाने की दृष्टि से उसके लिए निम्नलिखित क्रियाओं का आयोजन करना पड़ेगा—

(१) पढ़ाने की योजना बनाना,

(२) योजनानुसार पढ़ाना,

(३) योजनाबद्ध उद्देश्यों का मूल्यांकन, और

(४) परीक्षाफलों के आधार पर शिक्षण की पुनः योजना बनाना।

शिक्षण की योजना, शिक्षण की विधियाँ, मूल्यांकन और पुनर्मूल्यांकन एक सतत प्रक्रिया है। इस प्रक्रिया को अधिक उपयोगी बनाने में प्रशिक्षार्थी द्वारा स्वयं का मूल्यांकन एक महत्त्वपूर्ण चरण है। इस पद्धति से प्रशिक्षार्थी सीखने की प्रक्रिया में एक उच्चकोटि के अनुभव का लाभ उठाता है और अपने अनुभव से अधिकतम सीखने की स्थिति में पहुँचता है। जब प्रशिक्षार्थी सीखने के लिए स्वयं प्रेरित हो उठता है तो शिक्षण का वांछित उद्देश्य प्राप्त हो जाता है। इसी के लिए 'स्वयं–मूल्यांकन पद्धति' के आधार पर शिक्षक प्रशिक्षक को प्रशिक्षार्थी को प्रशिक्षित करना चाहिए।

अमेरिका के वेस्टर्न कैरोलीना कालेज में 'स्वयं–मूल्यांकन पद्धति' पर इस प्रकार के प्रयोग किए गये हैं। इस स्वयं–मूल्यांकन के लिए इस संस्था ने कुछ प्रोफार्मा तैयार किए, जिनके नमूने निम्नलिखित हैं–(प्रत्येक प्रश्न के किसी एक मद पर चिह्न अंकित करता है)—

(१) पाठ की प्रस्तावना

.... सुनियोजित

.... अव्यवस्थित

.... सम्पूर्ण योजना का अभाव

(२) क्या मेरा अनुशासन

.... अत्यधिक कठोर था

.... समुचित था।

.... ढीला था।

प्रपत्र के एक खण्ड में प्रशिक्षार्थी कुछ प्रश्नों के उत्तर लिखता है—

(१) क्या मैं एक अच्छा अध्यापक हूँ ? क्यों ?

(२) मेरे शिक्षण में सर्वश्रेष्ठ क्या बात थी ?

(३) मेरे शिक्षण में सबसे कमजोर पक्ष क्या था।

इसी प्रकार के अन्य 'स्वयं–मूल्यांकन प्रपत्र' तैयार किए जा सकते हैं। एक सरल उपाय यह है कि प्रत्येक प्रशिक्षार्थी अपनी कक्षा में शिक्षण के पश्चात् अपने पाठ का मूल्यांकन निम्नलिखित तीन बिन्दुओं के आधार पर कर लेने से वांछित सुधार अपने अध्यापन में कर सकता है—

(१) अपने शिक्षण का स्वयं मूल्यांकन

(२) कक्षा अध्यापन में जो कठिनाइयाँ उपस्थित हुई उनके निराकरण के उपाय।

(३) अपने अध्यापन को सुधारने के लिए स्वयं उपाय ढूँढना।

इस दिशा में क्षेत्रीय शिक्षा महाविद्यालयों ने कुछ प्रयोग किए हैं, जो उल्लेखनीय हैं। इन महाविद्यालयों में प्रशिक्षार्थियों के कार्य का मूल्याकन अधिक व्यापक रूप से किया जाता है। प्रशिक्षार्थियों को शाला की कार्य-प्रणाली, समय-सारणी, पाठ्यपुस्तकों, पाठ्यचर्या, पाठ्येतर क्रियाओं आदि का अध्ययन करने को प्रोत्साहित किया जाता है। इस अध्ययन के आधार पर उन्हें एक प्रतिवेदन प्रस्तुत करना पड़ता है। एक प्रशिक्षार्थी को विविध प्रकार के अध्ययन करने का अवसर दिया जाता है, जो निम्नलिखित सूची से स्पष्ट होता है—

(१) शाला के दो विषयों के पाठ्यक्रम का आलोचनात्मक अध्ययन,

(२) शाला की परीक्षा प्रणाली का विस्तृत अध्ययन,

(३) दो पाठ्यपुस्तकों की समीक्षा,

(४) श्रव्य-दृश्य सामग्री तैयार करना,

(५) शिक्षा मनोविज्ञान से सम्बन्धित व्यावहारिक कार्य करना, यथा —

  (अ) कुछ विद्यार्थियों का संचयी अभिलेख तैयार करना,

  (ब) कुछ विद्यार्थियों का व्यक्तिगत अध्ययन करना,

  (स) शाला में एक क्रियात्मक अनुसंधान करना और उसका प्रतिवेदन तैयार करना;

(६) निम्नलिखित में से किसी एक का आलोचनात्मक अध्ययन—

  (अ) शाला भवन एवं साज-सज्जा,

  (ब) प्रातःकालीन प्रार्थना सभा,

  (स) समय-सारिणी,

  (द) विद्यार्थियों का प्रवेश एवं चयन-नीति,

  (इ) निर्देशन कार्यक्रम,

  (ई) शिक्षकों एवं छात्रों के सह-सम्बन्ध,

  (उ) शाला की प्रयोगशालाएँ,

  (ऊ) शाला स्वास्थ्य सेवाएँ,

  (ए) पुस्तकालय सेवाएँ

(७) शाला की पाठ्येतर क्रियाओं का अध्ययन, यथा—

(अ) वाद-विवाद प्रतियोगिता,

(ब) संगीत कार्यक्रम,

(स) कला एवं दस्तकारी प्रदर्शन,

(द) राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय पर्व समायोजन,

(इ) खेल एवं क्रीड़ा कार्यक्रम,

(ई) शैक्षिक पर्यटन,

उपर्युक्त विषयों पर प्रशिक्षार्थी अध्ययन करके अपना प्रतिवेदन प्रस्तुत करते हैं और इस कार्य का महाविद्यालय द्वारा मूल्यांकन किया जाता है। सत्र के अन्त में प्रशिक्षार्थी का साक्षात्कार किया जाता है। उनको अपने वर्ष भर के कार्य को साक्षात्कार बोर्ड के सामने प्रस्तुत करना पड़ता है और अपने अध्ययन का परिचय देना पड़ता है। इस प्रकार क्षेत्रीय शिक्षा महाविद्यालयों में प्रशिक्षार्थियों के विभिन्न पक्षों का मूल्यांकन किया जाता है।

भारतीय शिक्षक प्रशिक्षक संघ ने भी प्रशिक्षार्थियों के कार्य क वैज्ञानिक रूप से मूल्यांकन करने की समस्या पर विचार करने की दृष्टि से एक उप–समिति का गठन किया। इस उप–समिति ने प्रशिक्षार्थियों के अध्यापन अभ्यास के मूल्यांकन को अधिक वस्तुनिष्ठ एवं वैज्ञानिक बनाने के लिए सुझाव दिए। इस उप–समिति ने स्पष्ट किया कि अध्यापन अभ्यास की परम्परागत विचार-धारा में परिवर्तन लाने की आवश्यकता है। अध्यापन-अभ्यास केवल दो पाठ पढ़ा देने तक ही सीमित नहीं होना चाहिए, बल्कि इस कार्यक्रम के अन्तर्गत एक प्रशिक्षार्थी में ये तमाम क्षमताएँ उत्पन्न की जानी चाहिए जो उसको एक सफल शिक्षक बनाने में सहायक होती हैं। अतः इन प्रशिक्षार्थियों को शाला के विभिन्न क्रिया-कलापों एवं कार्यक्रमों से परिचित कराया जाना चाहिए और उनको अधिक व्यावहारिक कार्य करने का अवसर देना चाहिए। प्रशिक्षार्थी द्वारा इस प्रकार वर्ष भर किये गये कार्य का मूल्यांकन किया जाना चाहिए। इस उप-समिति ने निम्नलिखित व्यावहारिक कार्यक्रमों को प्रशिक्षण संस्थाओं में सम्मिलित करने का सुझाव दिया है—

१. अध्यापन अभ्यास,

२. छात्राध्यापकों के पाठों का अवलोकन,

३. विभिन्न प्रकार की शालाओं का अध्ययन,

४. पाठ्येतर क्रियाओं का संगठन एवं संचालन,

५. शाला के छात्रों को दिए गए अनुगामी कार्यक्रम,
६. विद्यार्थियों का व्यक्तिगत अध्ययन,
७. प्रश्नपत्र बनाने का अभ्यास,
८. श्यामपट्ट कार्य,
६. विद्यार्थियों के समाज नैतिक स्तर का अध्ययन करना,
१०. शाला के विषयों से सम्बन्धित व्यावहारिक कार्य,
११. श्रव्य-दृश्य सामग्री तैयार करना, और
१२. प्रयोगात्मक कार्य ।

उपर्युक्त बिन्दुओं के आधार पर प्रशिक्षार्थी को लिखित एवं व्यावहारिक कार्य करने का अवसर देना चाहिए जिससे उसको अपनी प्रतिभा दिखलाने का मौका मिल सके । प्रशिक्षणार्थियों द्वारा किये गये इस सम्पूर्ण कार्य का मूल्यांकन किया जाना चाहिए और उनके सर्वांगीण विकास का परिचय प्राप्त करना चाहिए ।

प्रशिक्षार्थियों के मूल्यांकन की इस प्रक्रिया में शिक्षक-प्रशिक्षण संस्थाओं को, अन्य शिक्षा के अभिकरणों और शिक्षा में कार्य करने वालों का सहयोग प्राप्त करना चाहिए । इससे प्रशिक्षार्थी के कार्य का परिचय प्रशिक्षण संस्थाओं से बाहर के व्यक्तियों को होगा और प्रशिक्षार्थियों को भी उनके अनुभव का लाभ होगा । अमेरिका के प्रशिक्षण महाविद्यालयों में शाला के सहयोगी अध्यापकों का प्रशिक्षार्थियों के अध्यापन अभ्यास के कार्य का मूल्यांकन करने में सहयोग लिया जाता है । इंगलैंड के एक शिक्षा महाविद्यालय में छात्राध्यापकों को अपने सहयोगी छात्राध्यापक के अध्यापन अभ्यास का मूल्यांकन करना पड़ता है और शिक्षक प्रशिक्षक को मूल्यांकन बतलाना पड़ता है। पश्चिमी जर्मनी के शिक्षक प्रशिक्षक महाविद्यालयों से उत्तीर्ण प्रशिक्षार्थियों को एक से तीन वर्ष तक किसी शाला में कार्य करना पड़ता है, जहाँ पर उन्हें एक शिक्षक का वेतन प्राप्त होता है । लेकिन इस अवधि में उन प्रशिक्षार्थियों को शाला के शिक्षकों के मार्गदर्शन एवं पर्यवेक्षण में कार्य करना पड़ता है। इस प्रकार पश्चिमी जर्मनी में शिक्षक प्रशिक्षण कार्यक्रम में शिक्षक महाविद्यालयों और शालाओं को संयुक्त रूप से कार्य करना पड़ता है और शालाएँ प्रशिक्षार्थियों के कार्य का मूल्यांकन करने में शिक्षा महाविद्यालयों को सहयोग प्रदान करती हैं। इस प्रकार के प्रयोग भारतीय शिक्षक प्रशिक्षण संस्थाओं को भी करने चाहिए ।

एक अन्य महत्त्वपूर्ण पक्ष पर विचार किया जाना चाहिए। प्रशिक्षार्थी के कार्य का मूल्यांकन केवल सैद्धान्तिक विषयों और अध्यापन अभ्यास में अंक देने तक ही सीमित नहीं किया जाना चाहिए। एक शिक्षक का कार्य केवल कक्षा शिक्षण तक ही सीमित नहीं है। शिक्षकों को अपने विद्यार्थियों को खेल के मैदान, पुस्तकालय, वर्कशाप, कला-कक्ष आदि में मार्गदर्शन करना पड़ता है। एक सफल शिक्षक को इस भूमिका का निर्वाह उतनी ही सफलतापूर्वक करना चाहिए जितनी वह कक्षा-अध्यापन में करता है। उसे छात्रावास की व्यवस्था का उत्तरदायित्व वहन करना पड़ता है। अभिभावक संघों का संचालन करना पड़ता है। वाद-विवाद प्रतियोगिताओं का समायोजन करना पड़ता है और इसी प्रकार की अन्य पाठ्येतर क्रियाएँ हैं जिनके लिए शिक्षक तैयार किए जाते हैं। शिक्षक महाविद्यालयों में इस प्रकार के प्रशिक्षण का मूल्यांकन निरन्तर करते रहना चाहिए। विद्यार्थियों के क्रियाकलापों का उल्लेख उनके अभिलेखों में किया जाना चाहिए। प्रत्येक प्रशिक्षार्थी को वर्ष के अन्त में उसके कार्य पर ग्रेड्स अथवा अंक दिए जाने चाहिए और उसके प्रमाण-पत्र में इनका उल्लेख किया जाना चाहिए।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि प्रशिक्षण संस्थाओं में एक प्रशिक्षार्थी को अपनी चतुर्मुखी प्रतिभा का परिचय देना पड़ता है। इन विभिन्न अनुभवों को प्रदान करने की दृष्टि से प्रशिक्षण संस्थाओं को अपने कार्यक्रमों में विविधता लानी चाहिए ताकि प्रत्येक प्रशिक्षार्थी को अपनी रुचि एवं प्रतिभा के अनुरूप कार्य मिल सके। इन कार्य-कलापों में जब प्रशिक्षार्थी भाग लेते हैं उनका मूल्यांकन वैज्ञानिक दृष्टि से किया जाना चाहिए। इस प्रकार के प्रपत्र तैयार किए जाने चाहिए जिससे मूल्यांकन वस्तुनिष्ठ हो सके। इस दृष्टि से यह उत्तम है कि एक प्रशिक्षण संस्था के सभी शिक्षक प्रशिक्षक प्रत्येक कार्य को देख सकें और उसके सम्बन्ध में अपनी राय बना सकें। सत्र भर में सभी शिक्षक प्रशिक्षक उन प्रपत्रों के आधार पर प्रत्येक प्रशिक्षार्थी का मूल्यांकन करें और इनके आधार पर प्रत्येक प्रशिक्षार्थी को ग्रेड्स प्रदान किए जाएँ। इस प्रकार के मूल्यांकन में व्यक्तिगत रुचि अथवा अरुचि का प्रभाव न्यूनतम हो जाता है और प्रशिक्षार्थियों का सही मूल्यांकन सम्भव है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

अध्याय संख्या १३—माध्यमिक शिक्षक-प्रशिक्षक

1. Chase, F S. "On The Education of American Teachers" in Freedom with Responsibility in Teacher Education, Seventh Yearbook of the American Association of Colleges for Teacher Education. Chicago : The Association, 1964.
2. Chaurasia G. : New Era in Teacher Education : Delhi, Sterling Publishers (P) Ltd. 1967.
3. Govt. of India : Report of the Secondary Education Commission : Delhi, 1953.
4. Govt of India : Report of the Education Commission : 1966.
5. Mukerji, S. N. : Education of Teachers in India, Vol. I; Delhi; S. Chand and Co., 1968.
6. Pandey, B. N. : Second National Survey of Secondary Teacher Education in India : NCERT, 1969.
7. Pillai, N. P. : The Training of Teacher Educators for Secondary Education : Journal of Education; Dec. 1964.
8. Pires, E. A. : Better Teacher Education; Delhi; University Press, 1958.
9. Sharma, M. L. : Educating the Educator; Ambala Cantt; The Indian Publications, 1967.
10. Taylor, William : Society and the Education of Teachers : London, Faber and Faber Ltd., 1969.

अध्याय संख्या १४—प्राथमिक शिक्षक-प्रशिक्षक

1. Department of Education, Govt. of Rajasthan : Agenda for the Abu Workshop, 1972.
2. Desai K. G. : Mehrotra, R. N. and Bhatta, Champa : Vitalising Elementary Teacher Education : Delhi, Indian Association of Teacher Educators : 1969.

3. Govt. of India : Report of the Education Commission : 1966.
4. NCERT : The Indian Year Book of Education, 1969, Second Year Book–Elementary Education; Delhi.
5. NCERT : National Survey of Elementary Teacher Education, Delhi, 1970.
6. NCERT : Elementary Teacher Education, Delhi, 1970.

अध्याय संख्या १५—शिक्षक-प्रशिक्षकों का सेवारत प्रशिक्षण

1. All India Association of Training Colleges in India : Report of the Study Group on the Education of Secondary Teachers in India : 1964.
2. Chaurasia, G : New Era in Teacher Education : Delhi, Sterling Publishers Ltd , 1967.
3. Govt. of India : Report of the Secondary Education Commission : 1953.
4. Govt. of India : Report of the Education Commission : 1966.
5. Henry, Nelson, B : Inservice Education : The fifty sixth year book of the National Society for the Study of Education Part I : Chicago, The University of Chicago Press, 1957.
6. IATE : Training of Primary Teacher Educators and Supervisors and Administrators : Delhi, 1966.
7. IATE : Inservice Education for Teacher Educators : Delhi, 1968.
8. Majumdar, H. B. : 'Inservice Education of Teacher Educators' Published in Vitalising Elementary Teacher Education Publication No. 20 of IATE : Delhi, 1969.
9. Mehrotra R. N. : 'Inservice Education of Teacher Educators' published in Readings in Inservice Education : Vallabh Vidyanagar, Sardar patel University ; 1968.

10. Mukerji, S.N. : Education of Teachers in India, Vol. I: Delhi, S. Chand & Co. 1968.
11. NCERT : Report of the All India Seminar on Education of Elementary Teacher Training Programme : Delhi, Central Institute of Education : 1963.
12. NCERT : Report of the Half Yearly conference of the State Institute of Education –20–24 Nov., 64 : Delhi.
13. NCERT : Elementary Teacher Education : Delhi : 1970.
14. Prall, C. E. and Cushman, C. L. : Teacher Education in Service : Commission on Teacher Education, American Council on Education : 1944.
15. मुकर्जी, एस. एन. : 'अध्यापक शिक्षकों की व्यावसायिक तैयारी : नया शिक्षक (त्रैमासिक)–शिक्षक प्रशिक्षण विशेषांक : अंक १, वर्ष १०, जुलाई–सितम्बर, १९६७ : बीकानेर, शिक्षा विभाग राजस्थान।
16. शर्मा, शिवकुमार : शिक्षक प्रशिक्षकों और पर्यवेक्षकों के एकीकृत पुन : संस्थापन कार्यक्रम : नया शिक्षक (त्रैमासिक) शिक्षक प्रशिक्षण विशेषांक : वर्ष, १०, अंक २, अक्टूम्बर-दिसम्बर, १९६७ : बीकानेर, शिक्षा विभाग, राजस्थान।

अध्याय संख्या १६—माध्यमिक शिक्षक-प्रशिक्षण संस्थाओं का संगठन

1. Government of India, Committee on Plan Projects Report on Teacher Training, New Delhi, 1964.
2. National Council of Educational Research and Training–The Indian Year Book of Education, 1964 Elementary Education, New Delhi.
3 Government of India, Ministry of Education, Report of the First National Seminar on the Education of Primary Teachers in India, New Delhi 1961.
4. NCERT, National Survey of Elementary Teacher Education in India, New Delhi, 1970,
5. Mukerji, S. N. (Ed.) Education of Teachers in India Delhi S. Chand and Co. 1968.

6. N.C.E.R.T. **Second All India Educational Survey, New Delhi**, 1967.

7. Government of India, Ministry of Education, Central Advisory Board of Education, 36th Session, New Delhi, September, 18–19, 1972.

8. भारत सरकार, शिक्षा मंत्रालय–शिक्षा आयोग की रिपोर्ट (1964–66) शिक्षा और राष्ट्रीय विकास, नई दिल्ली, 1968.

अध्याय संख्या १७—प्राथमिक शिक्षक प्रशिक्षण संस्थाओं का संगठन

1. National Council of Educational Research and Training–**Second National Survey of Secondary Teacher Education in India**, New Delhi, 1969, p.p. 5–6.

2. Government of Uttar Pradesh, **Educational Development in Uttar Pradesh**, 1965, p. 18

3. N.C.E.R.T., **Directory of Post–Graduate Teacher Education Institutions and courses, New Delhi**, 1966, p. iii.

4. N.C.E.R.T. **Second National Survey of Secondary Teacher Education in India**, New Delhi, 1969 p. 24.

5. Committee on Plan Projects, **Report on Teacher Training**. New Delhi, Government of India, 1964, p. 92.

6. शिक्षा मंत्रालय, **शिक्षा आयोग की रिपोर्ट, शिक्षा और राष्ट्रीय विकास**, नई दिल्ली, भारत सरकार, 1968

7. Ibid पृष्ठ सं० 99

अध्याय संख्या १८—वित्त

1. Government of India, Ministry of Education, Central Advisory Board of Education, 36th session. **Proposals for the Development of Education and culture in the Fifth Five Year Plan** (1974–79) New Delhi; 1972.

2. National Council of Educational Research and Training, Second **National Survey of Secondary Teacher Education in India**, New Delhi, 1969.

3. N.C.E.R.T. National Survey of Elementary Teacher Education in India, New Delhi, 1970.
4. N.C.E.R.T. The Indian Year book of Education, Elemementary Education, New Delhi, 1964.
5. Government of India, Report of the Education Commission (1964-66)., Education and National Development New Delhi, 1966.
6. Government of India, Committee on Plan Projects, Report on Teacher Training, New Delhi, 1964.
7. All India Association of Teachers Colleges, Seventh Conference Report, Mysore, 1964.
8. Mukerji, S. N. (ed) Education of Teachers in India Delhi, S. Chand and Co. 1968.
9. Government of India, Planning Commission– Sixth Meeting of the Steering committee of the planning Group on Education., New Delhi, 1968 (Cyclostyled.)

अध्याय संख्या १६— शिक्षक-प्रशिक्षण संस्थाओं में अन्तःसेवा प्रशिक्षण कार्यक्रम

1. R.H. Dave. "Towards a Theory of Educational Extension", Readings in In–service Education, Vallabh Vidyanagar, Sardar Patel University, 1968, p 20
2. M.B. Buch, "Motivation for Professional Growth" Readings in In–service Education, I–BI–D. p. 54.
3. D.C Joshi, A study of Innovations and Changes In Teachers Colleges. op. cit, p. 117.
4. J A. Richley, C.I.E. Selection From Educational Records Part II, 1840–59, Bureau of Education India, Calcutta, superintendent, Government Printing, India, 1922, pp. 384–386.
5. E G. Vedanayagam. "Impact of Extension work" Readings in In–service Education, op. cit p. 342.

अध्याय संख्या २०— पंचवर्षीय योजनाओं में शिक्षक-प्रशिक्षण

1. Government of India, Ministry of Education, Central Advisory Board of Education. 36th Session Proposals for the Development of Education and Culture in the Fifth Year Plan. New Delni, September, 18–19,1972.

2. Government of India, Planning Commission, **Fourth Five Year Plan**, New Delhi.
3. Govt. of India. **Third Five Year Plan**, New Delhi.
4. Government of India, **The Third Plan Inid term Appraisal** Nel Delhi
5. Government of India, **Second Five Year Plan. Progress Report** (1958–59)
6. Government of India, **First Five Year Plan**, New Delhi.
7. Government of India, Planning Commisston. **Sixth Meeting of the steering Committee of the Planning Group on Education**, 23rd July, 1968.
8. N.C.E.R.T. **Second all India Educational Survey**, New Delhi, 1967.
9. All India Association of Teachers Colleges, **7th conference**, Mysore, 1964
10. दीक्षित उपेन्द्रनाथ एवं जोशी, दिनेशचन्द्र, **शिक्षा आयोग का प्रतिवेदन एवं समीक्षा**, उदयपुर, राजस्थान बुक स्टोर, 1968

अध्याय संख्या २१—प्रशिक्षणार्थियों के कार्यों का मूल्यांकन

1. N.C.E.R.T., **Directory of Post-Graduate Teacher Education Institutions and Courses**, Delhi, 1966, p. iii.
2. N.C.E.R.T. **Second National Survey of Secondary Teacher Education in India**, New Delhi, 1969, p. 50
3. NCERT. **Evaluating Practice Teaching Discussion 1** e.d. M.N. Palsane and D A. Gandhi, New Delhi p. 12.
4. The Association of Student Teaching, **The Thirty-ninth Year book–Evaluating Student Teaching** Dhbu-Que, Iowa, Wm. C. Brown Co. Inc, 1960, pp. 173–74.
5. Chaurasia, G., **New Era in Teacher Education**, Delhi, sterling Publishers (P) Ltd, 1967.
6. Mukerji, S.N., **Education of Teachers in India**, Delhi, S. Chand and Co. 1968.